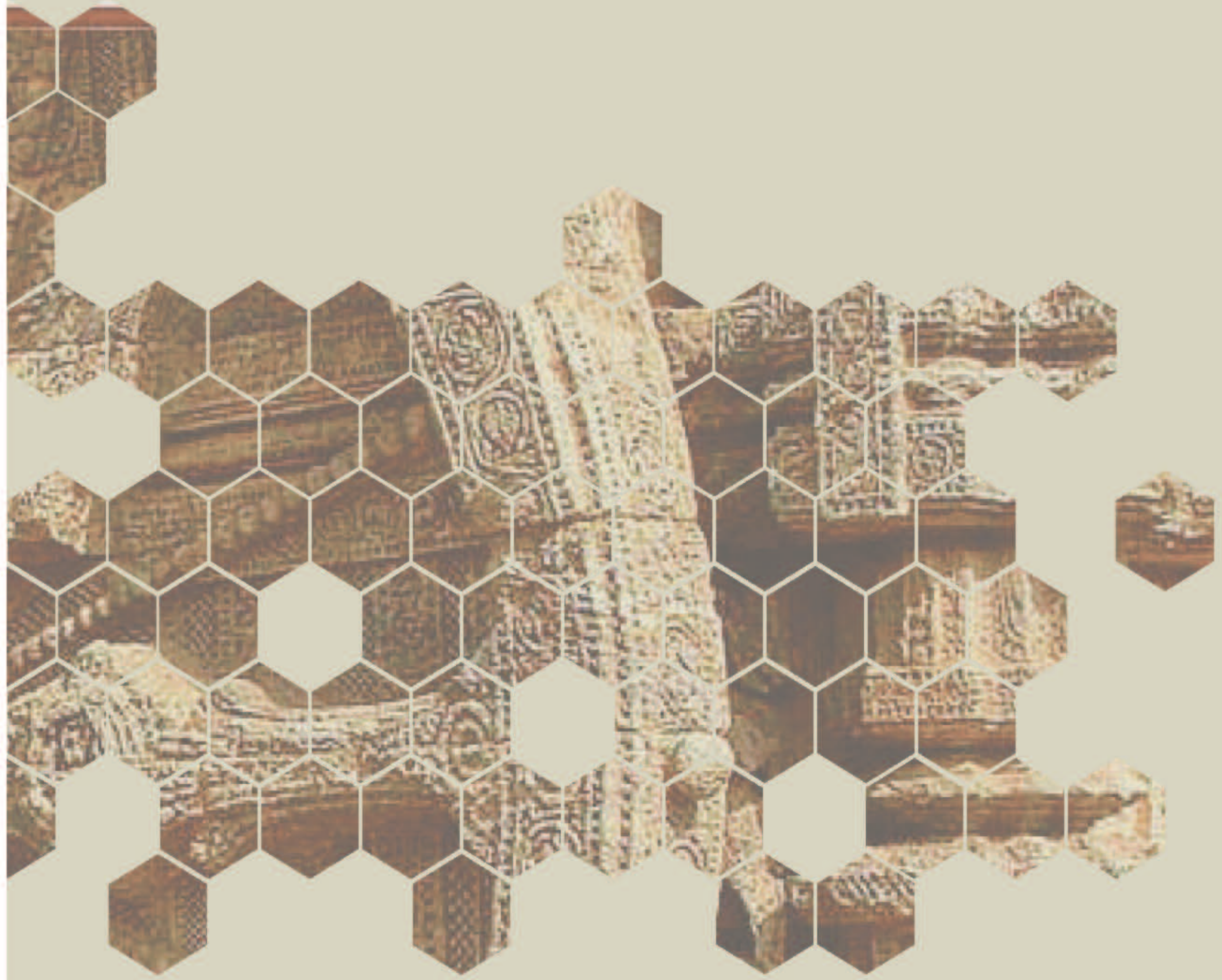

Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

Indian economy

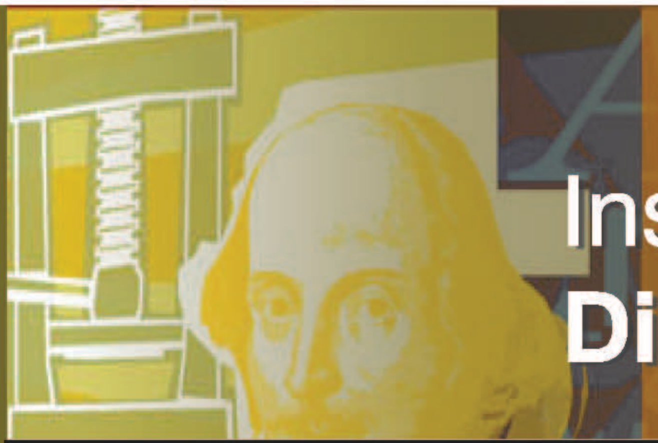

Institute of Open and Distance Education

Faculty of Arts

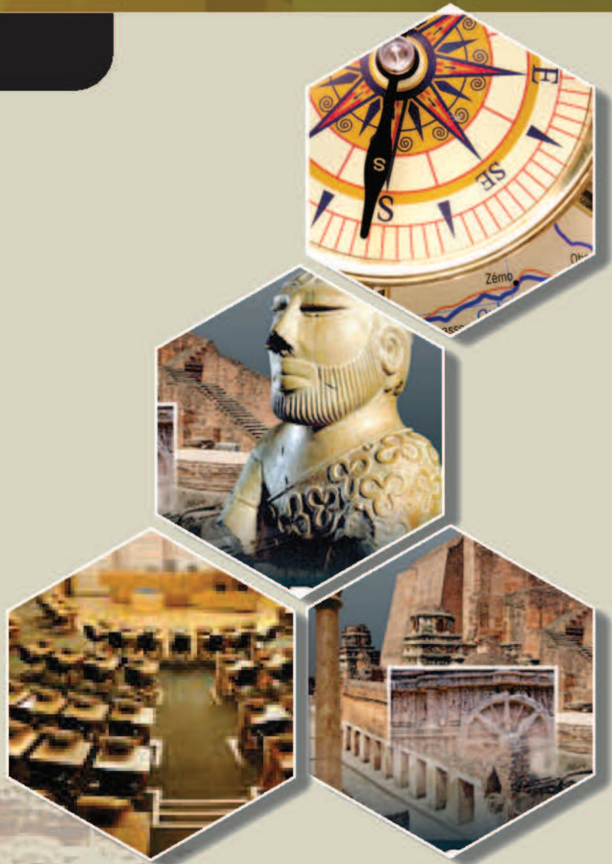

Indian Economy

2BA7

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

2BA7

Indian Economy

2BA7
Indian Economy

Credit- 4

Subject Expert Team

Dr Kajal Moitra, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Mahesh Shukla, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Reena Tiwari, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Ram Ratan sahu, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Anju Tiwari, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr. Sandhya Jaiswal , Dr. C. V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

---

Course Editor:

Dr Ramsiya Charmkar, Assistant Professor Department of Political Science Humanities and liberal arts, Rabindranath Tagore University, Bhopal, M.P.

Unit Written By:

---

1. **Dr. Rakesh Kumar Gupta**

(Associate Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. **Dr. Pratima Bais**

(Associate Professor, Dr. C. V. Raman University)

3. **Dr. Suchi Sharma**

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

अनुक्रमणिका

ब्लॉक -I

इकाई -1 भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना 1
इकाई -2 भारतीय अर्थव्यवस्था की मूलभूत विशेषताएँ 19
इकाई -3 प्राकृतिक संसाधन-भूमि एवं खनिज 40
इकाई - 4 जल संसाधन 67

ब्लॉक -II

इकाई – 5 वन संसाधन 85
इकाई – 6 भारतीय अर्थव्यवस्था की मानव अधोसंरचना 105
इकाई – 7 मानव अधोसंरचना - स्वास्थ्य एवं पौष्टिकता 140
इकाई – 8 शिक्षा, ज्ञान एवं कौशल 160

ब्लॉक -III

इकाई – 9 भारत में आवास एवं स्वच्छता 179
इकाई – 10 भारत की जनांकिकीय विशेषताएँनिबंध का उद्भव एवं विकास 196
इकाई – 11 जनसंख्या नीति एवं परिवार कल्याण कार्यक्रम 236

ब्लॉक -IV

इकाई – 12 भारत में कृषि की प्रकृति, महत्व एवं भू-उपयोग 271
इकाई – 13 कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता की प्रवृति 296
इकाई – 14 भूमि सुधार 330

ब्लॉक - I

इकाई -1
भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 भारत में जनशक्ति उपयोग

1.4 सार संक्षेप

1.5 मुख्य शब्द

1.6 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1.7 संदर्भ ग्रन्थ

1.8 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था एक विकासशील अर्थव्यवस्था है। भौगोलिक आकार की दृष्टि से भारत विश्व में सातवें स्थान पर है। जनसंख्या के दृष्टिकोण से भारत की जनसंख्या वर्ष 2011 में 121.02 करोड़ है तथा भारत विश्व में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। विश्व की जनसंख्या का लगभग 17.5 प्रतिशत भाग भारत में निवास करता है, जबकि क्षेत्रफल विश्व का 2.4 प्रतिशत ही है। इस प्रकार भारत में भूमि-जनसंख्या अनुपात बहुत ही प्रतिकूल है। जहाँ तक समग्र राष्ट्रीय आय का प्रश्न है, विश्व की समग्र आय में भारत का अंश 1.5 प्रतिशत से भी कम है। प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण भारत में घरेलू बचत और विनियोग की मात्रा भी कम है। कम निवेश (विनियोग) के कारण रोजगार और आय के सृजन की गति भी धीमी है। उल्लेखनीय है कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत विश्व के धनी एवं सम्पन्न देशों में से एक था। यह विशाल कृषि प्रधान और औद्योगिक दृष्टि से आत्मनिर्भर देश था। भारत की आर्थिक सम्पन्नता से आकर्षित होकर ही अंग्रेज भारत आये थे और स्वतंत्रता से पूर्व लगभग 200 वर्षों तक ब्रिटिश सरकार ने भारत पर शासन किया। ब्रिटिश शासन काल में भारतीय अर्थव्यवस्था गतिहीन स्थिति में रही और परिणामस्वरूप गरीबी एवं बेरोजगारी की समस्याओं ने जटिल रूप धारण कर लिया ।

स्वतंत्रता के बाद सन् 1951 से भारत में नियोजित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया है और अब तक दस पंचवर्षीय योजनाओं का कार्यकाल पूरा हो चुका है तथा ग्यारहवीं योजना प्रगति पर है। इस अवधि में कृषि, उद्योग, खनिज, यातायात एवं सेवा क्षेत्र में तेजी से

परिवर्तन हुआ है। सन् 1991 से देश में नई आर्थिक नीति को अपनाया गया है और इसके अंतर्गत तीव्र आर्थिक विकास के उद्देश्य से निजीकरण को महत्व दिया गया है। इसके साथ ही देश की अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ने हेतु भी ठोस कार्यक्रमों को मूर्त रूप दिया जा रहा है। संक्षेप में भारतीय अर्थव्यवस्था एक विकासशील अर्थव्यवस्था (Developing Economy) है और यह अनेक कठिनाइयों के बावजूद तेजी से विकास-पथ पर बढ़ रही है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
- विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
- आर्थिक स्थिरता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के उपायों का विश्लेषण कर सकें।

1.3 भारत में जनशक्ति उपयोग

श्रम उत्पादन का प्राथमिक एवं सबसे महत्वपूर्ण साधन है क्योंकि वह न केवल स्वयं उत्पादक है वरन् उत्पादन के अन्य साधनों को भी सक्रिय बनाकर उन्हें उत्पादक गतिविधियों के लिए प्रयोग योग्य बनाता है। इसीलिए श्रमशक्ति का आकार एवं उसका उपयोग देश के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

1.3.1 कार्यशील जनसंख्या

किसी भी देश की कुल जनसंख्या में से कार्यरत जनसंख्या 'कार्यशील जनसंख्या' कहलाती है। कार्यशील जनसंख्या का अनुपात किसी भी देश में काम करने वाले लोगों की संख्या, आयु संरचना, जीवन प्रत्याशा, रोजगार के अवसरों की उपलब्धता आदि पर निर्भर करता है। जनसंख्या के कुछ वर्ग विशेषतया 15 वर्ष से कम आयु वाले और 64 वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्ति उत्पादक गतिविधियों में हिस्सा नहीं लेते हैं, अतः उन्हें श्रम शक्ति में शामिल नहीं किया जाता है। आधुनिक युग में श्रम शक्ति में केवल 15 वर्ष से 64 वर्ष के बीच की आयु वाले लोगों को सम्मिलित किया जाता है।

भारत में 1991 की जनगणना के अनुसार कार्यशील जनसंख्या को दो भागों में बाँटा गया था, ये निम्न हैं-

(i) मुख्य कार्यशील जनसंख्या - इसमें ऐसे व्यक्ति शामिल किये गये थे कि वर्ष के दौरान 6 माह (183 दिन) अथवा उससे अधिक दिनों तक कार्यरत पाये गये ।

(ii) सीमान्त कार्यशील जनसंख्या- इसमें ऐसे व्यक्ति शामिल किये गये जिन्होंने वर्ष के अधिकांश भाग में कार्य नहीं किया था। दूसरे शब्दों में, जिन्होंने वर्ष के दौरान 6 माह से कम दिनों कार्य किया था। किसी भी देश में श्रमशक्ति के अनुमान उत्पादक गतिविधियों के लिए उपलब्ध श्रम की जानकारी प्रदान करते हैं, परन्तु बेरोजगारी के कारण इस श्रम शक्ति का कुछ हिस्सा उत्पादक गतिविधियों में भाग नहीं लेता है। इसलिए श्रमशक्ति के साथ-साथ 'श्रम सहभागिता दर' पर भी ध्यान देना आवश्यक है। श्रम सहभागिता दर किसी देश की कुल जनसंख्या से कुल कार्यशील व्यक्तियों का अनुपात होती है। भारत में कुल जनसंख्या से कार्यशील जनसंख्या का अनुपात काफी कम है।

1.3.2 श्रम-शक्ति भागीदारिता एवं निर्भरता अनुपात

आर्थिक क्षेत्र में भागीदारी के आधार पर जनुसंख्या को दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है। यथा (a) कार्यशील जनसंख्या और (b) निर्भर या आश्रित जनसंख्या। कार्यशील जनसंख्या को ही जनशक्ति कहा जाता है। निर्भर जनसंख्या में वे सभी लोग आते हैं, जो अपने पालन-पोषण एवं भोजन आदि के लिये कार्यशील जनसंख्या पर निर्भर रहते हैं। आर्थिक पिछड़ेपन, गरीबी एवं जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण प्रायः विकासशील देशों में विकसित देशों की तुलना में निर्भरता अनुपात अधिक रहता है। उदाहरणार्थ जहाँ भारत में प्रति एक कार्यशील व्यक्ति पर निर्भर व्यक्तियों की संख्या 1.8 है, वहीं यह संख्या ब्रिटेन में केवल 0.94, जापान में 1.34, इटली में 1.41 एंव अमेरिका में 1.51 है।

भारत में जनसंख्या की आर्थिक क्रियाओं में भागीदारी एवं आश्रितता का अध्ययन करने से एक तथ्य स्पष्ट होता है, वह यह है कि जनसंख्या में वृद्धि के कारण जहाँ कार्यशील जनशक्ति के अनुपात में कमी हुई है, वहीं आश्रित जनसंख्या का अनुपात बढ़ा है। इसका मूल कारण जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होने के कारण 0-14 आयु समूह की जनसंख्या में वृद्धि होना है। तालिका-1 में कुल जनसंख्या में कार्यशील जनशक्ति तथा आश्रित जनसंख्या का प्रतिशत एवं आश्रितता अनुपात को दर्शाया गया है।

तालिका - 1

भारत में कार्यशील एवं आश्रित जनसंख्या का प्रतिशत एवं आश्रितता का अनुपात

(1901 से 2001)

जनगणना वर्ष	कुल जनसंख्या से प्रतिशत		प्रति कार्यशील व्यक्ति पर आश्रितों की संख्या (आश्रितता अनुपात)
	कार्यशील जनशक्ति	आश्रित जनसंख्या	
1901	46.61	50.39	1.55

1961	42.98	57.02	1.33
1971	33.54	66.46	1.98
1981	33.44	66.54	1.99
1991	37.46	66.86	1.80
2001	39.40	60.90	1.56

तालिका - 1 के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि सन् 1901 में कुल जनसंख्या का 46.61 प्रतिशत भाग जनशक्ति के अन्तर्गत था, घटकर सन् 1951 में 39.10 प्रतिशत एवं 1981 में 33.14 प्रतिशत हो गया। पुनः सन् 1991 में कार्यशील जनशक्ति का प्रतिशत बढ़कर 37.46 हो गया था जो कि वर्ष 2001 में बढ़कर 39.1 प्रतिशत हो गया है। सन् 1901 में प्रति कार्यशील व्यक्ति के पीछे केवल 1.15 निर्भर व्यक्ति थे। यह अनुपात क्रमशः बढ़ा है तथा प्रति कार्यशील व्यक्ति पर निर्भर व्यक्तियों की संख्या बढ़कर सन् 1951 में 1.56, 1981 में 1.99 हो गयी। वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार आश्रितता का अनुपात घटकर 1.80 हो गया था, जो कि 2001 में घटकर 1.56 रह गया है।

भारत की कार्यशील जनसंख्या की एक प्रमुख विशेषता यह है कि कुल जनशक्ति में पुरुषों का प्रतिशत 1991 में 77.17 एवं महिलाओं का 22.83 था। दूसरे शब्दों में महिलाओं में निर्भरता का प्रतिशत बहुत अधिक है। कार्यशील जनसंख्या का ग्रामीण-शहरी आधार पर विश्लेषण करने से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि कुल ग्रामीण-जनसंख्या का 39.98 प्रतिशत कार्यशील एवं शेष 60.02 प्रतिशत निर्भर है। इसके विपरीत कुल शहरी जनसंख्या का 30.01 प्रतिशत कार्यशील एवं शेष 69.99 प्रतिशत निर्भर व्यक्तियों का है। दूसरे शब्दों में ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या में भागीदारी का प्रतिशत अधिक है। इसके प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं-

(i) भारत में शहरी क्षेत्र की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी अधिक है। फलतः परिवार के भरण-पोषण के लिये छोटी उम्र में ही बच्चे काम करने लगते हैं।

(ii) ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा सुविधाएँ तुलनात्मक कम है। फलतः ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चे काम में जल्दी लग जाते हैं।

(iii) ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा की व्यवस्था नहीं होती। फलतः ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों को उच्च शिक्षा के लिए शहरों में रहना पड़ता है। इससे शहरी क्षेत्रों में आश्रितता अनुपात में वृद्धि हो जाती है।

(iv) ग्रामीण क्षेत्रों में महिला श्रमिक शहरी क्षेत्रों की तुलना में अधिक होती है। गरीबों के कारण महिलाएँ कृषि क्षेत्र में बड़ी संख्या में कार्य करती हैं। फलतः ग्रामों में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात शहरों की तुलना में अधिक होता है।

1.3.3 व्यावसायिक संरचना- प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र

सामान्यतः कार्यशील जनसंख्या (भागीदारिता) को व्यवसायों के आधार पर तीन वर्गों में विभक्त किया जाता है, यथा - (1) प्राथमिक क्षेत्र, (2) द्वितीयक क्षेत्र और (3) तृतीयक क्षेत्र। ये निम्न प्रकार हैं :-

(1) प्राथमिक क्षेत्र (Primary Sector)

प्राथमिक क्षेत्र के व्यवसायों में कृषि, पशुपालन, मछली पालन, वन, बागान एवं खनन आदि क्रियाओं को शामिल किया जाता है। प्रायः अल्पविकसित देशों में जनसंख्या का बड़ा भाग इन व्यवसायों पर निर्भर करता है। विकसित देशों में भी प्रारम्भ में कृषि व अन्य प्राथमिक व्यवसायों की प्रधानता रही है। भारत एवं अन्य अल्पविकसित देशों में आज भी कृषि एक प्रमुख व्यवसाय है। इसके साथ ही पशुपालन, मुर्गीपालन, मछली पकड़ना, वनों से लकड़ी काटना अथवा अन्य वन उत्पादों जैसे महुआ, अचार, गोंद, तेंदू पत्ता, जड़ी-बूटियाँ आदि को एकत्रित करना भी महत्वपूर्ण व्यवसाय हैं। प्राथमिक व्यवसायों पर निर्भरता अल्पविकसित देशों में विकसित देशों की तुलना में कहीं अधिक है। इसका कारण यह है कि जैस-जैसे कोई भी पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था विकास करती है, प्राथमिक व्यवसायों जैसे कृषि का महत्व धीरे-धीरे कम होता जाता है तथा द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र का महत्व बढ़ता है। प्रायः सभी विकसित अर्थव्यवस्थाओं में उद्योगों के विकास के साथ-साथ तृतीयक गतिविधियों या सेवा क्षेत्र का भी विकास हुआ है। जबकि प्राथमिक क्षेत्र (विशेषकर कृषि) के सापेक्षिक महत्व में कमी हुई है।

प्राथमिक क्षेत्र में खनन के अतिरिक्त कृषि व अन्य प्राथमिक व्यवसाय अधिकतर श्रम प्रधान होते हैं जिससे इनमें उत्पादकता का स्तर कम रहता है। इन व्यवसायों का स्वरूप ऐसा है कि उनमें अत्यधिक पूँजी प्रधान तकनीकों और मशीनों का प्रयोग बढ़ाने पर भी उत्पादकता में बहुत अधिक वृद्धि नहीं की जा सकती है। इसीलिए भारत जैसे विकासशील देशों में व्यापक स्तर पर औद्योगीकरण न होने के कारण उद्योगों में कार्यरत जनसंख्या का प्रतिशत कम है तथा राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय का स्तर भी विकसित देशों की तुलना में कम है।

(2) द्वितीयक क्षेत्र (Secondary Sector)

द्वितीयक क्षेत्र के व्यवसायों में उद्योग (फैक्टरी उद्योग तथा लघु व कुटीर उद्योग), भवन निर्माण आदि में कार्यरत श्रम शक्ति को शामिल किया जाता है। भारत एवं अन्य अल्पविकसित देशों में प्राथमिक व्यवसायों जैसे कृषि की तुलना में द्वितीयक उद्योगों में बहुत कम लोगों को काम मिलता है। चूँकि अधिकांश द्वितीयक उद्योग पूँजी प्रधान होते हैं और आर्थिक रूप से पिछड़े देशों में पूँजी की कमी के कारण उद्योगों को विकसित करना कठिन होता है। यद्यपि भारत जैसे विकासशील देशों में लघु और कुटर उद्योगों

का विकास सरलता से किया जा सकता है। इसीलिए विकासशील अर्थव्यवस्था में द्वितीयक उद्योगों के क्षेत्र में लघु और कुटीर उद्योगों का क्षेत्र रोजगार की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण होता है। भारत में कृषि के बाद रोजगार प्रदान करने वाला दूसरा सबसे बड़ा क्षेत्र लघु और कुटीर उद्योगों का ही है। देश में गम्भीर बेरोजगारी की समस्या को देखते हुए लघु और कुटीर उद्योगों का विकास अत्यंत आवश्यक है।

द्वितीयक क्षेत्र में फैक्टरी उद्योग जहाँ पूँजी प्रधान होते है वहीं लघु व कुटीर उद्योग श्रम प्रधान होते हैं। यद्यपि हस्तकला उद्योगों में अधिक लोगों को रोजगार मिलता है, किन्तु उत्पादकता का स्तर निम्न होने के कारण इनमें कार्यरत व्यक्तियों की आय कम होती है। उल्लेखनीय है कि देश में द्वितीयक क्षेत्र में हस्तकला उद्योगों की तुलना में फैक्टरी उद्योगों का तेजी से विकास होने पर राष्ट्रीय आय के स्तर में काफी सुधार होता है। इसके साथ-साथ बचत और पूँजी निर्माण की क्षमता भी बढ़ती है जिससे औद्योगिक विकास को गति मिलती है।

(3) तृतीयक क्षेत्र (Tertiary Sector)

तृतीयक क्षेत्र के व्यवसायों में व्यापार, परिवहन, संचार, बैंकिंग, बीमा एवं अन्य सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है। प्रो. साइमन कुजनेट्स तथा कोलिन क्लार्क ने इन्हें सेवा उद्योग (Service Industries) कहा है। तृतीयक या सेवा क्षेत्र में श्रम-शक्ति की उत्पादकता और आय तुलनात्मक अधिक होती है। अतः जब श्रम शक्ति का बड़ा भाग प्राथमिक व्यवसायों (कृषि) से द्वितीयक उद्योगों में और अन्ततः तृतीयक उद्योगों (सेवाओ) में बढ़ता है तो इसे देश की आर्थिक प्रगति का सूचक माना जाता है। उल्लेखनीय है कि अमेरिका, इंग्लैण्ड, जापान, कनाडा आदि विकसित देशों में श्रम शक्ति का 70 प्रतिशत से अधिक भाग तृतीयक क्षेत्र में कार्यरत है। जबकि भारत में केवल 23 प्रतिशत व्यक्ति ही तृतीयक क्षेत्र में कार्यरत है।

जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण से संबंधित समंकों का संकलन करना एक जटिल कार्य होता है। भारत जैसे अल्पविकसित देशों के संदर्भ में इन समंकों को एकत्रित करने में एक महत्वपूर्ण कठिनाई यह आती है कि देश में जनसंख्या का एक बड़ा भाग ऐसा है जो केवल एक ही विशिष्ट कार्य नहीं करता है। प्रायः अनेक लोग एक से अधिक काम करते हैं तथा समय-समय पर अपना व्यवसाय बदलते रहते हैं। उदाहरणार्थ - भारत में शहरों में कार्यरत अनेक व्यक्ति फसलों की बुवाई और कटाई के सयम गाँवों में लौट आते है जिससे वह वहाँ रह रहे अपने परिवार जनों की मदद कर सकें। इस प्रकार स्पष्ट विशिष्टीकरण के अभाव में जनसंख्या का व्यावसायिक आधार पर सही ढंग से वर्गीकरण करना मुश्किल कार्य होता है।

1.3.4 व्यावसायिक संरचना के निर्धारक घटक

एक देश की व्यावसायिक संरचना या प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र में श्रमशक्ति की कार्यरतता अनेक घटकों पर निर्भर करती है। ये घटक निम्न प्रकार हैं -

1. भौगोलिक घटक (Geographical Factors)- भारत एवं अन्य अल्पविकसित देशों में भौगोलिक घटक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रायः लोगों का व्यवसाय निर्धारण करने में प्राकृतिक संसाधनों, जैसे भूमि की उर्वरता, मौसम, खनिज पदार्थों की उपलब्धता आदि प्रभाव डालते हैं।

2. श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण (Division of Labour and Specialisation)- श्रम विभाजन के अभाव में लोग प्राथमिक व्यवसायों जैसे कृषि एवं पशुपालन आदि में लगे रहते हैं। किन्तु श्रम विभाजन होने पर विशिष्टीकरण के फलस्वरूप श्रम की उत्पादकता तीव्र गति से बढ़ती है तथा प्राथमिक क्षेत्र से द्वितीयक क्षेत्रों की ओर श्रम शक्ति का गमन होने लगता है।

3. उत्पादक शक्तियों का विकास (Development of Productive Force)- देश की व्यावसायिक संरचना उत्पादक शक्तियों के विकास पर बहुत हद तक निर्भर करती है। उत्पादक शक्तियों और नई औद्योगिक तकनीकों का विकास न होने पर श्रम की उत्पादकता कम रहती है तथा जनसंख्या का अधिकांश भाग मजबूरी में केवल खाद्य पदार्थों के उत्पादन में लगा रहता है। भारत में भी यही समस्या विद्यमान है फलतः जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि व सहायक उद्योगों में लगा हुआ है। किन्तु उत्पादक शक्तियों का विकास होने पर लोग कृषि व्यवसाय से हटते जाते हैं तथा द्वितीयक या उद्योग और तृतीयक या सेवा क्षेत्रों के व्यवसायों में सम्मिलित होते जाते हैं।

4. प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income)- प्रति व्यक्ति आय का स्तर देश की जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना पर गहरा प्रभाव डालता है। भारत में प्रति व्यक्ति आय का स्तर निम्न होने के कारण राष्ट्रीय आय का बड़ा भाग प्राथमिक क्षेत्र के उत्पादन पर ही व्यय कर दिया जाता है। इसके परिणामस्वरूप श्रम शक्ति का बड़ा भाग कृषि, पशुपालन, वानिकी, मत्स्य पालन आदि व्यवसायों में लगा हुआ है। किन्तु आर्थिक विकास के फलस्वरूप जब प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है तो औद्योगिक वस्तुओं की मांग बढ़ती है तथा सेवाओं का विस्तार होता है। इससे द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र के व्यवसायों में श्रम शक्ति का प्रतिशत बढ़ने लगता है। भारत में विगत कुछ वर्षों में आर्थिक विकास के फलस्वरूप द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र में श्रम शक्ति का प्रतिशत बढ़ा है।

1.3.5 भारत में जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण

भारत में कार्यशील जनसंख्या का विभिन्न क्षेत्रों में व्यावसायिक वर्गीकरण निम्न प्रकार किया गया है-

(a) प्राथमिक क्षेत्र (1) कृषि, (2) वन एवं लट्ठे बनाना, (3) मछली पालन, (4) खनन और उत्खनन ।

(b) द्वितीयक क्षेत्र (5) विनिर्माण (i) पंजीकृत, एवं (ii) गैर-पंजीकृत, (6) निर्माण, (7) विद्युत, गैस और जल संभरण ।

(c) तृतीयक क्षेत्र- (8) परिवहन, संचार एवं भण्डारण, (9) व्यापार और जलपान गृह, (10) व्यापार, बैंक तथा बीमा, (11) स्थावन सम्पदा, आवास गृहों का स्वामित्व एवं व्यावसायिक सेवाएँ, (12) सरकारी प्रशासन एवं प्रतिरक्षा, (13) अन्य सेवाएँ, एवं (14) विदेशी सौदे ।

भारत में कार्यशील जनसंख्या का क्षेत्रवार व्यावसायिक वितरण तालिका 2 में दर्शाया गया है।

तालिका -2

भारत में कार्यशील जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण (प्रतिशत में)

व्यवसाय	1901	1951	1971	1981	1991	2001
1. प्राथमिक क्षेत्र	71.9	72.7	72.6	69.3	67.4	60.0
2. द्वितीयक क्षेत्र	12.5	10.01	10.7	12.9	12.1	17.05
3. तृतीयक क्षेत्र	15.6	17.3	16.7	17.8	20.5	22.5

तालिका - 2 से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के पूर्व कार्यशील जनसंख्या का अधिकांश भाग प्राथमिक क्षेत्र या कृषि में लगा हुआ था। इसका कारण यह है कि ब्रिटिश शासकों ने भारत के औद्योगिक विकास की हमेशा उपेक्षा की। स्वतंत्रता के बाद भारत में नियोजित आर्थिक विकास के अन्तर्गत औद्योगीकरण के कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये। वर्ष 1951 की जनगणना के अनुसार प्राथमिक क्षेत्र या कृषि में 72.7 प्रतिशत लोग लगे हुए थे, यह प्रतिशत 1991 में 67.4 तथा पुनः घटकर 2001 में 60.0 प्रतिशत हो गया। दूसरी ओर द्वितीयक क्षेत्र में वर्ष 1951 में कार्यशील जनसंख्या का 10.0 प्रतिशत भाग कार्यरत था जो क्रमशः धीरे-धीरे बढ़कर 1991 में 12.1 प्रतिशत तथा 2001 में 17.5 प्रतिशत हो गया है। तृतीयक क्षेत्र में वर्ष 1951 में कार्यशील जनसंख्या का 17.3 प्रतिशत भाग लगा हुआ था जो कि बढ़कर 1991 में 20.5 प्रतिशत तथा 2001 में 22.5 प्रतिशत हो गया ।

इस प्रकार आर्थिक नियोजन के 50 वर्षों में कृषि पर निर्भरता में कुछ कमी हुई है। यद्यपि द्वितीयक (उद्योग) एवं तृतीयक (सेवा) क्षेत्रों में कार्यरत लोगों की संख्या बढ़ी है किन्तु प्रतिशत के रूप में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। स्पष्ट है कि भारत में अभी भी लगभग 2/3 जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। व्यावसायिक ढाँचे में जो परिवर्तन हो रहे हैं उनकी गति बहुत धीमी है। इसका प्रमुख कारण यह है कि स्वतंत्रता के बाद देश में जनसंख्या की तीव्र गति से वृद्धि हुई जिससे कृषि क्षेत्र में जनसंख्या का दबाव बढ़ता

गया। इसके अतिरिक्त औद्योगिक विकास की दर में आपेक्षित वृद्धि नहीं हो सकी जिससे कृषि क्षेत्र से औद्योगिक एवं तृतीयक या सेवा क्षेत्र की ओर लोगों का अंतरण बहुत कम हुआ। सरकारी नीतियाँ व कार्यक्रम भी पिछले पाँच दशकों में कृषि क्षेत्र से बाहर रोजगार के अवसरों को बढ़ाने में असफल रहे, फलस्वरूप कृषि क्षेत्र पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता गया। यद्यपि 1991 के बाद भारी व मूलभूत उद्योगों की स्थापना पर विशेष जोर दिया गया तथा सेवा क्षेत्र का तेजी से विकास हुआ जिससे द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्र में श्रमशक्ति का प्रतिशत आर्थिक सुधारों की अवधि में बढ़ा है। वर्तमान में आवश्यकता इस बात की है कि जनशक्ति का हस्तान्तरण प्राथमिक क्षेत्र से द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र में तेजी से हो।

1.3.6 सकल घरेलू उत्पादन में विभिन्न क्षेत्रों का योगदान

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था एवं उसकी विकास दर को समझने के लिए यह आवश्यक होता है कि घरेलू उत्पाद की संरचना को समझा जाये। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि "किसी अर्थव्यवस्था में एक वर्ष की अवधि में देश की भौगोलिक सीमाओं के अन्दर उत्पादित समस्त वस्तुओं तथा सेवाओं के मौद्रिक मूल्य को सकल घरेलू उत्पाद (GDP) कहते हैं।" सकल घरेलू उत्पाद में असंख्य वस्तुओं एवं सेवाओं (व्यवसाय या क्षेत्र) का मौद्रिक मूल्य जुड़ा रहता है। इन व्यवसायों या क्षेत्रों का योगदान अर्थव्यवस्था के विकास के साथ-साथ परिवर्तित होता रहता है। इस परिवर्तन के अध्ययन के लिये अर्थव्यवस्था में योगदान देने वाले व्यवसायों या क्षेत्रों को तीन भागों में विभक्त किया जाता है, यथा - प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र। भारत में इन क्षेत्रों के आधार पर सकल घरेलू उत्पादन की सरंचना और उसमें हुए परिवर्तनों का तुलनात्मक विवरण वर्ष 1999-2000 की कीमतों पर एवं नई श्रृंखला वर्ष 2004-05 की कीमतों पर तालिका 3 में दर्शाया गया है।

तालिका - 3

साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP) की संरचना (प्रतिशत में)

वर्ष	प्राथमिक क्षेत्र (Primary Sector)	द्वितीयक क्षेत्र (Secondary Sector)	तृतीयक क्षेत्र (Tertiary Sector)	कुल Total
1950-51	54.7	13.7	29.6	100.0
1990-91	34.0	23.2	42.8	100.0
2003-04	23.9	23.4	52.7	100.0
		नई श्रृंखला 2004-05 की कीमतों		

-		पर		
2004-05	21.9	25.1	53.3	100.0
2007-08	19.3	26.3	54.4	100.0
2008-09	18.0	25.7	56.3	100.0
2009-10 (अनुमान)	16.9	28.8	57.3	100.0

स्त्रोत - Economic Survey 2010-11, Government of India, Oxford University Press, New Delhi 2011, Table 1.3 A page A-5

तालिका - 3 में दर्शाये गये साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद की सरंचना के क्षेत्रवार विश्लेषण से निम्न निष्कर्ष सामने आते हैं-

(1) प्राथमिक क्षेत्र जिसमें कृषि, वन, मछली पालन एवं खनन आदि व्यवसायों को शामिल किया जाता है, इसका भाग सकल घरेलू उत्पाद 1950-51 में 54.7 प्रतिशत था, जो निरन्तर घटकर 2009-10 में 16.9 प्रतिशत रह गया है। इस प्रकार देश में अब कृषि एवं उससे संबंधित व्यवसायों का सापेक्षिक महत्व कम हो रहा है। उल्लेखनीय है कि जिन वर्षों मे नियमित वर्षा नहीं हुई उन वर्षों में फसलें ठीक न होने के कारण कृषि क्षेत्र का राष्ट्रीय आय में योगदान सामान्य वर्षों की तुलना में कम रहा है। यद्यपि कृषि आज भी मानसून से प्रभावित होती है किन्तु फिर भी राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि या प्राथमिक क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान है।

(2) द्वितीयक क्षेत्र के अन्तर्गत विनिर्माण, भवन निर्माण, विद्युत, गैस, जल संभरण आदि को शामिल किया जाता है। इस क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में हिस्सा 1950-51 में 13.7 प्रतिशत था जो कि बढ़कर 2009-10 में 25.8 प्रतिशत हो गया है। यद्यपि नियोजन अवधि में राष्ट्रीय आय में औद्योगिक क्षेत्र का योगदान बढ़ा है किन्तु यह अभी भी कम है। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था का पिछड़ापन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उल्लेखनीय है कि द्वितीयक क्षेत्र में उद्योगों एवं खनिज उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई है किन्तु लघु व कुटीर उद्योगों का विस्तार तुलनात्मक कम हो रहा है।

(3) तृतीयक क्षेत्र में परिवहन, संचार, बैंकिंग, बीमा, व्यापार, लोक प्रशासन, प्रतिरक्षा आदि सम्मिलित किये जाते हैं। इस क्षेत्र का राष्ट्रीय आय में भाग नियोजन काल में तेजी से बढ़ा है। तालिका 3 के अनुसार तृतीयक क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में हिस्सा 1950-51 में 29.6 प्रतिशत था जो कि बढ़कर 2009-10 में 57.3 प्रतिशत हो गया है। उल्लेखनीय

है कि विगत तीन दशकों में देश की आर्थिक आधारित संरचना में तेजी से सुधार हुआ है तथा लोक प्रशासन व प्रतिरक्षा का महत्व बढ़ा है। इसके फलस्वरूप सेवा क्षेत्र का राष्ट्रीय उत्पाद में प्रमुख योगदान है।

संक्षेप में, अन्य विकसित देशों के समान भारत में भी द्वितीयक या औद्योगिक क्षेत्र तथा तृतीयक या सेवा क्षेत्र का महत्व क्रमशः बढ़ रहा है। आर्थिक विकास के साथ इसमें और अधिक विस्तार होने की पूर्ण संभावना है। किन्तु आज भी भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान बनी हुई है जबकि इस क्षेत्र का राष्ट्रीय उत्पाद में भाग घट रहा है। अतः यह आवश्यक है कि उद्योग, खनन, परिवहन, वाणिज्य आदि क्षेत्रों का तीव्र गति से विकास किया जाये, जिससे अर्थव्यवस्था का पिछड़ापन दूर होगा तथा संतुलित विकास के साथ आर्थिक प्रगति होगी।

1.4 सार संक्षेप

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना में तीन प्रमुख क्षेत्र होते हैं: कृषि, उद्योग और सेवा क्षेत्र। इन तीनों का भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान है। आइए संक्षेप में इन क्षेत्रों के बारे में जानते हैं:

1. **कृषि क्षेत्र**:
   भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार कृषि रहा है, हालांकि अब इसका योगदान कम हो गया है। कृषि में भूमि, जल, और श्रमिकों का उपयोग होता है। भारत में अधिकांश ग्रामीण आबादी कृषि कार्यों में संलग्न है। कृषि क्षेत्र में धान, गेहूं, गन्ना, कपास, चाय, कॉफी, फल, और सब्जियाँ प्रमुख उत्पाद हैं।
2. **उद्योग क्षेत्र**:
   उद्योग क्षेत्र में खनन, निर्माण, निर्माण सामग्री, विनिर्माण, और बिजली उत्पादन शामिल हैं। यह क्षेत्र भारतीय GDP में महत्वपूर्ण योगदान करता है। प्रमुख उद्योगों में वाहन निर्माण, कपड़ा उद्योग, खाद्य प्रसंस्करण, धातु, रसायन और पेट्रोलियम शामिल हैं। औद्योगिक क्षेत्र ने शहरों में रोजगार के अवसर पैदा किए हैं और निर्यात को बढ़ावा दिया है।
3. **सेवा क्षेत्र**:
   सेवा क्षेत्र में बैंकिंग, वित्त, शिक्षा, स्वास्थ्य, आईटी (सूचना प्रौद्योगिकी), संचार, परिवहन, और पर्यटन जैसी सेवाएँ शामिल हैं। यह क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था में सबसे तेजी से बढ़ने वाला क्षेत्र है और अब यह GDP में सबसे बड़ा योगदानकर्ता

बन चुका है। भारत एक प्रमुख आईटी सेवा प्रदाता देश है, जिसमें कंपनियाँ जैसे इंफोसिस, टाटा कंसल्टेंसी सर्विसेज (TCS), और विप्रो शामिल हैं।

1.5 मुख्य शब्द

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना को समझने के लिए कुछ प्रमुख मुख्य शब्द (टर्मिनोलॉजी) का जानना महत्वपूर्ण है। यहाँ कुछ महत्वपूर्ण शब्द दिए गए हैं जो भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से संबंधित हैं:

1. **कृषि क्षेत्र (Agricultural Sector)**:
   यह वह क्षेत्र है जिसमें कृषि, बागवानी, पशुपालन, मछली पालन, और जंगल उत्पादकता शामिल हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में इसका ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण स्थान रहा है।
2. **औद्योगिक क्षेत्र (Industrial Sector)**:
   यह क्षेत्र खनन, निर्माण, विनिर्माण, और ऊर्जा उत्पादन से संबंधित है। इसमें कच्चे माल को तैयार उत्पादों में बदलने के लिए कारखाने, संयंत्र, और अन्य उद्योग शामिल हैं।
3. **सेवा क्षेत्र (Service Sector)**:
   यह क्षेत्र वित्त, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यटन, परिवहन, संचार, और सूचना प्रौद्योगिकी जैसी सेवाओं से संबंधित है। यह भारतीय अर्थव्यवस्था का सबसे तेजी से बढ़ता क्षेत्र है।
4. **सकल घरेलू उत्पाद (GDP - Gross Domestic Product)**:
   यह किसी देश की आर्थिक गतिविधियों का माप है, जो एक निश्चित समयावधि में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य है।
5. **संरचनात्मक बदलाव (Structural Change)**:
   यह अर्थव्यवस्था में बदलाव को दर्शाता है, जैसे कृषि क्षेत्र से औद्योगिक और सेवा क्षेत्र की ओर स्थानांतरण।
6. **निर्यात (Export)**:
   यह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से एक देश अपने उत्पादों और सेवाओं को दूसरे देशों को भेजता है, जिससे विदेशी मुद्रा अर्जित होती है।
7. **आयात (Import)**:
   यह प्रक्रिया है जिसमें एक देश अन्य देशों से वस्तुएं और सेवाएँ खरीदता है।

8. **श्रम** (**Labor**):
   यह वह मानव संसाधन है जो उत्पादन प्रक्रिया में योगदान करता है। श्रम क्षेत्र का बड़ा हिस्सा भारत में कृषि और सेवा क्षेत्रों में कार्यरत है।
9. **संघीय ढांचा** (**Federal Structure**):
   भारत में संघीय ढांचा है, जिसमें केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के बीच शक्ति का वितरण होता है। यह आर्थिक नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन में भी परिलक्षित होता है।
10. **समानता** (**Equity**):
    यह आर्थिक विकास में समानता के सिद्धांत को दर्शाता है, जहां समाज के सभी वर्गों के लिए समान अवसर और संसाधन उपलब्ध हों।
11. **महँगाई** (**Inflation**):
    यह कीमतों के सामान्य स्तर में वृद्धि को दर्शाता है, जिसके कारण वस्तुओं और सेवाओं की खरीदारी महंगी हो जाती है।
12. **आधुनिकीकरण** (**Modernization**):
    यह उत्पादन और प्रौद्योगिकी में सुधार की प्रक्रिया है, जिससे दक्षता और उत्पादकता में वृद्धि होती है।
13. **समान विकास** (**Inclusive Growth**):
    यह विकास की वह प्रक्रिया है जो सभी वर्गों और क्षेत्रों को समान रूप से लाभ पहुंचाती है, जिससे सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ कम होती हैं।
14. **वित्तीय समावेशन** (**Financial Inclusion**):
    यह नीति है जिसके तहत सभी वर्गों को बैंकों, वित्तीय सेवाओं और ऋण सुविधाओं तक पहुँच सुनिश्चित करना है।
15. **नौकरी सृजन** (**Job Creation**):
    यह वह प्रक्रिया है जिसमें नए रोजगार के अवसर उत्पन्न किए जाते हैं, ताकि बेरोजगारी की समस्या कम हो सके।
16. **विदेशी निवेश** (**Foreign Investment**):
    यह विदेशी कंपनियों या व्यक्तियों द्वारा किसी देश में निवेश करने की प्रक्रिया है, जिससे उस देश की अर्थव्यवस्था को गति मिलती है।

1.6 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना पर आधारित स्व-प्रगति परिक्षण (Self-assessment) प्रश्नों के उत्तर निम्नलिखित हैं:

1. **प्रश्न:** भारतीय अर्थव्यवस्था के तीन प्रमुख क्षेत्र कौन से हैं?
उत्तर: भारतीय अर्थव्यवस्था के तीन प्रमुख क्षेत्र हैं:
   - **कृषि क्षेत्र** (Agricultural Sector)
   - **औद्योगिक क्षेत्र** (Industrial Sector)
   - **सेवा क्षेत्र** (Service Sector)
2. **प्रश्न:** भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र का योगदान क्या है?
उत्तर: कृषि क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण भाग है, हालांकि अब इसका GDP में योगदान घटकर लगभग 16-17% रह गया है। यह क्षेत्र भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था, रोजगार सृजन और खाद्य सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है।
3. **प्रश्न:** औद्योगिक क्षेत्र की विशेषताएँ क्या हैं?
उत्तर:
   - औद्योगिक क्षेत्र में खनन, निर्माण, विनिर्माण, और ऊर्जा उत्पादन शामिल हैं।
   - इसमें कारखानों, उद्योगों, और उत्पादन प्रक्रियाओं द्वारा कच्चे माल को तैयार उत्पादों में बदला जाता है।
   - यह क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था में रोजगार सृजन और निर्यात के लिए महत्वपूर्ण है।
   - भारत में प्रमुख उद्योगों में वाहन निर्माण, कपड़ा, रसायन, धातु, और पेट्रोलियम शामिल हैं।
4. **प्रश्न:** सेवा क्षेत्र का भारतीय अर्थव्यवस्था में क्या योगदान है?
उत्तर:
   - सेवा क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का सबसे तेजी से बढ़ता हुआ क्षेत्र है और वर्तमान में यह GDP में सबसे बड़ा योगदानकर्ता है।
   - इसमें बैंकिंग, शिक्षा, स्वास्थ्य, सूचना प्रौद्योगिकी (IT), संचार, परिवहन और पर्यटन जैसी सेवाएँ शामिल हैं।

- भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी (IT) क्षेत्र विशेष रूप से विश्व भर में प्रमुख भूमिका निभाता है।

5. **प्रश्न:** संरचनात्मक बदलाव का अर्थ क्या है?
उत्तर:
संरचनात्मक बदलाव का अर्थ है, किसी अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में बदलाव आना, जैसे कृषि क्षेत्र से औद्योगिक और सेवा क्षेत्र की ओर स्थानांतरण। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र का योगदान घटा है, जबकि उद्योग और सेवा क्षेत्रों में वृद्धि हुई है।

6. **प्रश्न:** भारतीय अर्थव्यवस्था में विदेशों से निवेश का महत्व क्या है?
उत्तर:
   - विदेशी निवेश (Foreign Investment) भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि यह पूंजी, प्रौद्योगिकी और कौशल का संचार करता है।
   - विदेशी निवेश से रोजगार के अवसर पैदा होते हैं, उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है, और अर्थव्यवस्था में समग्र विकास होता है।
   - भारत में विदेशी निवेश से बुनियादी ढांचे का विकास, औद्योगिकीकरण और सेवा क्षेत्र के विस्तार में मदद मिली है।

7. **प्रश्न:** "महँगाई" का अर्थ क्या है और यह अर्थव्यवस्था पर कैसे प्रभाव डालती है?
उत्तर:
महँगाई (Inflation) का अर्थ है, समय के साथ वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों का सामान्य स्तर बढ़ना।
   - महँगाई अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती है क्योंकि इससे उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति घटती है और जीवन यापन की लागत बढ़ जाती है।
   - हालांकि, एक सीमित स्तर की महँगाई विकास का संकेत हो सकती है, लेकिन अत्यधिक महँगाई (Hyperinflation) आर्थिक अस्थिरता का कारण बन सकती है।

8. **प्रश्न:** सकल घरेलू उत्पाद (GDP) क्या है और भारतीय अर्थव्यवस्था में इसका क्या महत्व है?
उत्तर:

सकल घरेलू उत्पाद (GDP) किसी देश की आर्थिक गतिविधियों का माप है, जो एक निश्चित समयावधि (साल, तिमाही) में उस देश में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य है।

- भारतीय अर्थव्यवस्था में GDP के माध्यम से आर्थिक विकास की दर, उत्पादन क्षमता, और राष्ट्रीय आय का मूल्यांकन किया जाता है।
- GDP वृद्धि दर भारतीय अर्थव्यवस्था के समग्र स्वास्थ्य और विकास की दिशा को दर्शाती है।

9. **प्रश्न:** "वित्तीय समावेशन" क्या है और यह क्यों महत्वपूर्ण है?

उत्तर:

वित्तीय समावेशन (Financial Inclusion) का अर्थ है, बैंकों और वित्तीय सेवाओं का लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँचाना, खासकर उन लोगों तक जो पहले इन सेवाओं से वंचित थे।

- यह आर्थिक समानता, सामाजिक समृद्धि और गरीबी उन्मूलन के लिए महत्वपूर्ण है।
- वित्तीय समावेशन से लोगों को बचत, ऋण, बीमा और अन्य वित्तीय सेवाओं का लाभ मिल सकता है, जिससे उनका जीवन स्तर बेहतर होता है।

10. **प्रश्न:** भारतीय अर्थव्यवस्था में रोजगार सृजन का क्या महत्व है?

उत्तर:

रोजगार सृजन भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह बेरोजगारी की समस्या को कम करता है और लोगों को आय अर्जन के अवसर प्रदान करता है।

- यह सामाजिक और आर्थिक स्थिरता को बढ़ावा देता है और गरीबी उन्मूलन में मदद करता है।
- विशेष रूप से, कृषि और सेवा क्षेत्रों में रोजगार सृजन भारत की बड़ी कार्यबल जनसंख्या के लिए महत्वपूर्ण है।

1.7 संदर्भ ग्रन्थ

- बालाकृष्णन, पी. (2022)। भारतीय अर्थव्यवस्था की रिकवरी: राजनीतिक अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य। नई दिल्ली: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

- बसु, के. (2018)। विश्वासों का गणराज्य: कानून और अर्थशास्त्र के लिए एक नया दृष्टिकोण। प्रिंसटन, एनजे: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- घोष, ए. (2021)। भारत की उभरती अर्थव्यवस्था: 21वीं सदी में प्रदर्शन और संभावनाएँ। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- पनगढ़िया, ए. (2020)। इंडिया अनलिमिटेड: खोया हुआ गौरव पुनः प्राप्त करना। न्यूयॉर्क: हार्पर कॉलिन्स।
- नागराज, आर. (2019)। भारत में आर्थिक वृद्धि और विकास: नए परिप्रेक्ष्य। नई दिल्ली: रूटलेज।

1.8 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना का वर्णन कीजिए। नियोजन काल में प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों में हुए प्रमुख परिवर्तनों को स्पष्ट कीजिए।

2. भारत में कार्यशील जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण की क्षेत्रवार विवेचना कीजिए तथा सकल घरेलू उत्पाद में विभिन्न क्षेत्रों के महत्व को स्पष्ट कीजिए ।

3. नियोजन काल में भारत में प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों में श्रम शक्ति के वितरण में हुए परिवर्तनों की विवेचना कीजिए ।

4. प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र से आप क्या समझते हैं ? भारत में सकल राष्ट्रीय उत्पाद की क्षेत्रवार संरचना को समझाइये ।

5. भारत में जनशक्ति उपयोग की स्थिति को स्पष्ट कीजिए। प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों में जनशक्ति उपयोग की स्थिति में क्या परिवर्तन हुए है ?

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. भारत में जनशक्ति उपयोग को स्पष्ट कीजिए ।

2. भारत में श्रमशक्ति भागीदारिता को समझाइये ।

3. व्यावसायिक संरचना से आप क्या समझते हैं ?

4. प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र के व्यवसाय कौन से हैं ?

5. व्यावसायिक संरचना के निर्धारक घटक कौनसे होते हैं ?

6. भारत में कार्यशील जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण स्पष्ट कीजिए ।

7. भारत के सकल घरेलू उत्पाद में विभिन्न क्षेत्रों का योगदान बताइये ।

8. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना को संक्षेप में लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारत में वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या में कार्यशील जनशक्ति का प्रतिशत कितना था ?

(अ) 37 प्रतिशत

(ब) 39 प्रतिशत

(स) 41 प्रतिशत

(द) 45 प्रतिशत

2. कृषि, पशुपालन, वन, मछलीपालन, खनन आदि व्यवसायों को किस क्षेत्र के अन्तर्गत शामिल किया जाता है ?

(अ) प्राथमिक क्षेत्र,

(ब) द्वितीयक क्षेत्र,

(स) तृतीयक क्षेत्र,

(द) उपर्युक्त सभी

3.भारत में कार्यशील जनसंख्या का सबसे अधिक भाग किस क्षेत्र में कार्यरत हैं ?

(अ) प्राथमिक क्षेत्र

(ब) द्वितीयक क्षेत्र

(स) तृतीयक क्षेत्र

(द) उपर्युक्त कोई नहीं ।

4. भारत में सकल घरेलू उत्पाद में किस क्षेत्र का योगदान वर्तमान में सबसे अधिक है ?

(अ) प्राथमिक क्षेत्र

(ब) द्वितीयक क्षेत्र

(स) तृतीयक क्षेत्र

(द) उपर्युक्त कोई नहीं।

उत्तर :- (1) ब, (2) अ, (3) अ, (4) स ।

इकाई -2

भारतीय अर्थव्यवस्था की मूलभूत विशेषताएँ

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ

2.4 सार संक्षेप

2.5 मुख्य शब्द

2.6 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

2.7 संदर्भ सूची

2.8 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भौगोलिक आकार की दृष्टि से भारत विश्व में सातवें स्थान पर है। आकार की दृष्टि से कनाडा, चीन, अमेरिका, रूस, आस्ट्रेलिया और ब्राजील भारत से बड़े हैं। इसकी लम्बाई पूर्व से पश्चिम तक 2933 किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण तक 3214 किलोमीटर है। कुल स्थल सीमा लगभग 15,200 किलोमीटर है, जिसमें 6100 किलोमीटर समुद्र तट है। देश का क्षेत्रफल 31.88 वर्ग किलोमीटर है, जो जापान का 8 गुना, पाकिस्तान का 4 गुना तथा अमेरिका का लगभग एक-तिहाई भाग है। भौगोलिक दृष्टिकोण से भारत को चार भागों में विभक्त किया जाता है, यथा-(1) हिमालय का प्रदेश, (2) गंगा सिन्धु का मैदान, (3) दक्षिण का पठार और (4) समुद्र तटीय मैदान। धरातल की बनावट, समुद्र से दूरी, समुद्र तट से ऊँचाई, वर्षा आदि में अन्तर होने के कारण यहाँ जलवायु में काफी भिन्नता पायी जाती है।

जनसंख्या के दृष्टिकोण से भारत विश्व में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। विश्व की जनसंख्या का लगभग 17.5 प्रतिशत भाग भारत में निवास करता है, जबकि क्षेत्रफल विश्व का 2.4 प्रतिशत ही है। इस प्रकार भारत में भूमि-जनसंख्या अनुपात बहुत ही प्रतिकूल है। जहाँ तक समग्र राष्ट्रीय आय का प्रश्न है, विश्व की समग्र आय में भारत का अंश 1.5 प्रतिशत से भी कम है। प्रति व्यक्ति आय के दृष्टिकोण से भारत विश्व के 43 कम आय वाले देशों में है। प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण भारत में घरेलू बचत और विनियोग की मात्रा भी कम है। कम निवेश के कारण रोजगार और आय के सृजन की गति भी धीमी है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
- विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
- आर्थिक स्थिरता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के उपायों का विश्लेषण कर सकें।

2.3 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ (Features of Indian Economy)

स्वतन्त्रता के बाद सन् 1951 से भारत में नियोजित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया और अब तक दस पंचवर्षीय योजनाओं का कार्यकाल पूरा हो चुका है तथा ग्यारहवीं योजना प्रगति पर है। इस अवधि में कृषि, उद्योग, खनिज, यातायात एवं सेवा क्षेत्र में तेजी से परिवर्तन हुआ है। सन् 1991 से देश में नई आर्थिक नीति को अपनाया गया है और इसके अन्तर्गत तीव्र आर्थिक विकास के उद्देश्य से निजीकरण को महत्व दिया गया है। इसके साथ ही देश की अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ने हेतु भी ठोस कार्यक्रमों को मूर्तरूप दिया जा रहा है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था एक विकासशील अर्थ-व्यवस्था है और यह तेजी से विकास-पथ पर बढ़ रही है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय अर्थव्यवस्था को समझने के लिये इसकी विशेषताओं का समुचित अध्ययन करना होगा। इन विशेषताओं के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में अनेक ऐसे तत्व विद्यमान हैं, जिनके कारण भारतीय अर्थव्यवस्था को "अल्प विकसित अर्थव्यवस्था" (Under developed Economy) कहा जाता है। इसके साथ ही यहाँ अनेक ऐसे तत्व भी विद्यमान हैं जिनके कारण अर्थव्यवस्था का विकासशील स्वरूप स्पष्ट होता है और इससे इसे "विकासशील अर्थव्यवस्था" (Developing Economy) की संज्ञा दी जाती है।

भारतीय अर्थव्यवस्था को अल्प विकसित (Under Deveploped) कहे जाने के प्रमुख आधार है- कृषि की प्रधानता एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था, प्रति व्यक्ति निम्न आय स्तर, पूँजीनिर्माण की निम्न दर, आर्थिक विषमताएँ बेराजगारी एवं अदृश्य बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि की तीव्र दर आदि। इसके विपरीत भारतीय अर्थव्यवस्था को विकासोन्मुख या विकासशील (Developing) कहे जाने के मुख्य आधार है- नियोजन का विकसित स्वरूप, संस्थागत ढाँचे का विस्तार, उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि,

राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, बचत एवं पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि आदि। निष्कर्ष के रूप में भारतीय अर्थव्यवस्था को विकासशील कहा जाना अधिक युक्तियुक्त है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप को समझने के लिये अर्थव्यवस्था की विशेषताओं को पाँच भागों में विभक्त कर उनका अध्ययन करना अधिक सरल एवं उपयुक्त होगा-यथा (अ) आर्थिक विशेषताएँ, (ब) जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताएँ (स) तकनीकी विशेषताएँ, (द) सामाजिक विशेषताएँ (ई) अन्य विशेषताएँ । भारतीय अर्थव्यवस्था की इन विशेषताओं का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है :-

(A) आर्थिक विशेषताएँ (Economic Characteristics)

1. राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय का निम्न स्तर (Low level of National and Per Candidate Income):- अन्य विकासशील देशों के समान ही भारत में उत्पादन की न्यूनता के कारण राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय का स्तर निम्न है। वर्ष 2008 के अनुमान के अनुसार भारत की प्रति व्यक्ति आय केवल 1070 डालर है जबकि अमेरिका में यह 47,580 डालर, और इंग्लैण्ड में 45,390 डालर है। स्पष्ट है कि भारत विश्व के निर्धन देशों में से एक है। आय में कमी के साथ-साथ आय के वितरण में भी देश में भारी असमानताएँ हैं। राष्ट्रीय आय का बड़ा भाग थोड़े से धनी व्यक्तियों के पास है, जबकि अधिकांश जनसंख्या को आय का बहुत कम भाग प्राप्त होता है। देश के लगभग एक-तिहाई लोग तो गरीबी रेखा (Poverty Line) के नीचे अपना जीवन-यापन कर रहे हैं।

भारत के आर्थिक सर्वेक्षण (2010-11) के अनुसार भारत में प्रति व्यक्ति आय (चालू मूल्यों पर) वर्ष 2009-10 में 46,492 रुपये एवं 1999-2000 के मूल्यों पर 33,731 रुपये है। स्पष्ट है कि भारत में प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है।

प्रो. कुरिहारा के अनुसार "प्रति व्यक्ति निम्न वास्तविक आय अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख विशेषता है।

प्रो. यूजी नस्टेनले ने विश्व आय के वितरण की असमानताओं का विश्लेषण करते हुये लिखा है कि "संसार की 70 प्रतिशत जनसंख्या अल्प विकसित देशों में निवास करती है, जिसे विश्व की कुल आय का 20 प्रतिशत भाग ही प्राप्त होता है। इसके विपरीत अमेरिका में विश्व की कुल जनसंख्या का 5 प्रतिशत भाग निवास करता है और उसे विश्व की कुल आय का 40 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है।" विकासशील देशों के प्रति व्यक्ति आय में कमी के फलस्वरूप रहन-सहन का स्तर भी अत्यन्त निम्न होता है। इसी कारण प्रो. केयर्नक्रास ने लिखा है कि "ये देश विश्व की गन्दी बस्तियों के समान है।"

2. पूँजी की कमी (Lack of Capital):- अन्य विकासशील देशों के समान भारत में विभिन्न क्षेत्रों

में निवेश के लये पर्याप्त मात्रा में पूँजी उपलब्ध नहीं है। पूँजी की कमी के कारण कृषि, उद्योग, खनिज एवं अन्य क्षेत्रों की विकास दर बहुत कम है। पूँजी के साथ-साथ देश में पूँजी निर्माण की दर भी काफी नीची है। गरीबी के कारण देश की अधिकांश जनसंख्या की कोई बचत नहीं है। बचत एवं निवेश की दर के कम होने के कारण देश में विकास की दर भी धीमी है तथा रोजगार के अवसरों में भी पर्याप्त वृद्धि न होने के कारण बेरोजगारी एक भयावह समस्या बन गयी है। पूँजी का भारत जैसे विकासशील देशों में अभाव दो रूपों में परिलक्षित होता है (अ) प्रति व्यक्ति उपलब्ध न्यून पूँजी की मात्रा, (ब) पूँजी निर्माण की प्रचलित निम्न दर। पूँजी की न्यूनता के कारण प्रायः ये देश "गरीब पूँजी की अर्थ-व्यवस्था (Poor Capital Economy) वाले देश कहलाते हैं। पूँजी की कमी के कारण इन देशों में उत्पादन की विधियाँ एवं उपकरण पुराने होते हैं। राष्ट्रीय आय में कमी, बचत का अभाव एवं तीव्र जनसंख्या वृद्धि अर्द्ध-विकसित देशों की पूँजी निर्माण की दर को कम करती है। फलस्वरूप विकास की दर भी न्यून रहती है।

3. कृषि की प्रधानता (Predominance of Agriculture):- भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। देश की कार्यशील जनसंख्या का लगभग 60 प्रतिशत भाग अपने जीवन-यापन के लिये कृषि में कार्यरत है। इसके साथ ही राष्ट्रीय आय का लगभग 22 प्रतिशत भाग कृषि से प्राप्त होता है। कृषि की प्रधानता निर्यात-व्यापार के क्षेत्र में भी स्पष्ट दिखाई देती है। चाय, मसाले, तम्बाकू, खली, खाद्यान्न, फल-सब्जियाँ, मछली जैसे अनेक पदार्थों का निर्यात किया जाता है। देश के निर्यात-व्यापार का लगभग 20 प्रतिशत भाग इन मदों से प्राप्त होता है। अप्रत्यक्ष रूप से निर्यात व्यापार में कृषिगत क्षेत्र का योगदान कहीं अधिक है।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता के समय भारत में खेती प्राचीन पद्धति से ही की जाती थी, किन्तु वर्तमान काल में वैज्ञानिक उपकरणों, रासायनिक खाद, उन्नत किस्म के बीजों के प्रयोग द्वारा भारतीय कृषि में "हरित क्रान्ति" (Green Revolution) के द्वारा उत्पादन में वृद्धि आरम्भ हो गयी है। जहाँ वर्ष 1950-51 में खाद्यान्न उत्पादन केवल 5.1 करोड़ टन था, बढ़कर वर्ष 2010-11 में 23.21 करोड़ टन हो गया। अब देश खाद्यान्नों की दृष्टि से न केवल आत्म निर्भर हो गया है, वरन् अनेक कृषि उत्पादनों का निर्यातक देश भी बन गया ।

किन्तु देश में अभी भी खाद्यान्नों की उत्पादकता विकसित देशों से बहुत कम है। अभी भी इन देशों में कृषि उत्पादन वर्षा पर निर्भर है। वर्षा की कमी एवं अनिश्चितता के कारण

इन देशों को अकाल जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। भारत जैसे विकासशील एवं अर्द्ध-विकसित देशों में कृषि से सम्बन्धित अनेक प्रकार की समस्याएँ विद्यमान रहती है, जिससे उत्पादकता कम रहती है। इन समस्याओं में प्रमुख है - कृषि के परम्परागत तरीके, कृषि जोतों का उप-विभाजन व उपखण्डन, भूमि पर जनसंख्या का अधिक दबाव, कृषकों की ऋण ग्रस्तता, सिंचाई सुविधाओं की कमी, कृषि उत्पादों के विपणन की उचित व्यवस्था न होना आदि ।.

4. बेरोजगारी एवं अल्प रोजगार (Un-Employment & Under Employment):- भारत में रोजगार प्राप्त करने की भयावह समस्या विद्यमान है। बेरोजगारी के कारण देश गरीबी एवं निम्न जीवन स्तर जैसी अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। देश में बेरोजगार एवं अल्प रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। एक अनुमान के अनुसार प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में जहाँ केवल 33 लाख व्यक्ति बेरोजगार थे, जो बढ़कर 2007 में 4 करोड़ से भी अधिक हो गये हैं। बेरोजगारी, के ये आँकड़े 958 रोजगार कार्यालयों में पंजीकृत बेरोजगार व्यक्तियों के है। वास्तविकता यह है कि भारत में सभी बेरोजगार व्यक्ति अपना पंजीयन कार्यालयों में नहीं कराते, फलतः बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या इससे भी अधिक है। इसके साथ ही पूर्ण बेरोजगारी के साथ-साथ बड़ी संख्या में लोग अल्प-रोजगार एवं अदृश्य बेरोजगारी की समस्या से पीड़ित हैं। भारत में पूर्ण बेरोजगारी एवं अल्प रोजगार की समस्या अनेक कारणों से है, जैसे-जनसंख्या में तेजी से वृद्धि, औद्योगीकरण की धीमी गति, कृषि का पिछड़ापन, बुनियादी सुविधाओं जैसे- विद्युत, सड़क आदि की कमी, पूँजी निर्माण की धीमी दर आदि। अल्परोजगार एवं अदृश्य- बेरोजगारी की समस्या कृषि क्षेत्र में अधिक है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत सरकार द्वारा रोजगार में वृद्धि करने के लिये अनेक कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया गया, किन्तु बेरोजगारी की समस्या में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ।

5. द्वैतात्मक स्वरूप (Dualistic Nature):- भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप द्वैतात्मक है अर्थात् सम्पूर्ण आर्थिक ढाँचा दो भागों में विभक्त है, जो एक दूसरे से काफी भिन्न हैं। अर्थव्यवस्था का एक कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र है तथा दूसरा औद्योगिक एवं शहरी क्षेत्र है। इन दोनों क्षेत्रों की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार है:-

अर्थव्यवस्था का कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा एवं असंगठित होता है। बुनियादी सुविधाओं जैसे विद्युत, परिवहन, बैंकिंग, शिक्षा आदि सुविधाओं की कमी के कारण इस क्षेत्र आय एवं जीवन स्तर न्यून रहता है। सामाजिक ढाँचा परम्परागत रूढ़ियों एवं रीति-रिवाजों से संचालित होता है। इस क्षेत्र में प्रति व्यक्ति आय के कम होने से यहाँ

के निवासियों का जीवन स्तर नीचा रहता है। रोजगार के अवसर सीमित होने एवं अदृश्य बेरोजगारी के कारण इस क्षेत्र के निवासियों की आय कम रहती है। संक्षेप में भौगोलिक, आर्थिक एवं सामाजिक कारणों से भारतीय अर्थव्यवस्था का यह क्षेत्र पूर्णतः अलग रहता है और आधुनिक औद्योगिक सभ्यता के प्रभाव से बहुत कुछ अछूता रहा है।

इसके विपरीत, भारतीय अर्थव्यवस्था का दूसरा क्षेत्र शहरी एवं आधुनिक होता है। यह क्षेत्र जटिल एवं आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर एवं सम्पन्न होता है। यहाँ आर्थिक क्रियाओं का संचालन काफी बड़ी सीमा तक व्यवस्थित एवं संगठित रहता है। बैंकिंग, परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सुविधाओं के उपलब्ध होने से इस क्षेत्र के निवासियों का जीवन स्तर अच्छा होता है। आधुनिक जीवन की सुविधाएँ विद्यमान रहती है तथा इसमें औद्योगिकरण की समस्याएँ भी स्पष्ट दिखाई देती हैं। संक्षेप में अर्थव्यवस्था का यह क्षेत्र आधुनिक, व्यवस्थित एवं तुलनात्मक रूप से विकसित होता है।

अर्थव्यवस्था के इस द्वैतात्मक स्वरूप के कारण सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों का प्रभाव दोनों क्षेत्रों में समान नहीं रह पाता। जहाँ इन नीतियों का प्रभाव एक क्षेत्र में बहुत अधिक रहता है, वहीं दूसरा क्षेत्र अछूता रह जाता है। इसके साथ ही विकास कार्यक्रमों का लाभ भी दोनों क्षेत्रों को समान रूप से नहीं मिल पाता और परिणामस्वरूप दोनों क्षेत्रों के मध्य असमानताएँ बढ़ती जाती हैं।

6. मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy):- भारतीय अर्थव्यवस्था की एक विशेषता यह भी है कि यह एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है। यहाँ सभी आर्थिक क्रियाओं का संचालन दो क्षेत्रों के अन्तर्गत होता है यथा : एक सार्वजनिक क्षेत्र और द्वितीय-निजी क्षेत्र। सार्वजनिक क्षेत्र में संसाधनों का स्वामित्व सरकार के हाथों में होता है। इस क्षेत्र का संचालन मुख्यतः सार्वजनिक हितों को ध्यान में रखकर किया जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र से सम्बंधित नीतियाँ एवं कार्यक्रम सभी क्षेत्रों एवं सभी निवासियों को ध्यान में रखकर बनायी जाती है।

इसके विपरीत निजी क्षेत्र में संसाधनों का स्वामित्व व्यक्तियों के हाथों में होता है और ये इन संसाधनों का उपयोग निजी लाभ प्राप्त करने में करते हैं। इस क्षेत्र का संचालन बाजार-शक्तियों या बाजार यंत्र के द्वारा होता है। सन् 1991 के बाद इस क्षेत्र का महत्व बढ़ गया है तथा अनेक क्षेत्रों में अब इन्हें प्रवेश मिल गया है। बैंकिंग, बीमा, भारी उद्योग आदि में भी निजी पूँजी निवेश प्रारम्भ हो गया है। इस प्रकार अब भारतीय अर्थव्यवस्था पूर्णतः मिश्रित अर्थ-व्यवस्था बन गयी है।

7. योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था (Planned Economy):- भारतीय अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि यहाँ तीव्र एवं चहुँमुखी आर्थिक विकास के उद्देश्य से

नियोजन को अपनाया गया। स्वतंत्रता के बाद अप्रैल, 1951 से पाँच वर्षीय योजनाओं का क्रियान्वयन व्यापक आधार पर किया गया। भारत में नियोजन का मूल उद्देश्य देश में समाजवादी समाज की स्थापना करना है। इस उद्देश्य का प्रतिपादन भारतीय संविधान के निर्देशक तत्वों में किया गया है। इसका आशय देश में इस प्रकार के समाज का निर्माण करना है, जहाँ न केवल राष्ट्रीय आय और रोजगार में तेजी से वृद्धि हो, वरन् आर्थिक विकास के लाभ समाज के गरीब एवं साधनहीन वर्ग को भी प्राप्त हो। संक्षेप में भारत में नियोजन का मूल उद्देश्य सामाजिक न्याय के साथ विकास की प्रक्रिया को मूर्त रूप देना है।

नियोजन के सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि भारत एक लोकतांत्रिक देश है तथा अर्थव्यवस्था के एक बहुत बड़े भाग का संचालन स्वतंत्र रूप से बाजार शक्तियों के माध्यम से किया जाता है। फलतः यहाँ पर योजना में निर्धारित लक्ष्यों का क्रियान्वयन आदेशों के माध्यम से नहीं किया जा सकता। अतः भारत में लोकतांत्रिक नियोजन को अपनाया गया है, जहाँ आदेशों के साथ-साथ प्रोत्साहनों एवं प्रेरणाओं को भी समुचित स्थान दिया गया है। सन् 1991 के बाद आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत भूमण्डलीकरण, निजीकरण एवं उदारीकरण को विशेष महत्व दिया गया है। सार्वजनिक क्षेत्र को भी सीमित करने, निजी निवेश को प्रेरित करने के प्रयास भी किये जा रहे हैं। अतः भारत में नियोजन का स्वरूप आदेशात्मक न होकर प्रेरणामूलक हो गया है।

8. संस्थागत ढाँचे का विकास (Infra-Structural Development):- नियोजन काल में भारतीय अर्थव्यवस्था का संस्थागत ढाँचा पर्याप्त रूप में विकसित हुआ है। बढ़ता हुआ सार्वजनिक विकास व्यय, बैंक एवं बीमा कम्पनियों का विस्तार, ग्रामीण विद्युतीकरण, सड़क एवं रेल परिवहन का विस्तार, औद्योगिक विकास, बढ़ती शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधायें आदि ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत एक विकासशील देश है। संस्थागत ढाँचे के इस परिवर्तन के कारण भारत में विकास की गति को तीव्र करने की आवश्यक दशाएँ, जिन्हें तीव्र आर्थिक विकास की पूर्व शर्तें भी कहा जा सकता है, उपलब्ध हो सकी हैं। किन्तु अभी भी देश में बुनियादी सुविधाओं की कमी है। विद्युत संकट एवं कमजोर यातायात व्यवस्था ने देश के विकास की गति को सीमित कर रखा है। तीव्र औद्योगिक विकास के मार्ग में विद्युत की कमी सबसे बड़ी बाधा है। यद्यपि विद्युत उत्पादन में वृद्धि के लिये निजी क्षेत्र का सहयोग लिया जा रहा है तथापि अभी भी यह एक जटिल एवं गम्भीर समस्या बनी हुई है। यही स्थिति सड़कों की है। वर्षा की अनिश्चितता एवं सिंचाई सुविधाओं की कमी ने कृषि के विकास को सीमित कर दिया है।

9. संसाधनों का अल्प- प्रयोग (Under-utilisation of Resources):- भारत प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों की दृष्टि से एक सम्पन्न राष्ट्र है, किन्तु इन संसाधनों के समुचित उपयोग न होने के कारण देश की विकास की गति धीमी है। अभी भी अनेक प्राकृतिक संसाधन अछूते अथवा अल्प-उपयोग की दशा में पड़े हुये हैं। उदाहरणार्थ- अभी भी उपलब्ध जनशक्ति का केवल 15 प्रतिशत भाग ही उपयोग हो पाया है तथा शेष अप्रयुक्त है। इसी प्रकार की बात अनेक खनिज पदार्थों एवं वन-संसाधनों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। यहाँ तक कि अभी भी विस्तृत सर्वेक्षण के अभाव में अनेक प्राकृतिक संसाधनों की जानकारी भी अनुपलब्ध है। जनशक्ति का भी एक बड़ा भाग बेरोजगारी की स्थिति में है।

भारत में खनिज सम्पदा के बाहुल्य के सन्दर्भ में योजना आयोग का मत है "भारत की ज्ञात खनिज सम्पदा किसी प्रकार से अक्षय तो नहीं है, किन्तु देश के औद्योगिक विकास के लिये आवश्यक खनिज पदार्थ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। अभ्रक में भारत का एकाधिकार है तथा मैंगनीज में भारत विश्व में तीसरे स्थान पर है। यद्यपि पिछले 65 वर्षों में प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग की दिशा में बहुत कुछ किया गया है तथापि इस दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है।"

(B) जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताएँ (Demographic Characteristics):-

10. जनसंख्या वृद्धि की तीव्र दर (High Rate of Population Growth): जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में चीन के बाद दूसरा स्थान है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार यहाँ 121.02 करोड़ लोग निवास करते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार 1999-2000 के दौरान विश्व जनसंख्या में 1.4 प्रतिशत की वार्षिक दर से वृद्धि हुई, जबकि भारत में इस अवधि में यह दर 1.9 प्रतिशत रही। स्पष्ट है कि भारत में जनसंख्या की वृद्धि दर काफी अधिक है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि दर 1 प्रतिशत से भी काफी कम है।

वास्तविकता यह है कि जनसंख्या की तीव्र वृद्धि दर के कारण देश में अनेक जटिल समस्यायें पैदा हुई हैं। जनसंख्या में वृद्धि के कारण उपभोग व्यय में तेजी से वृद्धि हुई है तथा बचत एवं निवेश दर में कमी आयी है। बेरोजगारी एवं गरीबी की समस्या का मूल कारण जनसंख्या में तीव्र वृद्धि है। पिछले 65 वर्षों में मृत्यु दर में कमी के कारण जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई हैं। संक्षेप में, भारत की प्रमुख आर्थिक विशेषताओं में जनसंख्या में तीव्र वृद्धि का प्रथम एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है।

11. ऊँची जन्म एवं मृत्यु दरें (High Birth & Death Rates):- भारतीय अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि यहाँ जन्म एवं मृत्यु दरें बहुत अधिक है। आर्थिक सर्वेक्षण 2009-10 के अनुसार भारत में सन् 2007 के दौरान जन्म दर 23.1 एवं मृत्यु दर 7.4 प्रति हजार रही। यहाँ यह तथ्य ध्यान में रखा जाना चाहिये कि विकसित देशों में जन्म दर 10 से 15 प्रति हजार के मध्य है। जन्म दर के अधिक होने के कारण ही भारत में जनसंख्या वृद्धि दर अधिक है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सन् 1951 में भारत में जन्म दर एवं मृत्यु दरें क्रमशः 39.9 एवं 27.4 प्रति हजार थी। स्पष्ट है कि 1951 से 2007 के मध्य जहाँ मृत्यु दर में तेजी से कमी हुई है, वहीं जन्म दर में गिरावट बहुत कम रही है। जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion) का यही प्रमुख कारण है।

12. जनसंख्या का घनत्व (Density of Population):- भारत में विकसित देशों की तुलना में जनसंख्या का घनत्व काफी अधिक है। सन् 2001 की जनसंख्या के अनुसार भारत में प्रति वर्ग किलोमीटर 325 व्यक्ति रहते हैं, जबकि चीन में यह संख्या 104, अमेरिका में 10, रूस में 25, कनाडा में 2 एवं आस्ट्रेलिया में 2 था। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में जनसंख्या घनत्व बढ़कर 382 हो गया है जबकि विश्व का औसत जनसंख्या घनत्व केवल 34 है। इस दृष्टि से भी भारत में जनसंख्या आधिक्य परिलक्षित होता है।

13. निम्न प्रत्याशित आयु (Low Life Expectancy):- भारत में विकसित देशों की तुलना में औसत प्रत्याशित आयु कम है। वर्ष 2007 के अन्त में भारत की औसत प्रत्याशित आयु 63.5 वर्ष (62.3 वर्ष पुरुषों की एवं 63.9 वर्ष महिलाओं की) थी, जबकि स्विट्जरलैण्ड में यह 78 वर्ष, स्वीडन में 77 वर्ष, अमेरिका में 76 वर्ष और ब्रिटेन में भी 74 वर्ष है। यहाँ यह तथ्य भी ध्यान में रखा जाना चाहिये कि भारत में सन् 1951 में औसत जीवन प्रत्याशा केवल 32.1 वर्ष थी। स्पष्ट है कि 1951 से 2007 के मध्य जीवन प्रत्याशा में उल्लेखनीय वृद्धि है।

(C) तकनीकी विशेषताएँ (Technological Characteristics):-

14. तकनीकी कौशल का अभाव (Lack of Technological Skills):- किसी भी देश के विकास के तकनीकी कौशल का विशेष महत्व है। तकनीकी कौशल के विस्तार से देश में चहुंमुखी विकास तेजी से होता है। भारत विकसित देशों की तुलना में शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, प्रशिक्षण, अनुसंधान आदि क्षेत्रों में बहुत पिछड़ा है। तकनीकी कौशल में अभिवृद्धि करने वाली संस्थाओं की कमी के कारण भारत में मानवीय पूँजी निर्माण की गति बहुत नीची है।

15. औद्योगिक पिछड़ापन (Industrial Backwardness):- अन्य अल्प विकसित देशों के समान ही भारत में उत्पादन तकनीकी का स्तर पिछड़ा हुआ है। तकनीकी ज्ञान के स्तर के पिछड़े होने के कारण भारत में औद्योगिक विकास की दर बहुत कम है। इसके साथ ही बचत एवं निवेश दर के कम होने के कारण उपलब्ध पूँजी की मात्रा भी कम है। संक्षेप में भारत में निम्न उत्पादकता औद्योगिक पिछड़ेपन का ही परिणाम है।

(D) सामाजिक विशेषताएँ (Social Characteristics):-

16. भाग्यवादिता, जातिवाद एवं रीति-रिवाजों की प्रधानता (Predominance of Fatalism, Cas- teism & Customs):- भारतीय अर्थव्यवस्था की एक विशेषता यह भी है कि यहाँ आर्थिक क्रियाएँ भाग्यवादिता, रीति-रिवाजों एवं जातिवाद जैसे सामाजिक घटकों से भी प्रभावित रहती हैं। इन सामाजिक रीति-रिवाजों एवं कुप्रथाओं ने भारत की आर्थिक विकास की गति को अवरुद्ध किया है। भारत का परम्परावादी समाज अपने सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण धन के एक बड़े भाग का अपव्यय कर देता है और परिणामस्वरूप देश में बचत का आकार घट जाता है। भारत के ग्रामीण अंचलों के निवासी इन सामाजिक प्रतिबन्धों को पूर्ण करने के लिये ऋण लेते हैं और सदैव ही ऋण ग्रस्त बने रहते हैं। भाग्यवादिता के कारण जन सामान्य में जोखिम उठाने की क्षमता भी कम हो जाती है। फलतः विकास की दर धीमी रहती है।

17. साक्षरता की निम्न दर (Lack of Literacy):- अन्य अल्प विकसित देशों की भाँति भारत में भी साक्षरता का स्तर सन्तोषप्रद नहीं है। इसी निरक्षरता के कारण भारतीय अर्थ-व्यवस्था में रुढ़िवादिता, भाग्यवादिता, अंध-विश्वास जैसे सामाजिक विरोध कार्यशील होते हैं। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता का प्रतिशत 74.04 है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो यह दर केवल 68.91 प्रतिशत है। ग्रामीण महिलाएँ तो केवल 58.75 प्रतिशत ही साक्षर हैं। साक्षरता की निम्न दर का विकास की गति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(E) अन्य विशेषताएँ (Other Characteristics) :-

भारतीय अर्थव्यवस्था में उपर्युक्त विशेषताओं के साथ-साथ कुछ अन्य विशेषताएँ भी विद्यमान हैं। ये विशेषताएँ हैं :-

18. महिलाओं की निम्न स्थिति (Poor Condition of Women) :- अन्य अल्प विकसित देशों के समान भारत में भी महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं है। उन्हें कार्य करने की समुचित स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है तथा उनका अनेक प्रकार से शोषण होता है। अपने जीवन यापन के लिए उन्हें पुरुष वर्ग पर निर्भर रहना पड़ता है।

19. अधिकारों एवं कर्तव्यों का ज्ञान न होना (Lack of awareness regarding Rights & Duties) :- भारत के निवासी अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरुक नहीं हैं। अशिक्षा, अज्ञानता एवं गरीबी के कारण वे शोषण को सहन करते हैं तथा भाग्य भरोसे अपना जीवन यापन करते हैं।

20. प्रशासनिक अकुशलता (Inefficient Administration):- अन्य विकासशील देशों के समान भारत में भी प्रशासनिक अकुशलता विद्यमान है। जनसाधारण के विकास के प्रति उदासीनता एवं क्रियान्वयन में अक्षमता के कारण महत्वपूर्ण विकास कार्यक्रम भी सफल नहीं होते । लाल फीताशाही एवं भाई-भतीजावाद के कारण जन-साधारण की महत्वपूर्ण समस्याएँ भी बिना सुलझी रह जाती हैं। राजनैतिक इच्छा शक्ति के अभाव के साथ-साथ प्रशासनिक अकुशलता भी देश के विकास में बाधक है।

भारतीय अर्थ-व्यवस्था की उपर्युक्त विशेषताओं से यह स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता के बाद से इसमें आमूल-चूल परिवर्तन हुआ है। स्वतन्त्रता के पूर्व भारत एक पिछड़ा एवं अविकसित राष्ट्र था और अर्थव्यवस्था पूर्णतः स्थिर एवं गतिहीन थी। स्वतन्त्रता के बाद इसमें चहुँमुखी प्रगति हुई और यह विकासशील स्थिति में प्रवेश कर गयी है। अब भारतीय अर्थव्यवस्था आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ है एवं विकास के पथ पर तीव्र गति से आगे बढ़ रही है। कृषि, उद्योग, व्यापार, खनिज आदि सभी क्षेत्रों में इस अवधि में उत्साहजनक प्रगति हुई है। संक्षेप में भारतीय अर्थव्यवस्था में वे सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं, जो कि एक विकासशील अर्थव्यवस्था में होती हैं।

2.4 सार संक्षेप

भारतीय अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है, जिसमें सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्र शामिल हैं। यह दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक है, और इसकी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1. सकल घरेलू उत्पाद (GDP)

- भारतीय अर्थव्यवस्था का आकार विशाल है, और यह दुनिया की छठी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। भारतीय GDP लगातार बढ़ता जा रहा है, हालांकि इसके विकास की दर में उतार-चढ़ाव होता है।

2. कृषि क्षेत्र

- भारत में कृषि का महत्व बहुत अधिक है, हालांकि इसका योगदान GDP में धीरे-धीरे घट रहा है। फिर भी, लाखों भारतीय किसानों का जीवन कृषि पर निर्भर है। मुख्य उत्पादों में चावल, गेहूं, गन्ना, मसाले और फल शामिल हैं।

3. उद्योग और विनिर्माण

- उद्योग क्षेत्र भी भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसमें धातु, रसायन, मोटर वाहन, वस्त्र, और सूचना प्रौद्योगिकी (IT) जैसे क्षेत्र शामिल हैं। भारत एक प्रमुख सॉफ़्टवेयर सेवाएं प्रदाता है और इसका IT उद्योग वैश्विक रूप से महत्वपूर्ण है।

4. सेवा क्षेत्र

- सेवा क्षेत्र भारत की अर्थव्यवस्था में सबसे बड़ा योगदानकर्ता है। इसमें बैंकिंग, बीमा, दूरसंचार, परिवहन, शिक्षा, और स्वास्थ्य जैसी सेवाएँ शामिल हैं। भारत विशेष रूप से IT, आउटसोर्सिंग, और व्यवसायिक सेवाओं (BPO) में एक प्रमुख वैश्विक केंद्र है।

5. निर्यात और आयात

- भारत का निर्यात मुख्य रूप से रत्न, आभूषण, पेट्रोलियम उत्पाद, कपड़ा, औषधियाँ और कृषि उत्पाद होते हैं। आयात में मुख्य रूप से तेल, गैस, सोना और मशीनरी शामिल हैं। भारत का व्यापार घाटा कभी-कभी चिंता का विषय बन जाता है।

6. वित्तीय क्षेत्र

- भारतीय वित्तीय क्षेत्र में भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) का अहम स्थान है। बैंकिंग, पूंजी बाजार, और बीमा क्षेत्र भारत के वित्तीय ढांचे का हिस्सा हैं। भारत ने आर्थिक सुधारों और विनियमन में कई बदलाव किए हैं, जिससे वित्तीय क्षेत्र की स्थिति में सुधार हुआ है।

7. संरचनात्मक समस्याएँ

- भारत की अर्थव्यवस्था कुछ प्रमुख संरचनात्मक समस्याओं का सामना कर रही है, जैसे कि असमानता, बेरोज़गारी, कृषि संकट, और गरीबी। इसके अलावा, मुद्रास्फीति, काले धन, और करों की प्रभावी वसूली भी आर्थिक विकास के लिए चुनौतियाँ हैं।

8. विकास दर और विकास नीति

- भारत की विकास दर लंबे समय से मजबूत रही है, लेकिन COVID-19 महामारी के दौरान यह प्रभावित हुई। सरकार ने विभिन्न सुधारों, जैसे जीएसटी, मेक इन

इंडिया, और डिजिटल इंडिया, के जरिए आर्थिक वृद्धि को बढ़ावा देने की कोशिश की है।

9. आर्थिक सुधार और वैश्विक भूमिका

- 1991 में आर्थिक सुधारों के बाद, भारत ने विदेशी निवेश, व्यापार, और विनिवेश के क्षेत्रों में बड़े सुधार किए हैं। वैश्विक मंच पर, भारत की भूमिका और व्यापारिक संबंध मजबूत हो रहे हैं, और यह BRICS और G20 जैसे संगठनों का सदस्य है।

10. भविष्य की दिशा

- भारतीय अर्थव्यवस्था का भविष्य सकारात्मक नजर आता है, बशर्ते कि समावेशी विकास की दिशा में काम किया जाए। भारत का युवा श्रमिक वर्ग, डिजिटल परिवर्तन, और बढ़ती वैश्विक कनेक्टिविटी इसके विकास को गति दे सकती है।

2.5 मुख्य शब्द

भारतीय अर्थव्यवस्था को समझने के लिए कुछ प्रमुख मुख्य शब्द निम्नलिखित हैं, जो इसकी संरचना, संचालन और विकास को समझने में मदद करती हैं:

1. सकल घरेलू उत्पाद (GDP - Gross Domestic Product)

- किसी देश की आर्थिक गतिविधियों का माप, जो देश में एक निश्चित अवधि (साल) में उत्पादित कुल वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य है। यह आर्थिक विकास का एक प्रमुख सूचकांक है।

2. मुद्रास्फीति (Inflation)

- किसी देश में कीमतों का सामान्य स्तर बढ़ना, जिससे मुद्रा का मूल्य घटता है। उच्च मुद्रास्फीति से वस्तुएं और सेवाएँ महंगी हो जाती हैं।

3. व्यापार घाटा (Trade Deficit)

- जब एक देश का आयात उसके निर्यात से अधिक होता है। इसका मतलब है कि देश विदेशी वस्त्रों, सेवाओं और पूंजी पर अधिक खर्च कर रहा है।

4. राजकोषीय घाटा (Fiscal Deficit)

- जब सरकार के खर्चे, उसकी आय से अधिक होते हैं। यह सरकार की वित्तीय स्थिति की कमजोरी को दर्शाता है और इससे सरकारी उधारी बढ़ सकती है।

5. विदेशी मुद्रा भंडार (Foreign Exchange Reserves)

- किसी देश के पास विदेशी मुद्रा (अमेरिकी डॉलर, यूरो आदि) का भंडार, जिसका उपयोग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और मुद्रा स्थिरता बनाए रखने के लिए किया जाता है।

6. आयकर (Income Tax)

- व्यक्तियों, कंपनियों और अन्य संस्थाओं द्वारा अपनी आय पर सरकार को दी जाने वाली कर राशि।

7. सार्वजनिक उधारी (Public Debt)

- सरकार द्वारा लिए गए ऋण, जो घरेलू या विदेशी स्रोतों से हो सकते हैं। यह सरकार की कुल उधारी का माप है।

8. विनिमय दर (Exchange Rate)

- एक देश की मुद्रा की अन्य देशों की मुद्राओं के मुकाबले मूल्य। यह व्यापार, पर्यटन और निवेश निर्णयों को प्रभावित करता है।

9. सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP - Gross National Product)

- किसी देश की कुल आर्थिक गतिविधि का माप, जिसमें घरेलू और विदेशों में भारतीय नागरिकों द्वारा उत्पादित वस्तुएं और सेवाएँ शामिल होती हैं।

10. विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI - Foreign Direct Investment)

- किसी विदेशी देश द्वारा भारत में निवेश करना, विशेषकर व्यापार, उद्योग, और अन्य उत्पादन गतिविधियों में। यह आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करता है।

11. मुद्रास्फीति दर (Inflation Rate)

- किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति का प्रतिशत बढ़ोतरी, जो मूल्य स्तर में सामान्य वृद्धि को दर्शाता है।

12. महंगाई (Cost of Living)

- जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं (जैसे- खाद्य, आवास, परिवहन, स्वास्थ्य देखभाल) की कीमतों में वृद्धि का माप।

13. संवृद्धि दर (Growth Rate)

- किसी देश की GDP के बढ़ने या घटने की दर, जो उस देश के आर्थिक विकास को मापता है।

14. बेरोज़गारी दर (Unemployment Rate)

- श्रम बल में ऐसे व्यक्तियों का प्रतिशत, जो काम करने के इच्छुक हैं लेकिन बेरोज़गार हैं। यह आर्थिक असमानता और विकास को प्रभावित करता है।

15. आर्थिक सुधार (Economic Reforms)

- सरकार द्वारा किए गए वे परिवर्तन जो अर्थव्यवस्था को अधिक प्रतिस्पर्धात्मक और उन्नत बनाने के लिए होते हैं। उदाहरण: 1991 में भारत में आर्थिक सुधारों की शुरुआत।

16. मूल्यांकन (Valuation)

- किसी संपत्ति, कंपनी या उत्पाद की वास्तविक मूल्य का निर्धारण, विशेषकर बाजार में उसके मूल्य का आकलन।

17. संरचनात्मक सुधार (Structural Reforms)

- देश की आर्थिक संरचना में किए गए बड़े बदलाव, जैसे उद्योगों का निजीकरण, वित्तीय क्षेत्र का उदारीकरण, और श्रम कानूनों में सुधार।

18. स्वच्छ भारत मिशन (Swachh Bharat Mission)

- भारत सरकार द्वारा शुरू किया गया कार्यक्रम, जिसका उद्देश्य देश में स्वच्छता को बढ़ावा देना और सफाई से संबंधित मुद्दों को हल करना है।

19. नोटबंदी (Demonetization)

- सरकार द्वारा उच्च मूल्य की मुद्रा नोटों को अवैध घोषित करने की प्रक्रिया, जैसे कि भारत में 2016 में 500 और 1000 रुपये के नोटों को बंद करना।

20. मेक इन इंडिया (Make in India)

- भारत सरकार की पहल, जिसका उद्देश्य भारत में विनिर्माण क्षेत्र को बढ़ावा देना और विदेशी निवेश को आकर्षित करना है।

21. राष्ट्रीय आय (National Income)

- किसी देश की कुल आय, जो उसके सभी निवासियों द्वारा एक वर्ष में कमाई जाती है, जिसमें उपभोक्ता व्यय, सरकारी खर्च, निवेश और निर्यात शामिल हैं।

22. जीएसटी (GST - Goods and Services Tax)

- वस्त्रों और सेवाओं पर एक सामान्य, केंद्रीय कर जिसे भारत सरकार ने 2017 में लागू किया। इसका उद्देश्य एक सरल और एकीकृत कर प्रणाली की स्थापना करना था।

23. मांग और आपूर्ति (Demand and Supply)

- अर्थशास्त्र का मूल सिद्धांत, जिसमें बाजार में किसी वस्तु या सेवा की कीमत निर्धारित होती है। उच्च मांग और कम आपूर्ति से कीमतें बढ़ती हैं, और इसके विपरीत भी होता है।

24. ग्रामीण अर्थव्यवस्था (Rural Economy)

- भारत के ग्रामीण क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था, जो कृषि, पशुपालन, छोटे उद्योगों और हस्तशिल्प पर निर्भर है।

25. श्रमिक वर्ग (Labor Force)

- वह वर्ग जो रोजगार के लिए कार्यरत है या रोजगार प्राप्त करने के लिए इच्छुक है। इसमें बेरोजगार लोग भी शामिल होते हैं।

2.6 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

भारतीय अर्थव्यवस्था की **मूलभूत स्व-प्रगति** (Self-Progress) पर आधारित कुछ सामान्य **प्रश्नों** के उत्तर निम्नलिखित हैं, जो भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास, सुधार, और वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालते हैं:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था क्या है?

- भारतीय अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है, जिसमें सार्वजनिक (सरकारी) और निजी (व्यक्तिगत) दोनों क्षेत्रों का योगदान होता है। इसमें कृषि, उद्योग, और सेवा क्षेत्र जैसे प्रमुख तत्व शामिल हैं। भारत की अर्थव्यवस्था का आकार वैश्विक स्तर पर छठा सबसे बड़ा है और यह निरंतर विकास कर रही है।

2. भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों के बारे में बताइए।

- भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हैं:
    - **कृषि क्षेत्र**: कृषि भारत की पारंपरिक और महत्वपूर्ण अर्थव्यवस्था है। यह लाखों लोगों का जीवनयापन करता है।

- **उद्योग क्षेत्र**: इसमें विनिर्माण, खनन, निर्माण, और बिजली उत्पादन आदि शामिल हैं।
- **सेवा क्षेत्र**: सूचना प्रौद्योगिकी (IT), बैंकिंग, बीमा, शिक्षा, स्वास्थ्य, और पर्यटन प्रमुख सेवा क्षेत्र हैं।

3. भारत में कृषि क्षेत्र का महत्व क्या है?

- कृषि क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था की नींव है। यह न केवल खाद्य सुरक्षा प्रदान करता है, बल्कि लाखों लोगों की आजीविका भी इस पर निर्भर करती है। हालांकि, इसके GDP में योगदान समय के साथ घट रहा है, फिर भी यह रोजगार का सबसे बड़ा स्रोत बना हुआ है।

4. भारतीय अर्थव्यवस्था में सुधार की प्रक्रिया क्या थी?

- 1991 में भारत ने आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया शुरू की, जिसे 'लिबरलाइजेशन, प्राइवेटाइजेशन और ग्लोबलाइजेशन' (LPG) कहा जाता है। इस प्रक्रिया में विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए व्यापार नियमों में लचीलापन लाया गया, सरकारी उपक्रमों का निजीकरण किया गया, और वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया गया।

5. मेक इन इंडिया योजना का उद्देश्य क्या है?

- **मेक इन इंडिया** योजना का उद्देश्य भारत को एक वैश्विक विनिर्माण केंद्र बनाना है। इसका मुख्य उद्देश्य भारत में उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों का निर्माण बढ़ाना और विदेशी निवेश को आकर्षित करना है, जिससे रोजगार सृजन हो सके।

6. भारत में जीएसटी (GST) लागू करने का उद्देश्य क्या था?

- **गुड्स एंड सर्विसेज टैक्स (GST)** का उद्देश्य भारत में एक एकीकृत और सरल कर प्रणाली स्थापित करना था। इससे विभिन्न राज्यों के विभिन्न करों को समाप्त करके एक राष्ट्रीय कर प्रणाली बनाई गई, जिससे व्यापार में पारदर्शिता बढ़ी और व्यापारिक प्रक्रियाओं में सरलता आई।

7. भारत की आर्थिक वृद्धि दर (GDP Growth Rate) क्यों महत्वपूर्ण है?

- आर्थिक वृद्धि दर एक प्रमुख संकेतक है जो यह बताता है कि देश की आर्थिक गतिविधियाँ कितनी तेजी से बढ़ रही हैं। उच्च विकास दर अर्थव्यवस्था की मजबूती और समृद्धि का संकेत देती है, जबकि निचली वृद्धि दर मंदी का संकेत हो सकती है।

8. भारत में बेरोज़गारी की समस्या क्या है?

- भारत में बेरोज़गारी एक गंभीर समस्या है, खासकर युवाओं में। इसके प्रमुख कारणों में शिक्षा और कौशल विकास की कमी, रोजगार के अवसरों की कमी, और औद्योगिक क्षेत्र में विकास की धीमी गति शामिल हैं। सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं और कौशल विकास कार्यक्रमों के माध्यम से इसे कम करने की कोशिश की जा रही है।

9. भारत में मुद्रास्फीति की समस्या कैसे प्रभावित करती है?

- मुद्रास्फीति का उच्च स्तर कीमतों में वृद्धि और मुद्रा की मूल्यह्रास का कारण बनता है, जिससे आम आदमी की क्रय शक्ति घटती है। यह जीवनयापन की लागत को बढ़ा सकता है और खासकर गरीब और मध्यम वर्ग को प्रभावित करता है। नियंत्रित मुद्रास्फीति से आर्थिक स्थिरता बनी रहती है।

10. भारत की आर्थिक संरचना में बदलाव के कारण क्या रहे हैं?

- भारत की आर्थिक संरचना में बदलाव के कई कारण रहे हैं:
  - **आर्थिक सुधार** (1991): इन सुधारों के बाद भारत में अधिक खुलापन आया, जिससे विदेशी निवेश बढ़ा और सेवा क्षेत्र विशेषकर IT उद्योग ने तगड़ा विकास किया।
  - **उदारीकरण**: औद्योगिक नीति में बदलाव और विदेशी व्यापार की नीति को अधिक लचीला किया गया।
  - **सूचना प्रौद्योगिकी (IT) और सेवाओं का विस्तार**: IT और BPO उद्योगों में जबरदस्त वृद्धि हुई, जिससे देश को वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धात्मक लाभ मिला।

11. भारत में गरीबी का स्तर क्यों कम नहीं हो रहा है?

- भारत में गरीबी का स्तर कम होने में कई चुनौतियाँ हैं, जैसे:
  - **अर्थव्यवस्था में असमानता**: गरीबी की मुख्य वजह आय का असमान वितरण है।
  - **शिक्षा और कौशल का अभाव**: गरीब वर्ग को उचित शिक्षा और कौशल प्रशिक्षण नहीं मिल पाता है, जिससे वे अच्छे रोजगार की स्थिति में नहीं आ पाते।

  - **कृषि संकट**: कृषि क्षेत्र की समस्याएँ जैसे सूखा, नीतिगत विफलताएँ और सिंचाई की कमी भी गरीबी को बढ़ाती हैं।

12. भारत की वैश्विक भूमिका क्या है?

- भारत एक प्रमुख वैश्विक खिलाड़ी बन चुका है, खासकर ब्रिक्स, G20, और WTO जैसे संगठनों के सदस्य के रूप में। इसके अलावा, भारत ने वैश्विक व्यापार, विशेष रूप से IT और सेवा क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका स्थापित की है।

13. भारत के लिए आर्थिक सुधारों के लाभ क्या हैं?

- आर्थिक सुधारों के कारण भारत में:
  - विदेशी निवेश में वृद्धि हुई है।
  - व्यापार और निवेश के लिए अधिक लचीलापन और पारदर्शिता आई है।
  - उच्च तकनीकी और सेवा क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़े हैं।
  - मध्यवर्ग का विस्तार हुआ है, जिससे घरेलू खपत में वृद्धि हुई है।

14. भारत की नीतियों में सुधारों का असर क्या है?

- भारत में सुधारों से आंतरिक व्यापार में वृद्धि हुई है, और इसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्राप्त हुआ है। आर्थिक सुधारों से भारत में अधिक व्यापारिक स्वतंत्रता, निवेश के अवसर, और विकास के नए रास्ते खुले हैं।

2.7 संदर्भ सूची

- बालाकृष्णन, पी. (2022)। भारतीय अर्थव्यवस्था की रिकवरी: राजनीतिक अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- बसु, के. (2018)। विश्वासों का गणराज्य: कानून और अर्थशास्त्र के लिए एक नया दृष्टिकोण। प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- घोष, ए. (2021)। भारत की उभरती अर्थव्यवस्था: 21वीं सदी में प्रदर्शन और संभावनाएँ। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- पनगढ़िया, ए. (2020)। इंडिया अनलिमिटेड: खोया हुआ गौरव पुनः प्राप्त करना। हार्पर कॉलिन्स।
- नागराज, आर. (2019)। भारत में आर्थिक वृद्धि और विकास: नए परिप्रेक्ष्य। रूटलेज।
- दास, पी. के. (2023)। भारतीय अर्थव्यवस्था में बदलाव: नई चुनौतियाँ और नीतिगत परिप्रेक्ष्य। सेज पब्लिकेशन।

- भट्टाचार्य, एस. (2020)। भारतीय अर्थव्यवस्था में सुधार और संरचनात्मक परिवर्तन। पैल्ग्रेव मैकमिलन।

2.8 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. अर्थव्यवस्था का क्या अर्थ है? भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये ।

2. भारतीय अर्थव्यवस्था की मूलभूत विशेषताओं की व्याख्या कीजिये। हाल के वर्षों में इसमें क्या परिवर्तन हुये हैं ?

3. भारत को किन-किन कारणों से आर्थिक दृष्टि से अर्द्ध-विकसित देश समझा जा सकता है ? विवेचना कीजिये ।

4. एक विकासशील अर्थव्यवस्था की क्या विशेषताएँ हैं ? क्या भारत एक विकासशील देश है ? अपने पक्ष में तर्क दीजिये ।

5. "भारत एक धनी देश है, परन्तु इसमें निर्धन निवास करते हैं।" व्याख्या कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ क्या है?

2. भारतीय अर्थव्यवस्था की जनांकिकीय विशेषताएँ लिखिए ।

3. भारतीय अर्थव्यवस्था की आर्थिक विशेषताएँ बताइये ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. विकासशील अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ क्या है?

(अ) कृषि की प्रधानता

(ब) बेरोजगारी

(स) निर्धनता

(द) उपर्युक्त सभी ।

2. निम्न में से कौन-सी भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषता नहीं है ?

(अ) मिश्रित अर्थव्यवस्था

(ब) आय व धन की समानता

(स) प्रति व्यक्ति आय कम होना

(द) योजनाबद्ध विकास

3. भारतीय अर्थव्यवस्था की जनसंख्या संबंधी विशेषता निम्न में कौन-सी है?

(अ) जनसंख्या वृद्धि की तीव्र दर

(ब) निम्न प्रत्याशित आयु

(स) ऊँची जन्म दर

(द) उपरोक्त सभी ।

उत्तर :- (1) द, (2) ब, (3) द ।

इकाई -3
प्राकृतिक संसाधन-भूमि एवं खनिज

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भूमि का अर्थ

3.4 भूमि के लक्षण या विशेषताएँ

3.5 भूमि का महत्व

3.6 फसली स्वरूप के निर्धारक घटक

3.7 भारत सरकार की खनिज नीति

3.8 सार संक्षेप

3.9 मुख्य शब्द

3.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

3.11 संदर्भ सूची

3.12 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्राकृतिक संसाधन, भूमि और खनिज भारतीय अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग हैं और ये देश के समग्र विकास में अहम भूमिका निभाते हैं। प्राकृतिक संसाधन वे संसाधन होते हैं जो प्रकृति से प्राप्त होते हैं और मानव द्वारा इन्हें उपयोग में लाकर अपनी आवश्यकताएँ पूरी की जाती हैं। इन संसाधनों का सही उपयोग देश की आर्थिक प्रगति, औद्योगिकीकरण और सामाजिक कल्याण में सहायक होता है।

1. भूमि (Land)

- **भूमि** एक प्रमुख प्राकृतिक संसाधन है, जो कृषि, उद्योग, आवास, और बुनियादी ढाँचे के विकास के लिए आवश्यक है। भारत में कृषि भूमि का उपयोग प्रमुख रूप से अनाज, फल, सब्जी, और अन्य कृषि उत्पादों के उत्पादन के लिए किया जाता है। इसके अलावा, औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के कारण भूमि का उपयोग तेजी से बदल रहा है।

- **भारत में भूमि का वितरण** असमान है, जहां कुछ क्षेत्र कृषि के लिए उपयुक्त हैं, जबकि अन्य क्षेत्र शुष्क या पहाड़ी होते हैं। भूमि के इस असमान वितरण ने आर्थिक असमानताओं को जन्म दिया है।
- **भूमि सुधार**: भारत में भूमि सुधारों की आवश्यकता है ताकि छोटे और मंझले किसान अपनी भूमि पर बेहतर तरीके से कार्य कर सकें। भूमि सुधारों के अंतर्गत भूमि वितरण, भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने के लिए सिंचाई, और अन्य उपाय शामिल हैं।

2. खनिज (Minerals)

- **खनिज** प्राकृतिक संसाधन हैं जिन्हें पृथ्वी की सतह से निकाला जाता है और इनका उपयोग उद्योगों, ऊर्जा उत्पादन, निर्माण, और अन्य गतिविधियों में होता है। भारत में विविध प्रकार के खनिजों का भंडार है, जो देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं।
- **प्रमुख खनिज**:
  - **कोयला**: भारत में कोयला एक प्रमुख ऊर्जा स्रोत है। यह बिजली उत्पादन, उद्योगों, और घरेलू ईंधन के रूप में उपयोग होता है। भारत का कोयला भंडार दुनिया में तीसरे स्थान पर है।
  - **लोहा अयस्क**: भारत लोहा अयस्क (Iron Ore) का बड़ा उत्पादक है। यह निर्माण और स्टील उद्योग के लिए महत्वपूर्ण है।
  - **लवण (Salt)**, **जस्ता**, **कॉपर**, **सोना**, **बॉक्साइट**, और **सिंक** जैसे अन्य खनिज भी भारत में महत्वपूर्ण हैं।
- **खनिजों का उपयोग**: खनिजों का मुख्य उपयोग उद्योगों में, जैसे स्टील निर्माण, रसायन उद्योग, और ऊर्जा उत्पादन में किया जाता है। भारत में खनिज संसाधनों का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है, विशेष रूप से औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के कारण।
- **खनिज संसाधनों के सीमित और असमान वितरण**: भारत में खनिज संसाधनों का वितरण असमान है। कुछ राज्य, जैसे झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़, और कर्नाटका, खनिज संपन्न हैं, जबकि अन्य क्षेत्रों में खनिज संसाधनों की कमी है।

3. प्राकृतिक संसाधनों की सीमाएँ और संरक्षण

- **सीमाएँ**: प्राकृतिक संसाधन सीमित होते हैं, और इनका अत्यधिक उपयोग संसाधनों के समाप्त होने या उनके अप्रभावित होने की संभावना को बढ़ा सकता है। इसके अलावा, खनिजों का अत्यधिक खनन पर्यावरणीय संकटों को जन्म दे सकता है, जैसे जलवायु परिवर्तन, पारिस्थितिकी तंत्र में असंतुलन और भूमि का कटाव।
- **संसाधनों का संरक्षण**: प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए सरकार और विभिन्न संगठन प्रयास कर रहे हैं। संसाधनों का सतत उपयोग और पुनर्चक्रण (Recycling) इसके महत्वपूर्ण उपाय हैं। खनिजों का सतत खनन, ऊर्जा दक्षता, और नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग बढ़ाना पर्यावरणीय स्थिरता बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं।

4. प्राकृतिक संसाधनों का समावेशी और सतत विकास

- **समावेशी विकास** का अर्थ है प्राकृतिक संसाधनों का ऐसा उपयोग, जिससे न केवल आर्थिक लाभ हो, बल्कि सामाजिक और पर्यावरणीय प्रभाव भी सकारात्मक हों। भारत में संसाधनों का बेहतर प्रबंधन, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग, और नवाचार द्वारा इस दिशा में काम किया जा रहा है।
- **नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत** (जैसे सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा) का उपयोग बढ़ाकर हम खनिजों के परंपरागत उपयोग पर निर्भरता को कम कर सकते हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे

- प्राकृतिक संसाधनों, विशेष रूप से भूमि और खनिजों की संरचना और उनके महत्व को समझ सकें।
- भारतीय अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक संसाधनों के वितरण और उपयोग का विश्लेषण कर सकें।
- भूमि और खनिजों के प्रभावी उपयोग के माध्यम से सतत विकास की दिशा तय कर सकें।

3.3 भूमि का अर्थ

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने उत्पत्ति के तीन साधन बतलाये थे अर्थात भूमि (Land), श्रम (Labour) और पूँजी (Capital)। उनके अनुसार भूमि उत्पत्ति का प्रारम्भिक और आधारभूत साधन है, जिसके बिना किसी भी प्रकार की उत्पत्ति सम्भव नहीं है, परन्तु क्योंकि भूमि एक निष्क्रिय साधन है, इसलिये उत्पादन के लिये श्रम जैसे सक्रिय साधन की आवश्यता अपरिहार्य है। इसीलिये उन्होंने श्रम को उत्पत्ति का दूसरा साधन माना। भूमि और श्रम के होते हुये भी बिना पूँजी के उत्पादन ठीक प्रकार से सम्भव नहीं है, इसलिये उन्होंने पूँजी को भी सम्मिलित करके उत्पादन के तीन साधन माने ।

आस्ट्रियन अर्थशास्त्रियों ने उत्पत्ति के साधनों को केवल दो वर्गों में वर्गीकृत किया है- यथा (1) विशिष्ट साधन (Specific Factors), (2) अविशिष्ट साधन (Non Specific Factors) । उत्पत्ति के साधन कितने भी हों, सभी अर्थशास्त्री भूमि के महत्व को स्वीकार करते हैं, और उसे उत्पादन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन मानते हैं।

साधारण बोलचाल की भाषा में भूमि का अर्थ जमीन की उस सतह से लगाया जाता है, जो प्रकृतिदत्त है। अर्थशास्त्र में भूमि में वे सभी उपहार सम्मिलित किये जाते हैं, जो मानव को प्रकृति की ओर से निःशुल्क प्राप्त होते हैं।

प्रो. मार्शल के शब्दों में "भूमि का अर्थ केवल भूमि न होकर इसमें उन समस्त पदार्थों एवं शक्तियों को भी सम्मिलित किया जाता है, जिन्हें प्रकृति ने मानव की सहायतार्थ पृथ्वी, भूमि, वायु, गर्मी, प्रकाश एवं पानी के रूप में निःशुल्क प्रदान किया है।"

इस परिभाषा के आधार पर भूमि में निम्नलिखित वस्तुएँ सम्मिलित की जाती हैं -

(1) प्राकृतिक शक्तियाँ जैसे जल, वायु, वर्षा, सूर्य की रोशनी व हवा ।

(II) पृथ्वी पर पाये जाने वाले प्राकृतिक पदार्थ जैसे वन, पहाड़, समुद्र, नदी आदि ।

(III) भूमि की ऊपरी सतह जिस पर मानव निवास करता है।

(IV) भूमि के गर्भ में छिपी वस्तुएँ जैसे कि कच्चा लोहा, सोना, तांबा, लोहा, मैंगनीज, अभ्रक आदि ।

अर्थशास्त्र में भूमि शब्द का अर्थ प्राकृतिक उपहारों से लिया जाता है, परन्तु केयर्नकॉस जैसे अर्थशास्त्री वर्षा, सूर्य की रोशनी आदि को भूमि में सम्मिलित नहीं करते हैं, क्योंकि इन पर किसी का नियन्त्रण व स्वामित्व नहीं होता है।

3.4 भूमि के लक्षण या विशेषताएँ

भूमि के मुख्य लक्षण या विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :-

(i) अनेक प्रयोग सम्भव :- भूमि के अनेक प्रयोग सम्भव हो सकते हैं जैसे कि इस पर कृषि की जा सकती है, मकान व कारखाने बनाये जा सकते हैं आदि ।

(ii) उत्पत्ति का निष्क्रिय साधन: भूमि स्वयं कुछ भी उत्पत्ति नहीं कर सकने के कारण भूमि को उत्पत्ति का निष्क्रिय साधन माना गया है। भूमि पर मनुष्य अपना श्रम व पूँजी लगाकर उत्पादन कार्य करता है।

(iii) उत्पादन का अविनाशी साधन : भूमि का नाश न होने के कारण इसे उत्पादन का अविनाशी साधन माना गया है।

(iv) प्रक्रति की निःशुल्क देन: भूमि को मनुष्य निर्मित नहीं कर पाता, जिससे भूमि को प्रकृति की निःशुल्क देन माना गया है। भूमि मनुष्य को बिना किसी मूल्य के प्राप्त होती है। उसे प्राप्त करने हेतु उसे कुछ नहीं देना होता ।

(v) सीमित मात्रा :- भूमि की मात्रा को सीमित माना गया है।

(vi) गतिशीलता का अभाव भूमि अचल एवं स्थिर होने के कारण इसमें गतिशीलता का अभाव पाया जाता है।

(vii) उर्वरा शक्ति की अपनी-अपनी स्थिति होने के कारण सभी भूमि एक समान नहीं होती।

(viii) भूमि ह्रास नियम के आधीन: कृषि में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने से भूमि के टुकड़े पर श्रम व पूँजी का अधिकाधिक प्रयोग करने पर उत्पादन उसी अनुपात में नहीं बढ़ पाता है।

3.5 भूमि का महत्व (Importance of land)

भूमि के महत्व को निम्न प्रकार रखा जा सकता है :-

(1) भूमि कृषि का आधार- भूमि को कृषि का आधार माना गया है क्योंकि बिना भूमि के खेती करना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार से जलवायु को भी भूमि का एक अंग माना गया है जो कृषि के लिये एक आवश्यक अंग है।

(2) भूमि सम्पूर्ण उत्पादन क्रिया का आधार- कल कारखानों को चलाने एवं स्थापित करने में भूमि ही स्थान प्रदान करती है। भूमि की सतह पर ही मनुष्य रहते एवं मकान बनाते हैं। अतः भूमि सम्पूर्ण उत्पादन क्रिया का आधार है।

(3) भूमि आर्थिक एवं औद्योगिक विकास का आधार- भूमि को आर्थिक एवं औद्योगिक विकास का आधार माना गया है क्योंकि -

(i) विद्युत उत्पन्न करने वाली नदियाँ भूमि की सतह की ही अंग होती हैं।

(ii) भूमि के गर्भ में खनिज पदार्थ जैसे लोहा, ताँबा, कोयला आदि पाये जाते हैं, जो कि देश के औद्योगिक विकास का आधार है तथा उन्हीं पर देश का आर्थिक विकास निर्भर करता है।

(iii) परिवहन एवं संचार के साधनों का विकास भूमि की सतह पर ही निर्भर करता है, क्योंकि पहाड़ी क्षेत्रों में रेल मार्गों एवं सड़कों का निर्माण करना अधिक खर्चीला पड़ता है।

(iv) प्रारम्भिक उद्योग भी भूमि पर निर्भर होते हैं। इन उद्योगों में मछली पकड़ना, वन व्यवसाय, पेड़ लगाना आदि सम्मिलित रहते हैं।

(4) मानव जीवन का विकास- आखेट युग, पशुपालन, कृषि युग तथा औद्योगिक युग में भूमि ने मनुष्य को भोजन की व्यवस्था, औद्योगीकरण का विकास तथा मानव सभ्यता के विकास में सहयोग दिया है, जिससे मनुष्य प्रकृति का ऋणी है।

भूमि के इस महत्व के कारण ही ऐली ने इसे उत्पादन का आधारभूत एवं महत्वपूर्ण साधन माना है।

3.5.1 फसली स्वरूप

जलवायु की विभिन्नता के कारण भारत में अनेक प्रकार की फसलें पैदा की जाती हैं। इन फसलों में धान, गेहूँ, मक्का, मूँगफली, गन्ना, तम्बाकू, जूट एवं कपास का प्रमुख स्थान है। भारत सम्पूर्ण विश्व में मूँगफली तथा जूट के उत्पादन में नम्बर एक पर है, जबकि धान और गन्ना के उत्पादन में नम्बर दो पर है। तम्बाकू के उत्पादन में अमेरिका और चीन के बाद भारत तीसरे स्थान पर है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि योजना काल में भारत में खाद्यान्नों एवं गैर खाद्यान्नों के क्षेत्रफल में तुलनात्मक काफी परिवर्तन हुआ है। वर्ष 1950-51 में जहाँ कुल कृषि क्षेत्र का 76.7 प्रतिशत भाग खाद्यान्न फसलों के अन्तर्गत था। अब घटकर 66.9 प्रतिशत रह गया है। इस प्रकार पिछले पचास वर्षों में गैर खाद्यान्न फसलों के क्षेत्र में वृद्धि हुई है। प्रमुख फसलों के क्षेत्र का तुलनात्मक विवरण तालिका एक में दर्शाया गया है:

तालिका-एक
भारत में प्रमुख फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र

(मिलियन हैक्टर)

प्रमुख फसले	1960-61	2009-10	प्रतिशत परिवर्तन
1. चावल	34.1	41.8	+22.6
2. गेहूँ	12.9	28.5	+120.9
3. ज्वार	18.4	07.6	(-)58.7
4. बाजरा	11.5	08.9	(-)22.6
5. चना	09.3	08.2	(-)11.8
6. दालें	23.6	23.4	(-)00.8
7.तिलहन	13.8	26.1	+89.1
8. गन्ना	02.4	04.2	+75.0
9. कपास	07.6	10.3	+35.5

स्रोत- *आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार-2010-2011 सारणी-1.13 पृष्ठ A-188 से संकलित।*

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि वर्ष 2009-10 के मध्य जहाँ गेहूँ के अन्तर्गत क्षेत्र में सर्वाधिक 120.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, वहीं चावल के क्षेत्र में 22.6 प्रतिशत, तिलहन के क्षेत्र में 89.1 प्रतिशत, गन्ना के क्षेत्र में 75.0 प्रतिशत एवं कपास के क्षेत्र में 35.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसके विपरीत इस अवधि में ज्वार के क्षेत्र में 58.7 प्रतिशत, चना के क्षेत्र में 11.8 प्रतिशत, बाजरा के अन्तर्गत क्षेत्र में 22.6 प्रतिशत एवं दालों के अन्तर्गत क्षेत्र में लगभग 1 प्रतिशत की कमी आयी। संक्षेप में पिछले 50 वर्षों में जहाँ गेहूँ, चावल एवं दालों के अन्तर्गत क्षेत्र में तेजी से वृद्धि हुई है, वहीं ज्वार एवं बाजरा जैसे हल्के अनाजों का क्षेत्र कम हुआ। गेहूँ एवं चावल के क्षेत्र में हुई वृद्धि का मुख्य कारण इन फसलों के अधिक उपज देने वाले बीजों की खोज एवं उनका लोकप्रिय होना है।

3.5.2 फसली स्वरूप की प्रमुख विशेषताएँ

भारत में फसली स्वरूप में पिछले पचास वर्षों में अनेक परिवर्तन हुये हैं। इससे जहाँ कृषि की परम्परागत धारणा यथा- 'कृषि जीवन यापन का साधन' में परिवर्तन हुआ है और अब कृषि एक व्यवसाय के समान की जाने लगी है। इससे जहाँ कृषकों का झुकाव

व्यापारिक फसलों की ओर बढ़ा है, वहीं आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभदायक फसलों के क्षेत्र में वृद्धि हुई है। इस परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में फसली स्वरूप की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं:-

1. खाद्यान्न फसलों के अन्तर्गत अधिक क्षेत्र- प्रारम्भ से ही कृषि को जीवन यापन का साधन माना जाता है तथा कृषक उन फसलों के उत्पादन को विशेष महत्व देता है, जो उसके दैनिक उपभोग की होती है। यही कारण है कि भारतीय कृषक खाद्यान्न फसलों के उत्पादन को महत्व देता है। इस शताब्दी के प्रारम्भ में खाद्यान्नों के अन्तर्गत लगभग 83 प्रतिशत क्षेत्र था, जो घटकर 1944-45 में 80 प्रतिशत एवं 1950-51 में 77 प्रतिशत हो गया। पंचवर्षीय योजनाकाल में कृषि उत्पादन तेजी से बढ़ा और कृषकों का रुझान खाद्यान्न फसलों के स्थान पर व्यापारिक फसलों की ओर बढ़ा। वर्तमान में खाद्यान्न फसलों के अन्तर्गत 66.9 प्रतिशत क्षेत्र है। स्पष्ट है कि अभी देश में खाद्यान्न फसलों का महत्वपूर्ण स्थान है।

2. व्यापारिक फसलों की ओर झुकाव :- वर्तमान में कृषकों का झुकाव गैर खाद्यान्न या व्यापारिक फसलों की ओर क्रमशः बढ़ रहा है। स्वतन्त्रता के बाद अधिक लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से कृषक गन्ना, कपास, फल- सब्जियाँ आदि के उत्पादन में विशेष रुचि लेते हैं। फलतः इन फसलों के क्षेत्र में वृद्धि हुई है। सन् 1950-51से 2009-10 की अवधि में खाद्यान्न फसलों के क्षेत्र में जहाँ लगभग 25 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, वहीं गैर खाद्यान्न फसलों का क्षेत्र 50 प्रतिशत से भी अधिक बढ़ा ।

3. कुछ फसलों के क्षेत्र में तुलनात्मक अधिक वृद्धि :- फसली स्वरूप की तीसरी प्रमुख विशेषता यह है कि जहाँ कुछ फसलों के क्षेत्र में तीव्र वृद्धि हुई है, वहीं कुछ ऐसी फसलें भी हैं जिनका क्षेत्र घट गया है। सन् 1950-51 से 2009-10 के मध्य गेहूँ के अन्तर्गत क्षेत्र 100 प्रतिशत बढ़ गया है। इसके विपरीत ज्वार, मक्का एवं बाजरा जैसी हल्की फसलों के क्षेत्र में कमी आयी है। व्यापारिक फसलों के अन्तर्गत गन्ने के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

4. उन्नत कृषि पद्धति के प्रभावः देश के फसली स्वरूप पर उन्नत कृषि पद्धति का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। जिन फसलों के अधिक उपज देने वाले बीज अधिक प्रभावी रहे हैं, उनका क्षेत्र बहुत बड़ा है। इसके विपरीत जिन फसलों की उन्नति पद्धति विकसित नहीं हुई है, उनका क्षेत्र कम हुआ है। गेहूँ के क्षेत्र में वृद्धि इसी कारण हुई है।

5. फसली क्षेत्र में असन्तुलन : फसली स्वरूप में परिवर्तन से कृषि उत्पादन में कुछ सीमा तक असन्तुलन पैदा हुआ है। कारण यह है कि जहाँ गेहूं एवं चावल में तुलनात्मक लाभ अधिक होने से इनके क्षेत्र में वृद्धि हुई है। इसके विपरीत तिलहनों एवं दालों के क्षेत्रों

में कमी हुई है। परिणाम यह हुआ है कि जहाँ गेहूँ एवं चावल का निर्यात किया जा रहा है, वहीं तिलहनों एवं दालों का आयात किया जा रहा है।

3.6 फसली स्वरूप के निर्धारक घटक (Factors determining cropping pattern)

किसी भी देश के फसली स्वरूप को अनेक तत्व प्रभावित करते हैं। भारत के फसली स्वरूप को प्रभावित करने वाले प्रमुख घटक निम्न प्रकार हैं :-

1. भौतिक घटक :- देश में विद्यमान भौतिक घटक सर्वाधिक रूप से फसली स्वरूप को प्रभावित

करता है। भौतिक घटकों के अन्तर्गत भूमि, मौसम एवं जलवायु, वर्षा आदि को सम्मिलित किया जाता है। इसका कारण यह है कि फसल विशेष के लिये अलग प्रकार की मिट्टी एवं जलवायु की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये पंजाब की मिट्टी एवं गर्मी का मौसम गेहूँ के लिये अधिक उपयुक्त है। इसी प्रकार जहाँ वर्षा कम होती है, वहाँ ज्वार एवं बाजरा की फसलें अधिक पैदा की जाती हैं। अच्छी वर्षा के कारण ही छत्तीसगढ़ राज्य चावल के उत्पादन में अग्रणी है।

2. ऐतिहासिक घटक : फसली स्वरूप परम्परागत रूप से भी प्रभावित रहता है। जिन क्षेत्रों में छोटे कृषक अधिक संख्या में है, वहाँ खाद्यान्नों का उत्पादन अधिक होता है, इसका कारण किसानों का स्वयं के उपभोग हेतु खाद्यान्नों का उत्पादन करना है। जमींदारी प्रथा में उन्हीं फसलों को अधिक पैदा किया जाता है, जिन्हें भूमि के जमींदार चाहते हैं। प्रायः जमींदारी प्रथा में बहु फसली खेती की जाती है।

3. सामाजिक घटक :- फसली स्वरूप पर जनसंख्या के घनत्व, रीति-रिवाज, परम्परायें, जोखिम उठाने की प्रवृत्ति, भौतिकवाद के प्रति दृष्टिकोण आदि का प्रभाव पड़ता है। स्वतन्त्रता के पूर्व प्रायः परम्पराओं के अनुसार फसलों का उत्पादन किया जाता था। यह फसली स्वरूप पीढ़ी दर पीढ़ी एक समान चलता रहता था। स्वतन्त्रता के बाद शिक्षा एवं जन जाग्रति के कारण परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों का प्रभाव कम हुआ है।

4. आर्थिक घटक :- आधुनिक समाज में आर्थिक घटक फसली स्वरूप को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। विकसित देशों में कृषि एक व्यवसाय माना जाता है और फसलों का निर्धारण पूर्णतः आर्थिक लाभ को ध्यान में रखकर किया जाता है। आर्थिक घटक मुख्यतः फसलों के मूल्य, आय, भूमि का आकार, संसाधनों की उपलब्धता आदि से सम्बन्धित है। भारत में भी अब कृषि एक व्यवसाय बन रहा है और परिणामस्वरूप फसली स्वरूप के निर्धारण में आर्थिक घटकों का महत्व क्रमशः बढ़ रहा है।

5. शासकीय नीति : शासकीय नीतियाँ भी फसली स्वरूप को प्रभावित करती हैं। सरकारी नीतियाँ कृषि उत्पादों के निर्यात- आयात, करारोपण, इनपुट्स की पूर्ति, साख सुविधाओं आदि से सम्बन्धित होती है। सरकार कुछ विशेष फसलों के उत्पादों को प्राथमिकता भी देती है। फलतः इन फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र में वृद्धि हो जाती है।

3.6.1 खनिज संसाधन

भारत के खनिज संसाधन (Mineral Resources of India):-

किसी भी देश के आर्थिक विकास में खनिज संसाधनों का विशेष महत्व है। वास्तविकता यह है कि लोहा, इस्पात, एल्यूमीनियम, सीमेंट, कोयला, पेट्रोलियम तथा उर्वरक उद्योग आर्थिक विकास के आधार माने जाते हैं। यह सभी उद्योग खनिज संसाधनों से जुड़े हुये हैं। संक्षेप यह कहा जा सकता है कि चाहे औद्योगीकरण हो अथवा कृषि विकास, देश के खनिज पदार्थ आर्थिक विकास को काफी प्रभावित करते हैं। भारत के खनिज पदार्थों को तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम समूह में वे खनिज पदार्थ आते हैं, जिनमें निर्यात के लायक बचत होती है, जैसे-कच्चा लोहा, मैंगनीज, अभ्रक, इल्मेनाइट, मैग्नेसाइट आदि । द्वितीय समूह में वे खनिज आते हैं, जिनमें भारत लगभग आत्म निर्भर है, क्योंकि देश में ये पर्याप्त मात्रा में निकाले जाते हैं, जैसे- कोयला, बाक्साइट, नमक, बैरियम, जिप्सम या खड़िया, लाइम स्टोन व क्रोमाइट आदि। तृतीय समूह में वे खनिज आते हैं, जिनका भारत में काफी अभाव पाया जाता है, जिसकी वजह से इनका आयात किया जाता है। इसमें विशेषतया अलौह धातु (Non Ferrous- Metals) आते हैं, जैसे- तांबा, सीसा, जस्ता, रांगा। भारत निकिल पारा, गन्धक, खनिज तेल आदि का भी आयात करता है।

भारत में खनिज पदार्थ सभी स्थानों पर समान रूप से नहीं पाये जाते हैं। खनिजों में बिहार व झारखण्ड, उड़ीसा तथा छत्तीसगढ़ व पश्चिमी बंगाल सम्पन्न प्रदेश है, जहाँ महत्वपूर्ण खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। इन राज्यों के अतिरिक्त कम महत्वपूर्ण राज्य आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, राजस्थान, तमिलनाडु एवं गुजरात हैं। बिहार व झारखण्ड में कोयला, लोहा, अभ्रक व बाक्साइट, उड़ीसा में लोहा व मैंगनीज, मध्यप्रदेश व छत्तीसगढ़ में कोयला, लोहा, चूना पत्थर, मैंगनीज व बाक्साइट, पश्चिम बंगाल में कोयला, आन्ध्रप्रदेश में अभ्रक व कोयला, कर्नाटक में सोना, लोहा, अभ्रक, महाराष्ट्र में बॉक्साइट व मैंगनीज, राजस्थान में अभ्रक, तमिलनाडु में इल्मेनाइट व चूना पत्थर, गुजरात में बॉक्साइट एवं पेट्रोलियम मिलता है।

खनिजों की दृष्टि से मुख्य खनिज क्षेत्र निम्न हैं :-

क्षेत्र	खनिज पदार्थ
1. राजस्थान-गुजरात	पेट्रोलियम, अभ्रक, मैंगनीज व पत्थर ।
2. आंध्रप्रदेश-तमिलनाडु	अभ्रक, मैंगनीज, लिग्नाइट ।
3. कर्नाटक-आन्ध्रप्रदेश-तमिलनाडु	सोना, लोहा, मैंगनीज, क्रोमाइट व ताँबा ।
4.मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़-आन्ध्रप्रदेश- महाराष्ट्र	कोयला, लोहा, चूना-पत्थर, मैंगनीज, बॉक्साइट, खनिज तेल ।
5. बिहार-झारखण्ड-उड़ीसा-पश्चिमी बंगाल	कोयला, लोहा, ताँबा, अभक, बॉक्साइट, मैंगनीज, क्रोमाइट व चूना-पत्थर

3.6.2 भारत के प्रमुख खनिज पदार्थ

(1) लौह अयस्क या कच्चा लोहा (Iron Ore)- लोहा व इस्पात खानों में से निकलने वाले कच्चे लोहे से बनते हैं। लोहा एक बहत ही महत्वपूर्ण एवं मूल धातु है। सभी मशीनें और औजार लोहे से बनते हैं। पिन जैसी छोटी से छोटी वस्तु से लेकर युद्ध-तोपों जैसी बड़ी से बड़ी वस्तुओं के लिये लोहे की आवश्यकता होती है। अतः लोहे का उत्पादन और उपभोग प्रायः किसी देश की आर्थिक उन्नति का सूचना होता है। भारत का प्रमुख लौह क्षेत्र बिहार राज्य के सिंहभूम जिले में (कोम्पिलाई) होता हुआ उड़ीसा में क्योंझर, लोनाई, मयूरभंज क्षेत्रों तक 48 किमी. की लम्बाई में चला गया है। इस क्षेत्र में अनन्त राशि में लोहा भरा पड़ा है। मध्यप्रदेश में दुर्ग में राजहरा पहाड़ी तथा बस्तर, रायगढ़, रायघाट, सरगुजा, बिलासपुर, जबलपुर, मण्डला, बालाघाट आदि जिलों तथा घाली पहाड़ी में लोहे की पहाड़ियाँ पायी जाती हैं।

भारत में लोहे का वार्षिक उत्पादन 2009-10 में 2260 लाख टन हो गया था। देश से पर्याप्त मात्रा में खनिज लोहे का निर्यात भी होता है। भारत में खानिज लोहे का निर्यात जापान तथा यूरोप के पूर्वी देशों को किया जाता है। निर्यात-कार्य भारतीय खनिज एवं धातु व्यापार निगम द्वारा किया जाता है। गोआ में यह कार्य निजी व्यापारियों द्वारा किया जा रहा है। एक मोटे अनुमान के अनुसार भारत में विश्व के भण्डारों का एक चौथाई लोहा निहित है। भारत में कुल संचय की मात्रा 1142.6 करोड़ टन अनुमानित की गयी है।

(2) मैंगनीज (Manganese) :- मैंगनीज धातु काले रंग की प्राकृतिक भस्मों के रूप में धारवाड़ युग की पर्तदार शैल में पायी जाती है। मैंगनीज खनिज ठोस तथा नरम और रवाहीन होता है। मैंगनीज भी लोहे की भाँति ही एक कठोर प्रस्तर होता है। जिस लौह-प्रस्तर में 5 प्रतिशत से कम मैंगनीज मिलता है, वह लोहा कहलाता है और जिसमें 4

प्रतिशत से अधिक मैंगनीज होता है, वह मैंगनीज कहलाता है। भारत में मैंगनीज उत्पादन करने वाले राज्यों में उड़ीसा का स्थान प्रथम है, कर्नाटक का दूसरा तथा महाराष्ट्र का स्थान तीसरा है। राजस्थान, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु व पश्चिम बंगाल में भी मैंगनीज का उत्पादन होता है। भारत की यह खनिज सम्पदा उत्तम प्रकार की है। यही नहीं यहाँ इस खनिज के जमाव भी अधिक हैं। भारत में मैंगनीज के सुरक्षित भण्डार 37.9 करोड़ टन हैं, जिनमें से 7 करोड़ टन मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार, उड़ीसा और आन्ध्रप्रदेश में है। वर्ष 2009-10 में इसका उत्पादन 20.0 लाख टन हो गया था।

यह एक महत्वपूर्ण खनिज है। इसका उपयोग कच्चे लोहे से इस्पात बनाने, सीसा, ब्लीचिंग पाउडर, शुष्क बैट्री, प्लास्टिक, वार्निश, रासायनिक पदार्थों, कीटनाशक दवाइयों आदि के बनाने में किया जाता है। भारत में मैंगनीज का वार्षिक उत्पादन लगभग पन्द्रह लाख मीट्रिक टन है। भारत में मैंगनीज का निर्यात मुख्यतः फ्रान्स, चेकोस्लोवाकिया, पश्चिमी जर्मनी, बेल्जियम, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान और ब्रिटेन को होता है।

(3) अभ्रक (Mica) :- अभ्रक आग्नेय और परिवर्तित शिलाओं में सफेद या काले अभ्रक के रूप में छोटे-छोटे टुकड़ों में पाया जाता है। यह बड़े-बड़े टुकड़ों के रूप में भी निकाला जाता है, जो साधारणतः 4 मीटर लम्बे और 3 मीटर तक मोटे होते हैं। विश्व में अभ्रक का उत्पादन करने वाले देशों में भारत का स्थान सर्वप्रथम है। यहीं से विश्व के कुल उत्पादन का लगभग 80 प्रतिशत अच्छे किस्म का अभ्रक प्राप्त होता है। अभ्रक के प्रमुख क्षेत्र निम्न प्रकार हैं- (i) बिहार राज्य में अभ्रक का क्षेत्र गया, हजारीबाग, भागलपुर, मुंगेर और संथाल परगना में फैला है। (ii) अभ्रक का दूसरा प्रसिद्ध क्षेत्र आन्ध्रप्रदेश के विशाखापट्टनम और नैलोर जिलों में है। यहाँ की प्रसिद्ध खानें कीलोचेहू और तेलीबाहू हैं। (iii) राजस्थान का अभ्रक के उत्पादन में तीसरा स्थान है। भारत में अभ्रक का अनुमानित भण्डार 3.94 लाख टन है। अभ्रक बहुत उपयोगी धातु है तथा बिजली का कुचालक होने के कारण अभ्रक का प्रयोग बिजली के सामान, रेडियो, वायुयान, मोटर कार तथा पारदर्शक चादरें आदि बनाने में होता है। यही कारण है कि अभक का प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इन उद्योगों के विकास के साथ-साथ भारत में अभ्रक की माँग बढ़ रही है। भारत में अभ्रक का वार्षिक उत्पादन लगभग 20 हजार मीट्रिक टन है। हमारे देश में अभ्रक की खपत बहुत कम है। इसलिये देश में अभ्रक के उत्पादन का एक बहुत बड़ा भाग विदेशों को भेज दिया जाता है।

भारतीय अभ्रक के मुख्य ग्राहक संयुक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी तथा फ्रान्स हैं।

(4) बॉक्साइट (Bauxite) :- यह एक धातु है जो मिट्टी के रंग की होती है। इसमें धातु की मात्रा 50 से लेकर 55 प्रतिशत तक होती है। यह एल्यूमिनियम बनाने के लिये एक आवश्यक तत्व है। इसके अतिरिक्त, इसको सीमेंट बनाने, पत्थर को काटने व घिसने के काम में लाया जाता है। इसका प्रयोग विद्युतीकरण व आन्तरिक खोज में भी किया जाता है।

भारत में कुल बॉक्साइट भण्डार 329 करोड़ टन के बताये जाते हैं। अभी हाल ही में पूर्वी तट पर उच्च श्रेणी के विशाल बॉक्साइट भण्डार मिले हैं, जिससे भारत बॉक्साइट भण्डार के मामले में विश्व में पाँचवें स्थान पर आ गया है। 2008-09 में बॉक्साइट का उत्पादन 152.5 लाख टन हुआ है।

(5) कोयला (Coal) :- वर्तमान शक्ति साधनों में कोयला सबसे अधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय पदार्थ है जो औद्योगिक क्रान्ति के लिये महत्वपूर्ण शक्ति है। यह घरेलू ईंधन के लिये भी अच्छा है। इससे कई रासायनिक पदार्थ, जैसे-तेल, बैंजाल, नेफ्था आदि मिलते हैं। इससे बिजली के बटनों का निर्माण होता है। इससे कोलतार भी बनाया जाता है। इससे डायल भी बनाया जा सकता है, जिससे अमोनिया द्रव्य निकलता है, जो खाद बनाने वाले कारखानों के काम आता है।

विश्व के कुल कोयला भण्डार की दृष्टि से भारत में कोयला भण्डार अधिक नहीं है। भू-सर्वेक्षण विभाग के अनुसार देश में 25,525 करोड़ टन के सुरक्षित भण्डार हैं। यह मात्रा 350 से 400 वर्षों तक के लिये पर्याप्त है। यहाँ पर 2 प्रतिशत कोयला अच्छा, 7 प्रतिशत मध्यम व 91 प्रतिशत घटिया किस्म का है।

भारत में कोयला उत्पादन के मुख्य क्षेत्र झारखण्ड, उड़ीसा व छत्तीसगढ़ हैं। इन राज्यों के अतिरिक्त पश्चिमी बंगाल, आन्ध्रप्रदेश व महाराष्ट्र में भी कोयले का उत्पादन होता है। भारत में कोयले का उत्पादन सर्वप्रथम 1774 में रानीगंज (पश्चिमी बंगाल) में प्रारम्भ किया गया था। 1950-51 में कोयले का उत्पादन 323 लाख टन, 1970-71 में 763 लाख टन व 2009-10 में 5661 लाख टन हो गया।

वर्तमान में कोयले का उत्पादन उसकी मांग से कम है। अतः कोयला आयात किया जा रहा है, लेकिन बढ़ती हुई मांग कोयले का अधिक उत्पादन करने के लिये विवश कर रही है। अतः इस बात की आबश्यकता है कि कोयले का उत्पादन बढ़ाया जाये ।

(6) क्रोमाइट (Chromite) :- यह एक महत्वपूर्ण खनिज पदार्थ है। इसका प्रयोग अधिकतर रासायनिक और इस्पात उद्योग में होता है। यह कर्नाटक, बिहार, तमिलनाडु, उड़ीसा, महाराष्ट्र व आन्ध्रप्रदेश में मिलता है। भारत में क्रोमाइट का भण्डार बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध है। अनुमान है कि इसका भण्डार 21.3 करोड़ टन है। भारत में

क्रोमाइट का वार्षिक उत्पादन 2009-10 में 3218 हजार टन था। लगभग 65 हजार टन है। क्रोमाइट भी एक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी खनिज पदार्थ है। इसे लोहा व इस्पात उद्योग में प्रयोग किया जाता है तथा चमड़े को साफ करने के काम में प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग कुछ रासायनिक पदार्थ बनाने में भी किया जाता है। अमेरिका, ब्रिटेन, स्वीडन, जर्मनी, नार्वे आदि देशों को भारतीय क्रोमाइट का निर्यात होता है। भारत सरकार ने इसका निर्यात केवल दस हजार टन तक सीमित कर दिया है।

(7) गन्धक (Sulphur) :- यह एक आधारभूत रासायनिक पदार्थ है जो भारत में कुछ अधिक मात्रा में पाया जाता है। गन्धक के तेजाब का उद्योग गन्धक के उत्पादन पर ही निर्भर करता है। भारत पहले इसका बहुत अधिक मात्रा में आयात करता था। आर्थिक नियोजन के 25 वर्षों तक भारत में गन्धक के तेजाब का उत्पादन छः गुना बढ़ गया। गन्धक, लोहा पाइराइट, ताँबा पाइराइट और खड़िया से निकाला जाता है, जो भारत में बहुत अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। राजस्थान, बिहार, मैसूर भारत में गन्धक के उत्पादन के मुख्य क्षेत्र हैं।

(8) पेट्रोलियम (Petroleum):- आज के युग में पेट्रोलियम या खनिज तेल एक देश के लिये परम आवश्यक है। इससे औद्योगिक विकास में सहायता मिलती है। प्रतिरक्षा होती है। परिवहन साधनों का विकास होता है। बहुत-से उद्योग-धन्धे इसी पर आधारित हैं। यह मोटर, हवाई जहाज, मशीनें आदि के चलाने के काम आता है। भारत में पेट्रोलियम के भण्डार 10.36 लाख वर्ग किलोमीटर में बताये जाते हैं। एक दूसरे अनुमान के अनुसार भारत में कुल खनिज तेल भण्डार 13 करोड़ टन के हैं। यह भण्डार असम, गुजरात, नाहरकटिया, खन्भात, अंकलेश्वर, डिगबोई, सुरमाघाट, कच्छ की खाड़ी, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा, केरल, बंगाल की खाड़ी, बाम्बे हाई आदि में पाये जाते हैं। भारत में तेल स्रोत सर्वप्रथम 1866 में देखे गये थे। 1950-1 में पेट्रोलियम का उत्पादन 3 लाख टन था, जो 1970-71 में 68 लाख टन व 2009-10 में 337 लाख टन हो गया है। पेट्रोलियम पदार्थों का भारत की ऊर्जा माँग से कम ही उत्पादन होता है। अतः इनको आयात करना पड़ता है। 1970-71 में 136 करोड़ रुपये के मूल्य के पेट्रोलियम पदार्थों का आयात किया गया, लेकिन 1999-2000 में यह बढ़कर 45,421 करोड़ रुपये तथा 2008-09 में 4,19,946 करोड़ रुपए का हो गया है। अभी कुछ वर्षों तक पेटोलियम पदार्थों का आयात लगभग समान रहने की सम्भावना है, लेकिन इसके बाद आयात कम हो जायेंगे। इसका कारण बाम्बे हाई से भारी मात्रा में पेट्रोलियम पदार्थ का निकाला जाना व नये-नये क्षेत्रों का पता लगाना है, जहाँ से पेट्रोलियम पदार्थ निकाले जा सकते हैं।

(9) ताँबा (Copper):- यह विद्युत उद्योग में बहुत आवश्यक माना जाता है। भारत में कच्चे ताँबे की पूर्ति इसकी मांग से बहत कम होती है, इसलिये हमें इसका विदेशों से आयात करना होता है। ताँबा विशेषकर राजस्थान व बिहार में पाया जाता है। राजस्थान में यह झंझनू जिले में खेतड़ी नामक स्थान पर और अलवर में दरीबो नामक क्षेत्र में पाया जाता है। सिक्किम के रंगपो (Rangpo) क्षेत्र में भी ताँबा मिलता है। इस क्षेत्र में सिक्किम सरकार एवं भारत सरकार दोनों मिलकर काम कर रहे हैं।

खेतड़ी कोलीहान की तांबे की खानें बहुत पुरानी हैं। 1961 से राष्ट्रीय खनिज विकास निगम की देखरेख में यहाँ तांबे के प्रोजेक्ट पर कार्य हो रहा है। खान से प्राप्त माल में 1 प्रतिशत ताँबा निकलता है। तांबा पिघलने की प्रक्रिया में सल्फर डाऑक्साइड उत्पन्न होता है, जिससे गन्धक का तेजाब बनाया जा सकता है, जो खाद बनाने के काम आता है। बहुत थोड़ी मात्रा में सोना चाँदी भी ताँबे के साथ मिले हुये पाये जाते हैं। नवम्बर, 1974 में खेतड़ी ताँबा स्मेल्टर संयन्त्र प्रारम्भ किया गया था। बिहार में राखा (Rakha) में ताँबे के भारी भण्डार पाये गये हैं।

(10) आणविक खनिज (Nuclear Ores) :- भारत में अणु शक्ति के लिये यूरेनियम व थोरियम खनिज मिलते हैं। यूरेनियम बिहार और राजस्थान में पाया जाता है। बिहार में कई हजार टन यूरेनियम मिलने की सम्भावना है। भारत सरकार ने बम्बई के पास ट्राम्बे में एक आणविक भट्टी बनायी है।

मोनेजाइट से थोरियम निकलता है। यह खनिज केरल, बिहार व कर्नाटक में पाया जाता है। मोनेजाइट का सरकारी कारखाना 1951 से केरल में कार्य कर रहा है। केरल की तटीय मिट्टियों में हमारे थोरियम के सबसे अधिक मूल्यवान भण्डार विद्यमान हैं। भारत के आणविक खनिज-साधन अणु-शक्ति के विकास की दृष्टि से पर्याप्त माने जा सकते हैं।

(11) बेरियम (Barium) :- यह ताँबा, पीतल तथा लोहे आदि के साथ मिलाकर मिश्र धातुएँ बनाने के काम आता है। बेरियम राजस्थान, बिहार व आन्ध्र में मुख्यतः अभ्रक के साथ मिलता है। इनका समस्त भण्डार आणविक शक्ति आयोग ने अपने हाथों में ले लिया है। उपर्युक्त वर्णित खनिजों के अतिरिक्त भारत में लिग्राइट, इल्मेनाइट, सोना, चाँदी, जस्ता, हीरा, सीसा, केल्साइट आदि भी पाये जाते हैं।

3.7 भारत सरकार की खनिज नीति

स्वतन्त्रता से पूर्व देश की कोई खनिज नीति नहीं थी और न खनिजों के विकास के लिये काई कार्यक्रम था। सबसे पहले 1948 में खान एवं खनिज नियमन एवं विकास

अधिनियम (Mines and Minerals Regulation and Development Act) पारित किया गया तथा भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण संगठन (Geological Survey of India) का विकास किया गया। खनिज पदार्थों की रक्षा करने, उनका विनाश रोकने तथा कुशल प्राविधिक नियन्त्रण के अधीन कार्य की व्यवस्था करने एवं खनिज सम्बन्धी नीति निर्धारण करने के लिये इस अधिनियम के अन्तर्गत भारतीय खनिज संस्थान की स्थापना की गयी। बाद में 1952 व 1990 में राष्ट्रीय खनिज नीतियों की घोषणा की गई है। तदुपरान्त नई आर्थिक नीति के सन्दर्भ में 5 मार्च, 1993 को नवीन खनिज नीति की घोषणा की। इन खनिज नीतियों के सन्दर्भ में केन्द्रीय सरकार ने जो कदम उठाये हैं, वे निम्न प्रकार हैं :-

(1) खनिज पदार्थों के लिये सर्वेक्षण : स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण संगठन का विकास किया गया तथा सर्वेक्षण का मुख्य उत्तरदायित्व इसको सौंपा गया। गत वर्षों में इस संस्थान ने लोहा, कोयला, ताँबा, बॉक्साइट, मैंगनीज आदि अनेक खनिजों के भण्डारों के बारे में जानकारी दी है।

(2) परमाणु शक्ति आयोग की स्थापना :- 1948 में परमाणु शक्ति आयोग स्थापति किया गया व 1954 में केन्द्र में परमाणु ऊर्जा विभाग बनाया गया। इस आयोग ने भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण द्वारा एकत्रित सूचनाओं के आधार पर अपने कार्य का विस्तार किया है।

(3) विकास संस्थाओं की स्थापना: खनिज पदार्थों के विकास के लिये कई संस्थाएँ स्थापित की गई हैं। जैसे- (i) मिनरल एक्सप्लोरेशन लिमिटेड, (ii) राष्ट्रीय खनिज विकास निगम, (iii) राष्ट्रीय कोयला विकास निगम, (iv) राष्ट्रीय धातु प्रयोग शाला, (v) खनिज एवं धातु व्यापार निगम, (vi) हिन्दुस्तान कॉपर लिमिटेड, (vii) हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड, (vii) भारतीय एल्युमीनियम कम्पनी लिमिटेड और (ix) तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम आदि ।

(4) भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण: केन्द्रीय सरकार खनिज साधनों के विकास के लिये देश का पूर्ण भू-तत्वीय मानचित्र बना रही है, जिसके लिये भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण (Geological Survey of India) प्रयत्नशील है। बताया जाता है कि अब तक देश के कुल 72 प्रतिशत भाग का ही भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण तथा मानचित्र बन पाया है।

अभी हाल ही में सर्वेक्षण संस्था ने एक गहन खनिज अन्वेषण योजना बनाकर लागू की है, जिसके अन्तर्गत अलौह खनिज पदार्थों के सम्बन्ध में सर्वेक्षण किया गया है। इस योजना में बॉक्साइट, तांबा, सीसा, जस्ता, मैंगनीज, क्रोमाइट आदि को शामिल किया गया है। यह योजना खनिज विकास निगम, राष्ट्रीय खनिज विकास निगम, भारतीय खान ब्यूरो तथा राज्य के खान व भूगर्भ निदेशालयों के सहयोग से चलायी जा रही है।

(5) सामरिक महत्व के खनिजों का विकास: देश की सुरक्षा के लिये जिन खनिजों की आवश्यकता है, उनका विकास किया गया है, जैसे-गन्धक, यूरेनियम, वैनेडियम, टिन आदि।

(6) खनिजों का हवाई सर्वेक्षण : देश में उपलब्ध खनिज पदार्थों का पता लगाने के लिये हवाई सर्वेक्षण किये गये हैं। 1967 में USAID के सहयोग से तथा 1971-72 में पेरिस के BPGM\CGGके सहयोग से हवाई सर्वेक्षण किये गये हैं।

(7) निजी एवं विदेशी कम्पनियों की भागीदारी: केन्द्रीय सरकार ने 5 मार्च, 1993 को नवीन खनिज नीति की घोषणा की है, जिसके अनुसार सरकार ने जिन 13 खनिजों के विकास का काम अपने हाथ में ले रखा था, उसे निजी क्षेत्रों के लिये खोल दिया गया है। इस नीति के अनुसार खनिजों की खोज करने और उनका विदोहन करने के लिये अब निजी कम्पनियों व विदेशी कम्पनियों को भी काम का अधिकार दे दिया गया है। अब समुद्र की तलहटी से खनिज निकालने, खानों की खुदाई कर निकाले जाने वाले खनिजों का इस्तेमाल करने और खनिज उद्योग के विकास के बीच सही तालमेल के लिये निजी व विदेशों कम्पनियों को भारत में काम करने की सभी सुविधाएँ दी जायेंगी। इस नीत में खानिज सम्बन्धी मामलों में विदेशी निवेश, प्रौद्योगिकी और विदेशा भागीदारी को प्रोत्साहन दिया जाना है। सामान्यतया विदेशी कम्पनियों को 50 प्रतिशत भागीदारी दी जावेगी, लेकिन कुछ खास मामलों में और दुर्लभ खनिजों की खोज और विदोहन से जुड़े मामलों में इस 50 प्रतिशत से भी अधिक भागीदारी दी जा सकती है।

3.8 सार संक्षेप

प्राकृतिक संसाधन - भूमि एवं खनिज भारतीय अर्थव्यवस्था के दो महत्वपूर्ण घटक हैं, जो देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन संसाधनों का सही उपयोग और प्रबंधन देश की समृद्धि और स्थिरता के लिए आवश्यक हैं।

1. भूमि (Land):

- **भूमि** एक प्रमुख प्राकृतिक संसाधन है, जिसका मुख्य उपयोग कृषि, आवास, उद्योग, और बुनियादी ढाँचों के लिए होता है। भारत में कृषि भूमि का उपयोग प्रमुख रूप से खाद्य उत्पादन के लिए किया जाता है, और यह देश की आर्थिक गतिविधियों में महत्वपूर्ण योगदान देता है।
- भूमि का वितरण असमान है, जिससे कुछ क्षेत्र कृषि और उद्योग के लिए उपयुक्त हैं जबकि अन्य क्षेत्र शुष्क या पहाड़ी हैं।

- भूमि सुधारों की आवश्यकता है, ताकि छोटे और मंझले किसानों के पास कृषि योग्य भूमि हो, और उनका उत्पादन बढ़ सके। इसके अलावा, भूमि का सतत और विवेकपूर्ण उपयोग पर्यावरणीय स्थिरता बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

2. खनिज (Minerals):

- **खनिज** प्राकृतिक संसाधन हैं जो पृथ्वी की सतह से खनन करके निकाले जाते हैं और इनका उपयोग उद्योगों, ऊर्जा उत्पादन, निर्माण, और अन्य गतिविधियों में होता है। भारत में विविध प्रकार के खनिजों का भंडार है, जैसे कोयला, लोहा अयस्क, बॉक्साइट, सोना, और अन्य।
- **कोयला** भारत में प्रमुख ऊर्जा स्रोत है, जिसका उपयोग बिजली उत्पादन और अन्य उद्योगों में होता है।
- **लोहा अयस्क**, **जस्ता**, **कॉपर**, और **सोना** जैसे खनिजों का उपयोग विभिन्न उद्योगों में होता है, जैसे स्टील निर्माण, निर्माण, और इलेक्ट्रॉनिक्स।
- खनिजों का अत्यधिक खनन पर्यावरणीय संकटों का कारण बन सकता है, जैसे जलवायु परिवर्तन, भूमि का कटाव और पारिस्थितिकी तंत्र का असंतुलन। इसलिए खनिज संसाधनों का सतत खनन और प्रबंधन आवश्यक है।

3. प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और सतत उपयोग:

- **संसाधनों का संरक्षण**: भूमि और खनिज संसाधनों का अत्यधिक उपयोग उनके खत्म होने का कारण बन सकता है। इनका सही तरीके से उपयोग और संरक्षण महत्वपूर्ण है, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इन संसाधनों का लाभ उठा सकें।
- **सतत विकास**: नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों (जैसे सौर ऊर्जा और पवन ऊर्जा) का बढ़ता उपयोग खनिजों पर दबाव को कम कर सकता है। साथ ही, कृषि और खनन क्षेत्रों में जल और पर्यावरणीय संरक्षण को ध्यान में रखते हुए नीतियाँ बनाई जानी चाहिए।

3.9 मुख्य शब्द

प्राकृतिक संसाधन - भूमि एवं खनिज से संबंधित महत्वपूर्ण मुख्य शब्द (Terminology) को समझना भारतीय अर्थव्यवस्था और पर्यावरण के दृष्टिकोण से जरूरी है। यह मुख्य शब्द भूमि उपयोग, खनिज संसाधनों, और उनके संरक्षण से जुड़ी महत्वपूर्ण अवधारणाओं और प्रक्रियाओं को स्पष्ट करती है।

भूमि (Land) संबंधित मुख्य शब्द :

1. **कृषि भूमि (Agricultural Land)**: वह भूमि जिसका मुख्य उद्देश्य फसलों की खेती करना होता है। इसमें सिंचित और असिंचित भूमि दोनों शामिल हैं।
2. **भूमि सुधार (Land Reforms)**: सरकारी नीतियाँ और योजनाएँ, जिनका उद्देश्य भूमि के वितरण में असमानता को कम करना और कृषि उत्पादकता बढ़ाना है। इसमें भूमि का पुनर्वितरण, भूमि सुधार अधिनियम और पट्टा व्यवस्था शामिल होती है।
3. **भूमि उपयोग योजना (Land Use Planning)**: भूमि के विभिन्न उपयोगों (कृषि, आवास, उद्योग आदि) के लिए एक व्यवस्थित योजना तैयार करना ताकि संसाधनों का संतुलित उपयोग हो सके।
4. **भूमि अधिग्रहण (Land Acquisition)**: सरकारी उपयोग के लिए या विकास परियोजनाओं (जैसे सड़क निर्माण, उद्योग, बुनियादी ढांचा) के लिए भूमि का अधिग्रहण किया जाता है।
5. **सिंचित भूमि (Irrigated Land)**: वह भूमि जो सिंचाई व्यवस्था (नदी, नहर, जलाशय आदि) से सिंचित होती है और जिससे कृषि उत्पादकता में वृद्धि होती है।
6. **असिंचित भूमि (Unirrigated Land)**: वह भूमि, जिसे प्राकृतिक वर्षा पर निर्भर रहकर कृषि कार्य किया जाता है और जिसे सिंचाई की सुविधा नहीं मिलती।
7. **भूमि उपयोग परिवर्तन (Land Use Change)**: भूमि का उपयोग एक प्रकार से दूसरे प्रकार में बदलने की प्रक्रिया, जैसे कृषि भूमि का आवासीय या औद्योगिक भूमि में रूपांतरण।
8. **भूमि क्षरण (Soil Erosion)**: प्राकृतिक या मानवजनित कारणों से मिट्टी का उखड़ना, जो भूमि की उपजाऊ क्षमता को कम करता है और पर्यावरणीय संकट पैदा करता है।

खनिज (Minerals) संबंधित मुख्य शब्द :

1. **खनिज संसाधन (Mineral Resources)**: पृथ्वी की सतह से निकाले गए खनिजों का भंडार, जो मानव उपयोग के लिए आवश्यक होते हैं, जैसे कोयला, लोहा, बॉक्साइट, सोना आदि।

2. **खनिज भंडार** (**Mineral Deposits**): पृथ्वी के नीचे या सतह पर एकत्रित खनिजों की बड़ी मात्रा, जो खनन द्वारा निकाली जाती है।
3. **खनन** (**Mining**): खनिजों को पृथ्वी की सतह से निकाले जाने की प्रक्रिया। यह सतही या भूमिगत खनन हो सकता है।
4. **खनिज निष्कर्षण** (**Mineral Extraction**): खनिज संसाधनों को प्राकृतिक रूप से खनिज भंडार से निकालने की प्रक्रिया। इसमें खनन, परिष्करण (refining) और प्रसंस्करण (processing) शामिल होते हैं।
5. **खनिज संसाधनों का निर्यात** (**Mineral Exports**): खनिजों की उस प्रक्रिया को कहते हैं, जिसमें देश के बाहर खनिजों का व्यापार और निर्यात किया जाता है।
6. **खनिज संसाधन संरक्षण** (**Mineral Resource Conservation**): खनिज संसाधनों के अत्यधिक उपयोग को नियंत्रित करने की प्रक्रिया, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इनका उपयोग कर सकें। इसमें पुनः चक्रण (recycling) और वैकल्पिक खनिज स्रोतों का उपयोग शामिल होता है।
7. **कोयला** (**Coal**): एक प्रमुख खनिज जो ऊर्जा उत्पादन के लिए मुख्य रूप से उपयोग किया जाता है। यह विद्युत संयंत्रों, उद्योगों और घरेलू ईंधन के रूप में उपयोग होता है।
8. **लोहा अयस्क** (**Iron Ore**): वह खनिज जिससे लोहा निकाला जाता है, जो निर्माण उद्योग, खासकर स्टील निर्माण के लिए आवश्यक होता है।
9. **बॉक्साइट** (**Bauxite**): यह खनिज एल्यूमिनियम बनाने के लिए प्रमुख स्रोत होता है। बॉक्साइट से एल्यूमिनियम निष्कर्षण किया जाता है।
10. **सोना** (**Gold**): एक दुर्लभ खनिज जो आभूषणों और वित्तीय लेन-देन के लिए महत्वपूर्ण है। इसका खनन कम स्थानों पर होता है।
11. **खनिज आधारित उद्योग** (**Mineral-based Industries**): वे उद्योग जो खनिजों से उत्पादों का निर्माण करते हैं, जैसे स्टील उद्योग, रासायनिक उद्योग, और विद्युत ऊर्जा उद्योग।
12. **खनिज खपत** (**Mineral Consumption**): खनिज संसाधनों का उपयोग उद्योगों और उपभोक्ताओं द्वारा, जैसे निर्माण, ऊर्जा उत्पादन, और परिवहन क्षेत्र में।

13. **खनिज संसाधनों का पुनर्चक्रण (Recycling of Mineral Resources)**: खनिजों का पुनः उपयोग, ताकि प्राकृतिक संसाधनों की खपत कम हो और खनिजों का संरक्षण हो सके।
14. **खनिज धातु (Ore)**: खनिज का वह रूप जिसमें कोई मूल्यवान धातु पाई जाती है, जैसे लोहा अयस्क, स्वर्ण अयस्क आदि।

पर्यावरण और संरक्षण संबंधित मुख्य शब्द :

1. **प्राकृतिक संसाधन संकट (Natural Resource Crisis)**: वह स्थिति जब प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक उपयोग या अव्यवस्थित खपत, उनके समाप्त होने या खपत से जुड़े गंभीर पर्यावरणीय और सामाजिक संकटों का कारण बनता है।
2. **सतत विकास (Sustainable Development)**: ऐसे विकास की प्रक्रिया जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग इस प्रकार किया जाता है कि वे भविष्य में भी उपलब्ध रहें और पर्यावरणीय प्रभाव न्यूनतम हो।
3. **पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन (Environmental Impact Assessment - EIA)**: यह एक प्रक्रिया है, जिसमें किसी परियोजना या गतिविधि के पर्यावरणीय प्रभावों का मूल्यांकन किया जाता है, जैसे खनिज खनन परियोजनाओं में।
4. **ग्रीन हाउस गैसें (Greenhouse Gases)**: वे गैसें जो पृथ्वी के वातावरण में जलवायु परिवर्तन का कारण बनती हैं। इनमें कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, और नाइट्रस ऑक्साइड शामिल हैं।

3.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्राकृतिक संसाधन - भूमि और खनिज पर आधारित स्व-प्रगति परिक्षण (Self-Assessment Test) प्रश्नों के उत्तर निम्नलिखित हैं। ये प्रश्न भूमि और खनिज संसाधनों के महत्व, उपयोग, और संरक्षण से संबंधित हैं:

1. भूमि और खनिज संसाधनों का अर्थ क्या है?

उत्तर:

- **भूमि**: भूमि वह प्राकृतिक संसाधन है जिसका उपयोग कृषि, आवास, उद्योग, और अन्य विकासात्मक कार्यों के लिए किया जाता है। यह एक सीमित संसाधन है जिसका विवेकपूर्ण उपयोग आवश्यक है।

- **खनिज**: खनिज प्राकृतिक पदार्थ होते हैं जिन्हें पृथ्वी की सतह से खनन करके निकाला जाता है और उद्योगों, ऊर्जा उत्पादन, निर्माण, और अन्य उपयोगों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। उदाहरण के लिए कोयला, लोहा, बॉक्साइट, सोना आदि।

2. भारत में भूमि संसाधनों का वितरण कैसे है?

उत्तर:भारत में भूमि संसाधनों का वितरण असमान है। कुछ क्षेत्र कृषि के लिए उपयुक्त हैं, जैसे गंगा-यमुना का मैदान, जबकि अन्य क्षेत्रों में जलवायु और भौगोलिक स्थितियों के कारण भूमि का उपयोग सीमित है, जैसे थार मरुस्थल या हिमालयी क्षेत्र। इसके अतिरिक्त, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण भूमि का उपयोग तेजी से बदल रहा है, जिससे कृषि भूमि का हिस्सा घट रहा है।

3. खनिज संसाधनों के प्रकार और उनके उपयोग बताइए।

उत्तर:प्रमुख खनिज संसाधनों में निम्नलिखित शामिल हैं:

- **कोयला**: ऊर्जा उत्पादन के लिए, बिजली संयंत्रों और उद्योगों में इस्तेमाल।
- **लोहा अयस्क**: स्टील और अन्य निर्माण सामग्री के उत्पादन में।
- **बॉक्साइट**: एल्यूमिनियम निर्माण के लिए।
- **सोना**: आभूषण और वित्तीय लेन-देन के लिए।
- **जस्ता और तांबा**: इलेक्ट्रिकल और निर्माण उद्योगों में।
- **चूना पत्थर और सीमेंट**: निर्माण उद्योग के लिए।

इन खनिजों का उपयोग ऊर्जा उत्पादन, निर्माण, परिवहन, और विभिन्न औद्योगिक प्रक्रियाओं में होता है।

---

4. भूमि के उपयोग में सुधार के लिए कौन-कौन सी योजनाएँ लागू की जाती हैं?

उत्तर:

- **भूमि सुधार योजना**: भूमि का पुनर्वितरण, विशेष रूप से कृषि भूमि, ताकि छोटे और मंझले किसानों को भी भूमि का अधिकार मिल सके।
- **सिंचाई योजनाएँ**: कृषि भूमि के लिए सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराना ताकि असिंचित भूमि का उत्पादन बढ़ सके।

- **कृषि भूमि का विविधीकरण**: भूमि का उपयोग एक ही फसल के लिए न करके विभिन्न प्रकार की फसलों की खेती की योजना।
- **भूमि संरक्षण योजनाएँ**: भूमि की उर्वरकता और पर्यावरणीय स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए विभिन्न योजनाएँ, जैसे जल संरक्षण, मिट्टी के कटाव को रोकना, और सॉइल हेल्थ कार्ड योजना।

---

5. खनिज संसाधनों के खनन से पर्यावरणीय प्रभाव क्या होते हैं?

उत्तर:
खनिज खनन से निम्नलिखित पर्यावरणीय प्रभाव हो सकते हैं:

- **भूमि क्षरण (Soil Erosion)**: खनन कार्यों के कारण मिट्टी का कटाव और उर्वरता में कमी।
- **जलवायु परिवर्तन**: बड़े पैमाने पर कोयला और अन्य खनिजों का जलना ग्रीनहाउस गैसों को उत्पन्न करता है, जिससे जलवायु परिवर्तन को बढ़ावा मिलता है।
- **जैव विविधता पर असर**: खनन से जैव विविधता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जैसे जंगलों की कटाई और वन्य जीवन की क्षति।
- **जल स्रोतों का प्रदूषण**: खनन के दौरान निकलने वाले रसायनों के कारण जल स्रोतों का प्रदूषण।

---

6. खनिज संसाधनों का सतत उपयोग क्यों जरूरी है?

उत्तर:
खनिज संसाधनों का सतत उपयोग इसलिए जरूरी है ताकि:

- **भविष्य के लिए संसाधन उपलब्ध रहें**: अत्यधिक खनन से खनिज संसाधन समाप्त हो सकते हैं, जिससे भविष्य में इनका उपयोग संभव नहीं होगा।
- **पर्यावरणीय प्रभावों को कम किया जा सके**: खनन कार्यों से होने वाले पर्यावरणीय नुकसानों को कम करना।
- **आर्थिक समृद्धि बनी रहे**: सतत खनिज उपयोग से उद्योगों की आपूर्ति और विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है।

इसके लिए पुनर्चक्रण (recycling) और वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों का उपयोग बढ़ाना महत्वपूर्ण है।

---

7. भारत में प्रमुख खनिज संसाधन कौन से हैं और उनके खनन के प्रमुख क्षेत्र कौन से हैं?

उत्तर:

- **कोयला**: भारत में कोयला का प्रमुख खनन क्षेत्र झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश और पश्चिम बंगाल हैं।
- **लोहा अयस्क**: प्रमुख खनन क्षेत्र ओडिशा, झारखंड, कर्नाटका और छत्तीसगढ़ हैं।
- **बॉक्साइट**: प्रमुख खनन क्षेत्र ओडिशा, गुजरात और महाराष्ट्र हैं।
- **जस्ता और तांबा**: राजस्थान, उत्तर प्रदेश और गुजरात में खनन होता है।

इन खनिजों का मुख्य उपयोग ऊर्जा उत्पादन, निर्माण और विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में किया जाता है।

---

8. खनिज संसाधनों के संरक्षण के लिए क्या उपाय किए जा सकते हैं?

उत्तर:

- **पुनर्चक्रण (Recycling)**: खनिजों के पुनर्चक्रण को बढ़ावा देना, जैसे धातु और कागज का पुन: उपयोग।
- **वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत**: नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों (जैसे सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा) का उपयोग बढ़ाना ताकि खनिज संसाधनों पर निर्भरता कम हो।
- **प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग**: खनिजों का अति-उपयोग रोकने के लिए संसाधनों के संतुलित उपयोग को बढ़ावा देना।
- **खान प्रौद्योगिकी में सुधार**: खनन प्रक्रियाओं को पर्यावरणीय दृष्टिकोण से सुरक्षित बनाना और खनन के बाद पुनर्निर्माण कार्यों को बढ़ावा देना।

---

9. भूमि और खनिज संसाधनों के सही प्रबंधन के लिए कौन सी नीतियाँ बनाई जाती हैं?

उत्तर:
भारत सरकार विभिन्न नीतियों और योजनाओं के माध्यम से भूमि और खनिज संसाधनों का प्रबंधन करती है, जैसे:

- **राष्ट्रीय खनिज नीति**: खनिज संसाधनों के उचित प्रबंधन, उनके संरक्षण और सतत उपयोग के लिए बनाई गई नीति।
- **भूमि सुधार नीति**: भूमि के समान वितरण, छोटे किसानों को भूमि अधिकार प्रदान करने, और कृषि के विकास के लिए नीति।
- **प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन नीति**: यह नीति भूमि, जल और वन संसाधनों के प्रबंधन को ध्यान में रखकर सतत विकास को बढ़ावा देती है।

3.11 संदर्भ सूची

- भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण. (2019). भारत के खनिज संसाधन. नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग।
- सिंह, आर. बी. (2021). प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन और संरक्षण. दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- वर्मा, एस. (2022). भारत में भूमि उपयोग और खनिज नीति. जयपुर: रावत पब्लिकेशंस।
- पटनायक, बी. (2020). खनिज और भारतीय अर्थव्यवस्था. मुंबई: टाटा मैक्ग्रा हिल।
- भारत सरकार. (2023). राष्ट्रीय खनिज नीति रिपोर्ट. नई दिल्ली: खान मंत्रालय।

3.12 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न :

1.भारत में फसली-स्वरूप में योजनाकाल में हुये परिवर्तन की व्याख्या कीजिये ।

2. भूमि से आप क्या समझते हैं ? भारत में भू-उपयोग की आलोचनात्मक विवेचना कीजिये।

3. भारत में पाये जाने वाले प्रमुख खनिजों की विस्तार से व्याख्या कीजिये ।

4. भारत में औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक आधारभूत खनिज उपलब्ध हैं, व्याख्या कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में भू-उपयोग की स्थिति बताइये ।

2. भारत की प्रमुख फसलें कौन-कौन सी हैं?

3. भारत के फसली-स्वरूप की विशेषताएँ लिखिए ।

4. भारत सरकार की खनिज नीति लिखिए ।

5. भूमि की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए ।

6. भारत के प्रमुख खनिज कौन से हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारत की नवीन खनिज नीति किस वर्ष घोषित की गई ?

(अ) 1991

(ब) 1992

(स) 1993

(द) 1995

2. निम्न में से किसे प्रकृति का निःशुल्क उपहार माना जाता है ?

(अ) भूमि

(ब) श्रम

(स) पूँजी

(द) उपर्युक्त सभी

3. भारत के फसली स्वरूप की विशेषता कौन-सी है?

(अ) खाद्यान्न फसलों की अधिकता

(ब) व्यापारिक फसलों की ओर बढ़ता झुकाव

(स) फसली क्षेत्र में असन्तुलन

(द) उपर्युक्त सभी

उत्तर :- (1) स, (2) अ, (3) द।।

इकाई - 4
जल संसाधन

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 भारत में जल संसाधनों का उपयोग
4.4 बहुउद्देशीय नदी घाटी योजनाओं का महत्व
4.5 सार संक्षेप
4.6 मुख्य शब्द
4.7 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
4.8 संदर्भ सूची
4.9 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

जल जीवन के लिए आवश्यक सबसे महत्वपूर्ण संसाधन है। यह न केवल मानव जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करता है, बल्कि कृषि, उद्योग, परिवहन, ऊर्जा उत्पादन और पर्यावरणीय संतुलन के लिए भी आवश्यक है। जल का सही प्रबंधन और संरक्षण हमारे देश की समृद्धि और सतत विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। जल की उपलब्धता और इसके वितरण का पूरी दुनिया में असमान रूप से वितरण हुआ है, जिससे कुछ देशों और क्षेत्रों में पानी की भारी कमी का सामना किया जा रहा है, जबकि कुछ स्थानों पर जल की प्रचुरता है।

भारत, जो दुनिया के सबसे बड़े जल संसाधन वाले देशों में से एक है, फिर भी जल संकट से जूझ रहा है। यहाँ की बड़ी जनसंख्या, कृषि में पानी की अत्यधिक मांग, बढ़ते शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण जल संसाधनों पर अत्यधिक दबाव है। साथ ही, जल प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, और जलवायु आपदाएँ जैसे सूखा और बाढ़ जैसी समस्याओं ने जल संकट को और भी गहरा कर दिया है।

भारत में जल संसाधनों की उपलब्धता और प्रबंधन की समस्या का समाधान सतत जल प्रबंधन और जल संरक्षण की रणनीतियों पर आधारित है। इससे न केवल जल संकट से निपटा जा सकता है, बल्कि कृषि, उद्योग और घरेलू उपयोग के लिए जल की पर्याप्त आपूर्ति सुनिश्चित की जा सकती है। जल के कुशल और न्यायपूर्ण वितरण के लिए

सरकार, नागरिक समाज, और विभिन्न संस्थाओं द्वारा विभिन्न योजनाएँ और कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं।

जल संसाधन का महत्व

1. **कृषि**: कृषि भारत की अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा है और इसमें पानी की अत्यधिक आवश्यकता होती है। सिंचाई के बिना कृषि उत्पादन संभव नहीं है।
2. **औद्योगिक उपयोग**: जल का प्रयोग उद्योगों में भी अत्यधिक होता है, चाहे वह निर्माण, ऊर्जा उत्पादन, खाद्य प्रसंस्करण, या अन्य विनिर्माण उद्योग हो।
3. **पीने का पानी**: मनुष्यों और जानवरों के लिए पीने का पानी सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है।
4. **पर्यावरण संरक्षण**: जल पारिस्थितिकी तंत्र का एक अनिवार्य हिस्सा है और नदियाँ, झीलें, जलाशय आदि जैव विविधता को बनाए रखने में सहायक होते हैं।
5. **ऊर्जा उत्पादन**: जल संसाधनों से बिजली उत्पादन (जल विद्युत) में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिससे शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा की आपूर्ति की जाती है।

भारत में जल संसाधनों की स्थिति जटिल और चुनौतीपूर्ण है। भारत में कुल जल संसाधनों की उपलब्धता लगभग 4,000 क्यूबिक मीटर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष है, जो अन्य देशों के मुकाबले काफी कम है। इसके बावजूद, जल संसाधनों का वितरण असमान है। विशेषकर उत्तर भारत में जल संसाधन अधिक हैं, जबकि दक्षिण और पश्चिम भारत के कुछ हिस्सों में जल संकट अधिक महसूस होता है। इसके अलावा, जल प्रदूषण, बढ़ती जनसंख्या, और जलवायु परिवर्तन के कारण जल संकट और भी गंभीर हो गया है।

जल की उपलब्धता को सुनिश्चित करने के लिए इसके संरक्षण की आवश्यकता अत्यधिक बढ़ गई है। जल संसाधनों का अधिकतम उपयोग, पुनर्चक्रण (recycling), वर्षा जल संचयन (rainwater harvesting), और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से बचाव के उपायों को लागू करना आवश्यक है।

भारत में तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या और देश के आर्थिक विकास में जल-संसाधनों का महत्वपूर्ण स्थान है। कृषि, उद्योग, जहारानी आदि क्षेत्रों में भी जल संसाधनों का स्थान विशेष महत्व रखता है। पीने के लिये जल के अतिरिक्त, देश में जल का सबसे अधिक महत्व कृषि उत्पादन के लिये है। पानी के बिना कोई भी फसल पैदा नहीं की जा सकती। अतः भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जल संसाधनों का विशेष महत्व है। इसी कारण कहा

जाता है कि भारतीय कृषि मानसून का जुआ है। भारत में जल-संसाधनों के महत्व को निम्न प्रकार समझा जा सकता है:

(1) वर्षा की अनिश्चितता : देश का लगभग 60 प्रतिशत फसली क्षेत्र पूर्णतया वर्षा पर निर्भर है। यहाँ वर्षा भी अनिश्चित रहती है अर्थात वर्षा कब होगी इसके बारे में कोई नहीं कह सकता है। साथ ही वर्षा अनियमित या असामयिक है। कभी तो वर्षा अत्यधिक हो जाती है तो कभी अति न्यून । कभी पर्याप्त वर्षा होती है तो कभी वर्षा होती ही नहीं और इस प्रकार सूखा पड़ जाता है। अतः भारतीय कृषि को इस जुए से मुक्ति दिलाने के लिये यह आवश्यक है कि जल संसाधनों का विकास किया जाये ।

(2) वर्षा की मौसमी प्रकृति- भारत में अधिकांश वर्षा जुलाई से सितम्बर तक के बीच ही होती है, जिससे खरीफ की फसलों को तो मानसून के सहारे छोड़ जा सकता है, लेकिन शेष महीनों के लिये तो सिंचाई की व्यवस्था होनी चाहिये। यद्यपि रबी की फसल के लिये कुछ वर्षा होती है, लेकिन यह अपर्याप्त रहती है। अतः सघन कृषि कार्यक्रम सफल बनाने के लिये सिचाई सुविधाओं का विस्तार किया जाना आवश्यक है।

(3) विशेष फसलें - कुछ फसलें ऐसी हैं, जिनमें अधिक एवं नियमित पानी की आवश्यकता होती है, जैसे-पटसन, गन्ना, धान आदि। अतः इन फसलों से अधिकाधिक उत्पादन लेने के लिये आवश्यक है कि सिंचाई में क्रत्रिम साधनों का विस्तार किया जाये।

(4) विस्तृत खेती - देश में बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये अधिक कृषि उत्पादन होना आवश्यक है। इसके लिये यह आवश्यक है कि बेकार भूमि को खेती के काम में लाया जावे और इस प्रकार की भूमि के लिये सिंचाई व्यवस्था हो। इससे बेकार भूमि कृषि के काम में लायी जा सकेगी और इस प्रकार डीस्मरनिखेती का विस्तार होगा। एक नर कि

(5) वर्षा का असमान- वितरण भारत के सभी भागों में वर्षा एक समान नहीं होती है। कुछ भाग ऐसे होते हैं जहाँ वर्षा अत्यधिक होती है, जिसके फलस्वरूप बाढ़े आती हैं और कृषि करना असम्भव हो जाता है, जैसे मेघालय में चेरापूँजी का क्षेत्र। इसी प्रकार कुछ स्थान ऐसे हैं, जहाँ वर्षा बहुत थोड़ी मात्रा में ही होती है, जैसे-राजस्थान। इस प्रकार यहाँ भी कृषि करना लाभकारी नहीं होता क्योंकि उत्पत्ति बहुत ही थोड़ी होती है। इस बात की आवश्यकता है कि अत्यधिक वर्षा वाले स्थानों पर नहरें बनाकर पानी को कम वर्षा वाले स्थानों की ओर प्रवाहित कर सिंचाई सुविधाएँ प्रदान की जाएँ। इस प्रकार जल संसाधनों के उचित प्रबन्धन के द्वारा सभी क्षेत्रों को लाभ पहुँचाया जा सकता है।

(6) हरित क्रान्ति- की सफलता भारत हरित क्रान्ति के दौर से गुजर रहा है, जिसमें गहन खेती, बहु फसली खेती, उत्पादकता वृद्धि, आदि के कार्यक्रम अपनाये गये हैं। इन सभी कार्यक्रमों की सफलता के लिये जल संसाधनों का समुचित विकास एवं सदुपयोग आवश्यक है।

(7) कृषकों की आय- में वृद्धि यदि कृषकों को सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध हो जाती हैं तो उनका प्रति हेक्टेयर उत्पादन बढ़ता है, जिससे इनकी आय में वृद्धि होती है और वे पूँजीगत कृषि साधनों में धन लगाने में समर्थ हो जाते हैं तथा इनका रहन-सहन का स्तर भी ऊँचा उठता है। इससे देशा के आय एवं रोजगार के स्तर में सुधार होना सम्भव होगा।

(8) अकालों से छुटकारा- जल संसाधनों का महत्व इसलिये भी है कि ये देश को अकालों से बचाते हैं। अकाल सामान्यतया सूखा या अत्यधिक वर्षा के कारण ही पड़ते हैं। सिचाई सुविधाओं के विस्तार एवं उचित प्रबन्धन से अकाल की सम्भा वनाएँ समाप्त की जाती हैं।

(9) बाढ़ों पर नियन्त्रण- सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि होने से बाढ़ों पर भी नियन्त्रण किया जा सकता है। जिन स्थानों पर बाढ़ें आती है, वहाँ नहरों के द्वारा पानी को अन्य स्थानों पर प्रवाहित किया जा सकता है। इस प्रकार बाढ़ें भी नियन्त्रित हो सकती हैं और सिचाई सुविधाएँ भी बढ़ायी जा सकती है, जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।

(10) अन्य- जल स्रोतों के विकास से कृषि के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन सम्भव है। इससे न केवल कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी वरन् उद्योग एवं व्यापार में भी विस्तार होगा, जिससे रोजगार के अवसरों में विस्तार होगा। लम्बी नहरों में जल परिवहन का विकास सम्भव होता है, जिससे कम लागत में यातायात सुविधाएँ प्राप्त हो सकती हैं। संक्षेप में जल संसाधनों के विकास से सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को एक नई दिशा दी जा सकती है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे

- जल संसाधनों के महत्व और उनके प्रबंधन की आवश्यकता को समझ सकें।
- जल संसाधनों के वितरण और उनके संतुलित उपयोग की दिशा तय कर सकें।
- स्थायी जल संसाधन प्रबंधन के उपायों का विश्लेषण कर सकें।

4.3 भारत में जल संसाधनों का उपयोग (Utilisation of Water Resources in India)

भारत में जल संसाधनों का उपयोग मुख्यतः चार प्रकार से किया जाता है यथा (a) कुएँ एवं नल-कूप (b) तालाब, (c) नहरें और (d) बहुउद्देश्यीय परियोजनाएँ। इनकी विस्तृत व्याख्या निम्न प्रकार है :-

(a) कुएँ एवं नलकूप: भारत में कुओं का उपयोग पेय जल एवं सिंचाई के लिये अत्यन्त प्राचीनकाल से हो रहा है। कुएँ कई प्रकार के होते हैं जैसे-कच्चे कुएँ, पक्के कुएँ, बावड़ी आदि। इन कुओं से रहट, चरखे, डीजल चलित पम्पों आदि से किसान अपने खेतों में सिंचाई करते हैं। भारत में किसानों के पास छोटे-छोटे खेत हैं, इसलिये कुओं द्वारा सिंचाई इनके लिये बहुत ही लाभप्रद एवं उपयुक्त है। वे कुएँ अपने ही खेत में बनवा लेते हैं और उनसे आवश्यकतानुसार पानी निकालकर खेतों को देते रहते हैं। कुआँ वास्तव में किसान का अच्छा मित्र है। इससे कृषक पानी के मामले में आत्मनिर्भर हो जाता है और उसको मानसून पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। किसानों के लिये कुओं द्वारा सिंचाई उपयोगी रहती है क्योंकि कुएँ के पानी में बहुत से रसायन पदार्थ होते हैं जो भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि करते हैं। इन पदार्थों में क्लोराइड, सोडियम, नाइट्रेट व सल्फेट प्रमुख है। इस समय देश में लगभग 87 लाख कुएँ हैं, जो कुल सिंचित क्षेत्र के 21.4 प्रतिशत क्षेत्र की सिंचाई करते हैं। कुओं से गुजरात के कुल सिंचित क्षेत्र का 73 प्रतिशत, महाराष्ट्र का 60 प्रतिशत, राजस्थान का 49 प्रतिशत व मध्यप्रदेश (छत्तीसगढ़ सहित) का 37 प्रतिशत भाग सींचा जाता है। देश में कुओं द्वारा सिंचित क्षेत्र का लगभग आधा भाग इन चार राज्यों में स्थित है। इसी प्रकार उत्तरप्रदेश में भी कुओं से 23.2 प्रतिशत क्षेत्र की सिंचाई होती है।

वर्तमान में कुओं के स्थान पर नलकूप अधिक उपयोगी एवं लोकप्रिय हैं। ग्रामीण विद्युतिकरण ने नलकूपों को सिंचाई का एक महत्वपूर्ण साधन बना दिया है। इसमें भूमि के तल से बिजली की मोटर की सहायता से पानी निकाला जाता है। यह नलकूप 30 फीट से लेकर 400 फीट तक गहरे होते हैं तथा इनसे अधिक समय तक और अधिक मात्रा में जल मिलता है। विगत वर्षों में नलकूपों व ट्यूबवैलों की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। 1951 में 2,500 सरकारी नलकूप थे, लेकिन आज 1 करोड़ 21 लाख से अधिक विद्युत चलने वाले व 52 लाख डीजल व मिट्टी के तेल आदि से चलने वाले पम्प सेट हैं।

इस समय ट्यूबवैल 142.1 लाख हैक्टेयर भूमि की सिंचाई कर रहे हैं, जो कुल सिंचित क्षेत्र का 31.6 प्रतिशत बैठता है। पंजाब में नलकूपों का विशेष स्थान है। यहाँ पर कुल

सिंचित क्षेत्र का 44 प्रतिशत नलकूपों द्वारा सिंचित किया जाता है। देशा में नलकूपों से जितना भाग सिंचित किया जाता है, उसका 88.3 प्रतिशत उत्तरप्रदेश, पंजाब व हरियाणा में है।

(b) तालाब :- पेयजल एवं सिंचाई के लिये तालाबों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। तालाबों से आशय उन गड्डों से है जो या तो मानव द्वारा कृत्रिम तरीके से बनाये गये हैं या प्रकृति के द्वारा ही उनको गड्डों के रूप में प्रदान किया गया है, जिसमें वर्षा के मौसम में वर्षा का पानी भर जाता है। तालाबों का आकार छोटे नालों या पोखरों से लेकर बड़ी-बड़ी झीलों तक विभिन्न प्रकार का होता है। तालाबों द्वारा सिचाई करने वाले राज्यों में तमिलनाडु, आन्ध्र कर्नाटक, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल प्रमुख हैं। भारत में कुल सिंचित क्षेत्र का 6.5 प्रतिशत तालाबों से ही सींचा जाता है। (ट)

तालाबों से सिंचाई करने से अनेक लाभ होते हैं जैसे-

(1) इसमें वर्षा के पानी का उचित उपयोग हो जाता है और वह बेकार नहीं जाने पाता ।

(2) पठारी भागों में तालाब बहुत ही उपयुक्त है, क्योंकि वहाँ पर कुएँ खोदना सम्भव नहीं होता

सुझाबों में मछलियाँ होती हैं। इन्हें पकड़ने का कार्य भी किया जा सकता है और खाने के लिये खाद्य पदार्थ के रूप में लाया जा सकता है। इस प्रकार इनसे कुछ सीमा तक खाद्य समस्या के हल करने में सहायता मिलती है। तालाबों द्वारा सिंचाई तो वर्षा पर निर्भर है। जब कभी वर्षा नहीं होती या कम होती है तो तालाब सूख जाते हैं और इस प्रकार सिंचाई का कार्य नहीं हो सकता है।

(c) नहरें :- बड़े बाँधों के निर्माण ने नहरों को देश में लोकप्रिय बनाया है। वर्तमान में नहरों का सिंचाई में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। इनके द्वारा 163.9 लाख हैक्टेयर भूमि की सिंचाई की जाती है जो कुल सिंचित क्षेत्र का 34.2 प्रतिशत है। इस समय देश में 1.5 लाख किलोमीटर लम्बी नहरें हैं, जिनमें 200 करोड़ रुपये के लगभग पूँजी लगी हुई है। विश्व के किसी भी देश में इतनी लम्बी नहर प्रणाली नहीं है। नहरों द्वारा सिंचाई में मुख्य रूप से जम्मू एवं कश्मीर, पश्चिमी बंगाल, असम, केरल, मध्यप्रदेश, पंजाब, राजस्थान, कर्नाटक, हरियाणा, बिहार, तमिलनाडु एवं उत्तरप्रदेश मुख्य हैं, लेकिन इसमें उत्तरप्रदेश का स्थान प्रथम है जहाँ 25 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में नहरों द्वारा सिंचाई की जाती है।

(1) बारहमासी नहरें (Perennial Canals)- यह वे नहरें हैं जो पूरे वर्षा बहती रहती हैं और इनको नदियों पर बाँध बनाकर निकाला गया है। इन नहरों की लम्बाई में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् काफी वृद्धि हुई है।कक सिग्ी

(2) बरसाती नहरें (Inundated Canals) - ये वे नहरें हैं जो केवल वर्षा ऋतु में ही बहती हैं। इनको मुख्य रूप से इस उददेश्य से बनाया गया है कि नदियों की बाढ़ का पानी इनके द्वारा बह सके और नदियों में बाढ़ का वेग कम हो सके।

(3) स्टोरेज वर्क्स नहरें (Storage Works Canals) यह नहरें पहाड़ी घाटियों में बाँध बनाकर वर्षा का पानी एकत्रित करके निकाली जाती है। इन नहरों का उपयोग तालाबों की तरह ही किया जाता है।

नहरों द्वारा सिंचाई से अनेक लाभ हैं यथा-

(i) नहरों के किनारें वृक्षारोपण करके भूमिक्षरण को रोक सकते हैं।

(ii) नहरों को आन्तरिक परिवहन के साधन के रूप में भी काम में लाया जा सकता है।

(ii) बाढ़ों के समय नदियों के पानी को नहरों में काटा जा सकता है और इस प्रकार से उत्पन्न संकट को टाला जा सकता है।

(iv) नहरों के पानी में अनेक रासायनिक पदार्थ होते हैं, जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है।

(v) नहरों द्वारा खेतों को पानी देना सरल व सस्ता है। (v)

(vi) भारत की अधिकांश नहरें बारहमासी हैं, जिनमें हर समय पानी रहता है इससे कृषक को लाभ होता है और वह अपने खेत की आवश्यकता के समय पानी की व्यवस्था कर सकता है।

(d) बहुउद्देशीय नदी घाटी योजनाएँ:- स्वतन्त्रता के बाद देश में जल स्रोतों के उपयोग के उद्देश्य से अनेक बहुउद्देशीय बाँध बनाये गये हैं। इन परियोजनाओं में नदियों के जल को रोककर बाँध बनाये जाते हैं और रोके गये जल का उपयोग अनेक कार्यों में किया जाता है। इसी कारण इन्हें बहुउद्देश्यीय योजनाएँ कहा जाता है। इन योजनाओं के प्रमुख उद्देश्य ये हैं-

(i) निर्मित जलाशयों से नहरें बनाना, जिससे कि सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि हो सके,

(ii) बाढ़ नियन्त्रण किया जा सके,

(iii) भूमि का कटाव नियंत्रित किया जा सके,

(iv) नहरों को परिवहन साधन के रूप में विकसित किया जा सके,

(v) शहरों व ग्रामों को पीने का पानी उपलब्ध किया जा सके,

(vi) बड़े-बड़े जलाशयों व झीलों में मछली पालन कार्यक्रम का विकास किया जा सके

vii) नहरों व जलाशयों के आस-पास पर्यटन स्थल बनाये जा सकें व (

(viii) नदियों व जलाशयों का पानी गिराकर बिजली बनायी जा सके।

4.4 बहुउद्देशीय नदी घाटी योजनाओं का महत्व (Importance of Multi-Purpose River Valley Project)

(1) सिंचाई - बहुउद्देशीय नदी घाटी योजनाओं में सबसे महत्वपूर्ण बात सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि है। इससे सिंचित क्षेत्र में वृद्धि होती है, जिसके परिणामस्वरूप मानसून पर निर्भरता में कमी होती है, कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है तथा खाद्य समस्या हल होती है।

(2) भूमि क्षरण एवं बाढ़ नियन्त्रण- देश की अनेक नदियों में प्रतिवर्ष बाढ़ आती है जैसे - कोसी, गंगा, ब्रह्मपुत्र व महानदी आदि। इसके परिणामस्वरूप जन-धन की हानि के साथ फसलों की भी हानि होती है। इन नदी-घाटी योजनाओं से इस पर नियन्त्रण रखा जा सकता है और भूमि क्षरण को रोका जा सकता है।

(3) आन्तरिक जल परिवहन का विकास- इन योजनाओं से देश के अन्दर नहरों का जाल बिछाकर जल परिवहन का विकास किया जा सकता है जो अन्य साधनों से सस्ता पड़ता है।

(4) जल विद्युत शक्ति का विकास-नदी घाटी योजनाओं को लागू कर जल-विद्युत शक्ति पैदा की जा सकती है जिसके प्रति यूनिट लागत बहुत ही सस्ती पड़ती है। जल-विद्युत के पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने से उद्योगों का विकास किया जा सकता है।

(5) रोजगार वृद्धि - बहुद्देशीय योजनाओं के अन्तर्गत सिंचाई, नहरों के निर्माण, बाढ़ नियन्त्रण, बांध व जलाशय निर्माण, मत्स्य पालन, विद्युत निर्माण, औद्योगीकरण आदि होने से लाखों व्यक्तियों को इसमें रोजगार मिल जाता है। इस प्रकार रोजगार सुविधाओं में वृद्धि होती है।

(6) पर्यटकों को बढ़ावा - बहुउद्देशीय नदी घाटी योजनाओं के अन्तर्गत नदियों, नहरों व जलाशयों के आस-पास सुन्दर व मनोरंजक स्थान बनाये जाते हैं, जिससे पर्यटकों को आकर्षण होता है और इनकी संख्या में वृद्धि होती है। इससे विदेशी विनिमय की आय में भी वृद्धि होती है।

(7) उद्योग एवं व्यापार का विकास- बहु उद्देशीय योजनाओं से उद्योगों का विकास होता है। नये-नये उद्योग स्थापित होते हैं क्योंकि कृषि उत्पादन बढ़ने से उन्हें कच्चा माल मिल जाता है। साथ ही विद्युत शक्ति का भी विकास होने से उन्हें शक्ति मिल जाती है।

इन सबसे व्यापार की गतिविधियाँ बढ़ जाती हैं। इस प्रकार व्यापार एवं सेवा क्षेत्र का भी विकास होता है।

(8) पेय जल की पूर्ति- इन योजनाओं के अन्तर्गत बड़े-बड़े जलाशय व बाँध बनाये जाते हैं, जिनमें काफी मात्रा में पानी रहता है। इस पानी को शहरी क्षेत्रों व ग्रामीण क्षेत्रों की जनता को पीने के लिये उपलब्ध किया जा सकता है।

(9) मत्स्य-पालन उद्योग- इसके अन्तर्गत बने जलाशयों में मत्स्य पालन के उद्योग का विकास किया जा सकता है और इस प्रकार यह योजनाएँ इस उद्देश्य से भी लाभकारी हो सकती हैं।

4.4.1 **पंचवर्षीय योजनाओं में जल संसाधनों का विकास**

योजनाकाल में जल-संसाधनों के विकास एवं बाढ़ नियंत्रण की उपयोगिता को स्वीकार करते हुये उच्च प्राथमिकता प्रदान की। योजना आयोग ने जल संसाधन के विकास की योजनाओं को निम्न तीन वर्गों में विभक्त किया है

(a) वृहत सिंचाई योजनाएँ (Major Irrigation Projects):- इस वर्ग में उन सिंचाई योजनाओं और कार्यक्रमों को सम्मिलित किया जाता है, जिनके अन्तर्गत 10 हजार हैक्टेयर से अधिक कृषि योग्य क्षेत्र (b) मध्यम सिंचाई योजनाएँ (Medium Irrigation Projects) :- इस वर्ग में उन सिंचाई योजनाओं को सम्मिलित किया जाता है, जिनके अन्तर्गत 2,000 हेक्टर से अधिक किन्तु 10,000 हैक्टेयर से कम कृषि क्षेत्र आता है। ये योजनाएँ मध्यम आकार की होती हैं। (c) लघु सिंचाई योजनाएँ (Small Irrigation Projects): इस वर्ग में उन सिंचाई योजनाओं को सम्मिलित किया जाता है, जिनके अन्तर्गत कृषि योग्य क्षेत्र 2,000 हैक्टेयर से कम हो। देश की प्रथम योजना के समय (1950-51) केवल 2.26 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध थी, जो 2006-07 में बढ़कर 10.28 करोड़ हैक्टेयर हो गयी अर्थात लगभग चार गुनी वृद्धि हुई। वर्तमान में कुल कृषि क्षेत्र के 39 प्रतिशत भाग पर सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध हैं, जबकि यह प्रतिशत सन् 1950-51 में केवल 17.6 था। विभिन्न परियोजनाओं के अन्तर्गत सिंचाई क्षमता में हुई वृद्धि को निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका

भारत में सिंचाई क्षमता

(करोड़ हैक्टेयर में)

वर्ष	वृहत एवं मध्यम सिंचाई योजनाओं के अन्तर्गत	लघु सिंचाई योजनाओं के अन्तर्गत	कुल योग
1950-51	0.97	1.29	2.26
1970-71	1.73	2.07	3.80
1990-91	2.60	4.48	7.08
1999-200	3.05	5.42	8.47
2006-07	4.24	6.04	10.28

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जहाँ वर्ष 1950-51 में केवल 2.26 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध थीं, बढ़कर वर्ष 2006-07 में 10.28 करोड़ हैक्टेयर हो गयीं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि देश में उपलब्ध जल-संसाधनों से कुल 13.99 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र को सिंचाई सुवधाएँ उपलब्ध कराने की क्षमता है, जबकि 2007 तक केवल 10.27 करोड़ हेक्टर या 73 प्रतिशत का ही विकास करना सम्भव हुआ है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि योजना आयोग के अनुसार सिंचित भूमि पर असिंचित भूमि की तुलना में दुगुना उत्पादन होता है। अतः देश के विकास के लिये यह आवश्यक है कि उपलब्ध समुचित सिंचाई क्षमता का शीघ्र विकास किया जावे ।

4.5 सार संक्षेप

जल संसाधन पृथ्वी पर जीवन के लिए आवश्यक प्राकृतिक संसाधन हैं, जो मनुष्यों, जानवरों, पौधों, और समग्र पारिस्थितिकी तंत्र के अस्तित्व के लिए अनिवार्य हैं। जल का प्रभावी प्रबंधन, संरक्षण और सही उपयोग न केवल जीवन की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए, बल्कि कृषि, उद्योग, ऊर्जा उत्पादन, परिवहन, और पर्यावरणीय संतुलन के लिए भी आवश्यक है।

भारत में जल संसाधनों का महत्व अत्यधिक है, क्योंकि यह देश कृषि-प्रधान है और यहाँ की बड़ी जनसंख्या के लिए जल आवश्यक है। हालांकि, भारत में जल संकट गंभीर समस्या बन गई है। यहाँ जलवायु परिवर्तन, बढ़ती जनसंख्या, प्रदूषण, और जलवायु आपदाएँ जैसे सूखा और बाढ़ जैसी समस्याएँ जल संसाधनों पर दबाव डाल रही हैं।

भारत में कुल जल संसाधनों की उपलब्धता लगभग 4,000 क्यूबिक मीटर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष है, जो अन्य देशों की तुलना में कम है। इसके बावजूद, जल संसाधनों का वितरण असमान है—उत्तर भारत में जल उपलब्धता अधिक है, जबकि दक्षिण और पश्चिम भारत में जल संकट अधिक है। नदियों, जलाशयों, और अन्य जल स्रोतों का अत्यधिक उपयोग और प्रदूषण जल संकट को और बढ़ा रहे हैं।

जल संसाधनों के प्रमुख उपयोग:

1. **कृषि:** जल संसाधनों का सबसे बड़ा उपयोग कृषि में होता है। सिंचाई के बिना कृषि उत्पादन संभव नहीं है।
2. **औद्योगिक उपयोग:** उद्योगों में जल का उपयोग प्रक्रिया, उत्पादन और कूलिंग के लिए किया जाता है।
3. **पीने का पानी:** घरेलू उपयोग और पीने के लिए जल की आवश्यकता होती है।
4. **ऊर्जा उत्पादन:** जल विद्युत, ऊर्जा उत्पादन का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।
5. **पर्यावरणीय संतुलन:** नदियाँ, जलाशय, और झीलें पारिस्थितिकी तंत्र को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

जल संकट के कारण:

1. **वृद्धि जनसंख्या:** बढ़ती जनसंख्या के साथ जल की मांग भी बढ़ रही है, जिससे जल संकट और गंभीर हो रहा है।
2. **जलवायु परिवर्तन:** जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा, बाढ़, और अन्य जलवायु आपदाएँ बढ़ी हैं, जो जल संसाधनों पर प्रभाव डालती हैं।
3. **जल प्रदूषण:** उद्योगों और कृषि रसायनों के कारण जल स्रोतों का प्रदूषण बढ़ रहा है, जिससे जल की गुणवत्ता पर असर पड़ता है।
4. **अत्यधिक पानी का उपयोग:** जल संसाधनों का अत्यधिक और अव्यवस्थित उपयोग जल संकट की स्थिति को बढ़ाता है।

जल संसाधन प्रबंधन के उपाय:

1. **वर्षा जल संचयन (Rainwater Harvesting):** वर्षा जल को एकत्र करके उसका उपयोग करना एक प्रमुख उपाय है।
2. **जल पुनर्चक्रण (Water Recycling):** जल के पुनः उपयोग से जल की बचत की जा सकती है।

3. **सिंचाई प्रणाली का सुधार:** जल की अधिकतम बचत के लिए सिंचाई प्रणाली को आधुनिक और कुशल बनाना।
4. **जल उपयोग का नियंत्रित वितरण:** जल का समुचित वितरण सुनिश्चित करना ताकि सभी वर्गों और क्षेत्रों को पर्याप्त जल मिल सके।
5. **जल संरक्षण जागरूकता:** समाज में जल संरक्षण के प्रति जागरूकता फैलाना और जल प्रबंधन योजनाओं का कार्यान्वयन करना।

4.6 मुख्य शब्द

1. **जल संसाधन (Water Resources)**: पृथ्वी पर जल के सभी स्रोत जैसे नदियाँ, झीलें, जलाशय, भूमिगत जल आदि, जो मानव जीवन, कृषि, उद्योग और पारिस्थितिकी तंत्र के लिए उपयोगी होते हैं।
2. **वर्षा जल संचयन (Rainwater Harvesting)**: वर्षा के पानी को एकत्रित करना और उसे विभिन्न उपयोगों के लिए संग्रहित करना, ताकि जल की उपलब्धता बढ़ाई जा सके।
3. **जल पुनर्चक्रण (Water Recycling)**: उपयोग किए गए जल को फिर से साफ कर उपयोग में लाना, ताकि जल का अपव्यय रोका जा सके और उसके पुनः उपयोग से संसाधनों का संरक्षण किया जा सके।
4. **सिंचाई (Irrigation)**: कृषि भूमि में जल प्रदान करने की प्रक्रिया, ताकि फसलों की वृद्धि और उत्पादन सुनिश्चित किया जा सके।
5. **जलवायु परिवर्तन (Climate Change)**: मौसम और जलवायु की लंबी अवधि में होने वाली असामान्य परिवर्तन, जो जल संसाधनों पर प्रभाव डालते हैं, जैसे सूखा और बाढ़ की घटनाएँ।
6. **जल प्रदूषण (Water Pollution)**: जल स्रोतों का दूषित होना, जिसके कारण जल की गुणवत्ता खराब होती है और यह पीने या अन्य उपयोग के लिए अनुपयुक्त हो जाता है।
7. **सतही जल (Surface Water)**: नदियाँ, झीलें, तालाब और जलाशय जैसे जल स्रोत, जो पृथ्वी की सतह पर स्थित होते हैं और आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं।

8. **भूमिगत जल** **(Groundwater)**: वह जल जो पृथ्वी की सतह के नीचे स्थित जलाशयों और जलमग्न परतों में होता है, जिसे कुएँ, हैंडपंप आदि से प्राप्त किया जा सकता है।
9. **जल संकट** **(Water Crisis)**: पानी की अत्यधिक कमी या खराब गुणवत्ता के कारण जल का अभाव होना, जो विभिन्न कारणों से उत्पन्न हो सकता है जैसे बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन और जल प्रदूषण।
10. **जल संरक्षण** **(Water Conservation)**: जल की बचत और उसका सही तरीके से उपयोग करना, ताकि जल संकट से न जूझना पड़े और जल संसाधनों का संतुलित उपयोग सुनिश्चित हो सके।
11. **सतत जल प्रबंधन** **(Sustainable Water Management)**: जल संसाधनों का ऐसा प्रबंधन, जो वर्तमान और भविष्य में जल की उपलब्धता सुनिश्चित करता है, और इसके लिए प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाता है।
12. **वाटर टेबल** **(Water Table)**: भूमिगत जल का वह स्तर, जहाँ तक जल भूमि में भर चुका होता है। यह स्तर मौसम, जलवायु और जल के उपयोग के अनुसार बदलता रहता है।
13. **जलाशय** **(Reservoir)**: एक कृत्रिम जल निकाय जो जल संग्रह करने के लिए बनाया जाता है, जिसे सिंचाई, पीने का पानी, जल विद्युत उत्पादन आदि के लिए उपयोग किया जाता है।
14. **नदी बेसिन** **(River Basin)**: वह क्षेत्र जिसमें एक प्रमुख नदी और उसकी सहायक नदियाँ शामिल होती हैं। सभी जल स्रोत इस बेसिन में बहते हैं।
15. **जल निकासी** **(Water Drainage)**: जल का प्रवाह और उसके संग्रहण के लिए बनाए गए निकासी मार्ग, जिनसे जल प्रदूषण या जलभराव से बचाव किया जाता है।
16. **जल विद्युत** **(Hydropower)**: जल से बिजली उत्पादन की प्रक्रिया, जिसमें जल के प्रवाह का उपयोग करके टरबाइन घुमाए जाते हैं और विद्युत ऊर्जा उत्पन्न होती है।
17. **वाटरशेड** **(Watershed)**: वह भू-क्षेत्र जो एक नदी बेसिन में बहने वाले जल को संकलित करता है और उसे नदी में प्रवाहित करता है।

18. **जल पुनर्चक्रण संयंत्र (Water Treatment Plant)**: वह स्थान जहाँ जल को शुद्ध करने और पीने योग्य बनाने की प्रक्रिया की जाती है।
19. **जलीय पारिस्थितिकी तंत्र (Aquatic Ecosystem)**: वह पारिस्थितिकी तंत्र जो जल में पाई जाने वाली जीवन-शैलियों (जैसे मछलियाँ, पौधे, जलजीव आदि) को समर्थन प्रदान करता है।
20. **सिंचाई नेटवर्क (Irrigation Network)**: वह प्रणाली जो जल स्रोतों से कृषि भूमि तक पानी पहुँचाने के लिए बनाई जाती है, इसमें नहरें, पाइपलाइन और अन्य जल वितरण संरचनाएँ शामिल होती हैं।

4.7 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1: जल संसाधनों का क्या महत्व है?

उत्तर: जल संसाधनों का महत्व अत्यधिक है क्योंकि यह जीवन के सभी पहलुओं के लिए आवश्यक है।

- **कृषि में** जल का उपयोग फसलों की सिंचाई के लिए किया जाता है, जो देश की खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करता है।
- **उद्योगों में** जल का उपयोग उत्पादन प्रक्रिया, कूलिंग, और अन्य कार्यों में किया जाता है।
- **पीने का पानी** जीवन की सबसे बुनियादी आवश्यकता है।
- **ऊर्जा उत्पादन** में जल का उपयोग जल विद्युत उत्पादन में होता है।
- **पर्यावरणीय संतुलन** बनाए रखने के लिए नदियाँ, झीलें और जलाशय महत्वपूर्ण हैं, जो पारिस्थितिकी तंत्र को सपोर्ट करते हैं।

प्रश्न 2: भारत में जल संसाधनों की स्थिति क्या है?

उत्तर: भारत में जल संसाधनों की उपलब्धता और वितरण असमान है।

- भारत में कुल जल संसाधनों की उपलब्धता लगभग 4,000 क्यूबिक मीटर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष है, जो अन्य देशों की तुलना में कम है।
- **उत्तर भारत** में जल संसाधन अधिक हैं, लेकिन **दक्षिण और पश्चिम भारत** में जल संकट अधिक है।
- **जलवायु परिवर्तन**, **जल प्रदूषण**, और **अत्यधिक जल उपयोग** जैसे कारक जल संकट को बढ़ा रहे हैं।

- जल संकट विशेष रूप से जलवायु परिवर्तन, बढ़ती जनसंख्या और असमान वितरण के कारण उत्पन्न हो रहा है।

प्रश्न 3: जल संकट के प्रमुख कारण क्या हैं?
उत्तर: जल संकट के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं:

1. **वृद्धि जनसंख्या:** बढ़ती जनसंख्या के कारण जल की मांग बढ़ रही है।
2. **जलवायु परिवर्तन:** सूखा, बाढ़ और जलवायु अस्थिरता के कारण जल संसाधनों पर दबाव बढ़ता है।
3. **जल प्रदूषण:** औद्योगिक प्रदूषण, कृषि रसायन, और अपशिष्ट जल के कारण जल स्रोतों का प्रदूषण बढ़ रहा है।
4. **अत्यधिक जल उपयोग:** जल का अत्यधिक और अव्यवस्थित उपयोग जल संकट का कारण बनता है।
5. **वर्षा के पैटर्न में बदलाव:** जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा के पैटर्न में बदलाव से जल की उपलब्धता प्रभावित हो रही है।

प्रश्न 4: जल के प्रभावी प्रबंधन के उपाय क्या हैं?
उत्तर: जल के प्रभावी प्रबंधन के निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं:

1. **वर्षा जल संचयन (Rainwater Harvesting):** वर्षा के पानी को संग्रहित कर उसका उपयोग किया जा सकता है।
2. **जल पुनर्चक्रण (Water Recycling):** उपयोग किए गए जल को पुनः साफ करके फिर से इस्तेमाल में लाना।
3. **सिंचाई प्रणालियों का सुधार:** सिंचाई प्रणालियों को सुधार कर पानी की बचत की जा सकती है, जैसे ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई।
4. **जल संरक्षण जागरूकता:** लोगों को जल बचाने के लिए जागरूक करना और जल के अपव्यय को रोकना।
5. **जल प्रदूषण नियंत्रण:** जल प्रदूषण को रोकने के लिए उद्योगों से प्रदूषण नियंत्रित करना और जल स्रोतों की सफाई करना।
6. **जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से बचाव:** जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पन्न जल संकट से निपटने के लिए रणनीतियाँ अपनाना।

प्रश्न 5: जल संरक्षण के उपायों का क्या महत्व है?
उत्तर: जल संरक्षण के उपायों का महत्व निम्नलिखित है:

1. **जल की कमी से बचाव:** जल संरक्षण से जल की कमी को दूर किया जा सकता है और भविष्य में जल संकट से बचा जा सकता है।
2. **जल गुणवत्ता में सुधार:** जल को बचाने से प्रदूषण की समस्या को कम किया जा सकता है।
3. **आर्थिक बचत:** जल का प्रभावी उपयोग और बचत करने से आर्थिक दृष्टिकोण से भी लाभ होता है, जैसे जल उपचार और वितरण में खर्चों में कमी।
4. **पर्यावरण संरक्षण:** जल के संरक्षण से पारिस्थितिकी तंत्र को भी सहारा मिलता है, क्योंकि जल स्रोतों की सुरक्षा और संरक्षण से जैव विविधता बनाए रखने में मदद मिलती है।
5. **संसाधनों का टिकाऊ उपयोग:** जल के संतुलित उपयोग से प्राकृतिक संसाधनों का टिकाऊ उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है।

प्रश्न 6: भारत में जल प्रबंधन के लिए कौन सी योजनाएँ लागू की गई हैं?
उत्तर: भारत में जल प्रबंधन के लिए कई योजनाएँ और कार्यक्रम लागू किए गए हैं, जैसे:

1. **नमामि गंगे योजना (Namami Gange Programme):** गंगा नदी की सफाई और जल स्रोतों के संरक्षण के लिए यह योजना शुरू की गई है।
2. **राष्ट्रीय जल मिशन (National Water Mission):** जल संसाधनों के संरक्षण और प्रबंधन के लिए यह योजना लागू की गई है।
3. **प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (Pradhan Mantri Krishi Sinchayee Yojana):** कृषि के लिए जल का कुशल उपयोग सुनिश्चित करने के उद्देश्य से यह योजना बनाई गई है।
4. **वर्षा जल संचयन योजना (Rainwater Harvesting Scheme):** वर्षा जल संचयन को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा योजनाएँ लागू की गई हैं।
5. **जल संरक्षण अभियान:** राज्य और केंद्र सरकारों द्वारा जल संरक्षण के लिए जागरूकता अभियान चलाए जाते हैं।

प्रश्न 7: जल प्रदूषण को कम करने के उपाय क्या हैं?
उत्तर: जल प्रदूषण को कम करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं:

1. **औद्योगिक अपशिष्टों का उपचार:** उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्टों को जल में छोड़े जाने से पहले उपचारित करना।
2. **कृषि रसायनों का विवेकपूर्ण उपयोग:** कृषि में रसायनों और कीटनाशकों के प्रयोग को नियंत्रित करना ताकि जल स्रोतों का प्रदूषण न हो।
3. **नदी और झीलों की सफाई:** नदियों और झीलों में प्रदूषण को कम करने के लिए सफाई अभियान चलाना और अवशेषों का निस्तारण करना।
4. **जल पुनर्चक्रण:** जल पुनर्चक्रण के माध्यम से जल के प्रदूषण को कम किया जा सकता है और इसके पुनः उपयोग से प्रदूषण स्तर में कमी लाई जा सकती है।

4.8 संदर्भ सूची

- सिंह, आर. बी. (2020). जल संसाधन प्रबंधन: सिद्धांत और अभ्यास. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- मिश्रा, पी. के. (2019). भारत में जल संकट और समाधान. नई दिल्ली: रॉउटलेज।
- वर्मा, एस. पी. (2022). जल संरक्षण और सतत विकास. चंडीगढ़: पियरसन पब्लिकेशन।
- शर्मा, आर. के. (2021). भारत के जल संसाधन: चुनौतियाँ और अवसर. नोएडा: सेज पब्लिकेशन।
- गुप्ता, ए. (2018). जल विज्ञान और पर्यावरण प्रबंधन. मुंबई: मैक्ग्रा-हिल।

4.9 अभ्यास प्रश्न

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारत में जल संसाधनों के महत्व की विवेचना कीजिये। योजनाकाल में इन संसाधनों का कितना विकास हुआ है ? व्याख्या कीजिये ।

2. राष्ट्रीय जल संसाधन नीति पर एक टिप्पणी लिखिये ।

3. भारत में योजनाकाल में सिंचाई साधनों की प्रगति पर एक लेख लिखिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारत के जल संसाधन कौन से है ?

2. बहु-उद्देशीय नदी-घाटी योजनाओं का महत्व बताइये ।

3. राष्ट्रीय जल संसाधन नीति को संक्षेप में लिखिए ।

4. नहरों द्वारा सिंचाई से क्या लाभ हैं ?

5. भारत में कुएँ एवं नलकूप पर संक्षिप्त टीप लिखिए ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारत में जल संसाधनों की आवश्यकता निम्न में से किस कारण से है ?

(अ) वर्षा की अनिश्चितता 2002

(ब) वर्षा की मौसमी प्रकृति

(स) वर्षा का असमान वितरण

(द) उपर्युक्त सभी ।

2. भारत में वृहत सिंचाई परियोजनाओं में शामिल होतीं है -

(अ) 10 हजार हेक्टेयर से अधिक कृषि योग्य क्षेत्रफल

(ब) 5 से 10 हजार हेक्टेयर तक कृषि योग्य क्षेत्रफल

(स) 2 से 5 हजार हेक्टेयर तक कृषि योग्य क्षेत्रफल

(द) 1 से 2 हजार हेक्टेयर तक कृषि योग्य क्षेत्रफल ।

3. 2 हजार से 10 हजार हेक्टेयर कृषि योग्य क्षेत्रफल वाली सिंचाई परियोजना कहलाती है

(अ) वृहत सिचाई परियोजना किस

(ब) मध्यम सिंचाई परियोजना

(स) लघु सिंचाई परियोजना

(द) उपर्युक्त कोई नहीं।

उत्तर :- (1) द, (2) अ, (3) ब ।

ब्लॉक - II

इकाई- 5

वन संसाधन

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 वनों का वर्गीकरण
5.4 वनों का महत्व
5.5 राष्ट्रीय वन-नीति
5.6 पंचवर्षीय योजनाओं में वन-विकास कार्यक्रम
5.7 युक्तियुक्त वन-संसाधन विकास के लिये सुझाव
5.8 मुख्य शब्द
5.9 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
5.10 संदर्भ सूची
5.11 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

वन संसाधन पृथ्वी के सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधनों में से एक हैं, जो मानव जीवन और पारिस्थितिकी तंत्र के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। इन संसाधनों में पेड़-पौधे, वन्य जीवन, जलवायु, भूमि, खनिज, और अन्य जैविक और अजैविक घटक शामिल हैं। वन न केवल हमारे जीवन की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने में मदद करते हैं, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

भारत, जो जैव विविधता के मामले में दुनिया के प्रमुख देशों में शामिल है, में विशाल वन क्षेत्र है। भारतीय वन क्षेत्र न केवल प्राकृतिक संसाधनों का एक प्रमुख स्रोत हैं, बल्कि यह देश की जलवायु, जल संरक्षण, मिट्टी का संरक्षण और कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषण में भी महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। इसके अलावा, वन्य जीवन, जैसे पशु, पक्षी, और अन्य जीवों के लिए वन एक प्राकृतिक आवास प्रदान करते हैं, जो जैव विविधता के संरक्षण में मदद करते हैं।

भारत में वन संसाधनों का उपयोग विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जाता है। इसमें लकड़ी, ईंधन, फाइबर, औषधियां, और कच्चे माल के रूप में उपयोगी वन उत्पाद शामिल हैं।

इसके अलावा, वन क्षेत्रों में घास, खाद, जल, और पर्यावरणीय सेवाएँ (जैसे जलवायु नियंत्रण और प्रदूषण शोधन) भी प्रदान की जाती हैं।

हालांकि, वन संसाधनों का अत्यधिक उपयोग और गलत प्रबंधन कई समस्याओं का कारण बन रहा है। वनों की अंधाधुंध कटाई, बिन योजना के वन उपयोग, और मानव गतिविधियाँ जैसे कृषि विस्तार, शहरीकरण, और खनन ने भारत के वनों की स्थिति को संकट में डाल दिया है। इसके परिणामस्वरूप भूमि क्षरण, जैव विविधता का नुकसान, जलवायु परिवर्तन और स्थानीय समुदायों पर नकारात्मक प्रभाव पड़े हैं।

इस संदर्भ में, यह आवश्यक हो जाता है कि हम वन संसाधनों का संरक्षण और विवेकपूर्ण उपयोग सुनिश्चित करें। भारत सरकार ने वन संरक्षण कानूनों, नीतियों और कार्यक्रमों को लागू किया है, ताकि वनों की स्थिति में सुधार हो सके और पर्यावरणीय असंतुलन को रोका जा सके। इनमें राष्ट्रीय वन नीति, वन संरक्षण अधिनियम, और पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (EIA) जैसी पहलें शामिल हैं।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे

- वन संसाधनों की परिभाषा और उनके महत्व को समझ सकें।
- वन क्षेत्रों में संसाधनों के प्रबंधन और संरक्षण के उपायों का विश्लेषण कर सकें।
- वन संसाधनों के संतुलित उपयोग के लिए विकास की दिशा तय कर सकें।
- वन क्षेत्र की स्थिरता और सतत विकास को प्रोत्साहित करने वाले उपायों का निर्धारण कर सकें।

5.3 वनों का वर्गीकरण (Classification of forests)

किसी भी देश के आर्थिक विकास में वनों का महत्वपूर्ण स्थान है, किन्तु भारत में वनों के अधीन क्षेत्र न तो पर्याप्त हैं और न ही उनका उत्पादन काफी है। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार भारत में वनों के अधीन कुल क्षेत्र 6.77 लाख वर्ग किलोमीटर है, जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 27 प्रतिशत है। देश की उष्ण कटिबन्धीय जलवायु (Tropical Climate) और कृषि की प्रधानता को देखते हुये यह क्षेत्र अपर्याप्त है। सन् 1952 में राष्ट्रीय वन नीति प्रस्ताव में कहा गया था कि भारत में कुल भौगोलिक क्षेत्र के एक-तिहाई हिस्से में वन होने चाहिये। इस लक्ष्य को 1988 की राष्ट्रीय वन नीति में फिर से अनुमोदित किया गया है। वैज्ञानिकों का मत है कि भारतीय दशाओं में पर्वतीय प्रदेश में कम से कम

60 प्रतिशत क्षेत्र में तथा मैदानी क्षेत्र में 20 प्रतिशत वन होना आवश्यक है किन्तु पिछले वर्षों की उपलब्धियाँ अत्यधिक असंतोषजनक रही हैं।

वास्तविकता यह है कि बढती हुई जनसंख्या के दबाव के कारण पिछले 65 वर्षों में लगभग 45.5 लाख हैक्टेयर वन भूमि को कृषि कार्यों, बड़ी जल परियोजनाओं, औद्योगिक बस्तियों आदि में प्रयुक्त किया जा चुका है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि देश में वनों का वितरण भी अत्यधिक असमान है। देश के उत्तरी- पश्चिमी भागों में केवल 11 प्रतिशत भूमि पर वन हैं, जबकि मध्य क्षेत्र में 30 प्रतिशत भू-क्षेत्र वनों से ढँका हुआ है। वनों के अन्तर्गत क्षेत्र का लगभग 20 प्रतिशत भाग हिमालय तथा उसके तराई क्षेत्र में है। गंगा के मैदान में वनों के अन्तर्गत क्षेत्र 5 प्रतिशत से भी कम है। पर्यावरण सन्तुलन की दृष्टि से यह असमान वितरण उचित नहीं है।

वन क्षेत्र का वर्गीकरण दो आधारों पर किया जा सकता है यथा- (a) सरकारी वर्गीकरण और (b) वनों की प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है :-

(A) सरकारी वर्गीकरण (Govt. Classification)

सरकारी वर्गीकरण में वनों को तीन श्रेणियों में बाँटा जाता है -

1. आरक्षित वन (Reserved Forests)- यह वन सरकारी सम्पत्ति होते हैं, जिनका उपयोग किसी राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति के लिये (जैसे रेगिस्तान की रोकथाम करना, भूमि कटाव रोकना, बाढ़ नियंत्रित करना, जलवायु को अनुकूल बनाये रखना आदि) किया जाता है तथा इस वर्ग के वनों का प्रयोग बिना सरकारी अनुमति के नहीं किया जा सकता।

2. संरक्षित वन (Protected Forests)- इस पर भी सरकारी स्वामित्व होता है, किन्तु सरकार इन वनों का प्रयोग करने का अधिकार कुछ पूर्व निर्धारित शर्तों के अधीन खोल देती है।

3. अवर्गीकृत वन (Un-Classified Forests)- सामान्य तौर पर यह वन व्यवस्थित प्रबन्ध के अन्तर्गत नहीं हैं। ऐसे वनों को सरकार ठेकेदारों एवं निजी लोगों के अधीन छोड़ देती है और सरकार शुल्क के रूप में इन व्यक्तियों से कुछ राशि प्राप्त करती है।

(B) प्रकृति पर आधारित वर्गीकरण (Classification Based on Nature)

1. सदाबहार वन (Evergreen Forests)- ये वन 200 से.मी. से ऊपर वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। यही कारण है कि ये वन सदैव हरे-भरे बने रहते हैं और सदाबहार वन कहलाते हैं। उपयोगिता की दृष्टि से ये वन अधिक उपयोगी नहीं होते क्योंकि ये वन अत्यधिक घने होते हैं। इस श्रेणी के वनों में मुख्य रूप से बाँस, ताड़, आबनूस, रबड़, चन्दन, बेंत, नारियल आदि के वृक्ष पाये जाते हैं।

2. मानसूनी वन (Monsoon Forests)- ये वन 100 से.मी. से 200 से.मी. तक वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। भारत में ऐसे वनों की प्रधानता है और कुल वन क्षेत्रफल का लगभग 80 प्रतिशत भाग इसी वर्ग के वनों का है। ये वन भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। इन वनों में साल-सागौन, आम, शीशम, चंदन, सेलम आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। ये वन मुख्य रूप से महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, केरल में स्थित हैं।

3. पर्वतीय वन (Mountain Forests) - ये वन पर्वतों की ऊँचाई पर पाये जाते हैं। ये वृक्ष प्रायः औषधियों में प्रयोग किये जाते हैं। इस श्रेणी के वन मुख्य रूप से हिमालय पर्वत पर ही केन्द्रित हैं। इनमें ओक, मैगनेलिया तथा एल्पाइन आदि वृक्ष प्रमुख हैं।

4. मरुस्थलीय वन (Dry Forests)- ये वन कम वर्षा वाले स्थानों पर पाये जाते हैं। इन वनों में काँटेदार वृक्ष, बबूल, नीम, बेर, ताड़ के वृक्ष मुख्य रूप से होते हैं। ये वन राजस्थान, उत्तरप्रदेश, दक्षिणी प्रायद्वीप के शुष्क भाग, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र राज्यों में मुख्य रूप से पाये जाते हैं।)

5. डेल्टाई वन (Delta Forests) - ये वन नदियों के डेल्टाई क्षेत्रों में पाये जाते हैं। ब्रह्मपुत्र, गंगा, गोदावरी, नदियों का पानी ज्वार के समय इन क्षेत्रों में आता है। इन वनों में मुख्य रूप से जलाने वाली लकड़ी वाले वृक्ष होते हैं।

5.4 वनों का महत्व (Importance of Forest)

वनों का राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है। वनों से अनेक प्रत्यक्ष एवं परोक्ष लाभ प्राप्त होते हैं। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है :-

1. प्रत्यक्ष लाभ- वनों से प्रत्यक्ष लाभ इस प्रकार है :

(i) लकड़ी-भारतीय वनों से लगभग 5 हजार प्रकार की लकड़ियां प्राप्त होती हैं, जिनमें से अधिकांश लकड़ियाँ व्यापारिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं।

(ii) विविध उद्योगों को प्रश्रय:- भारतीय वनों से अनेक प्रकार के बहुमूल्य कच्चे माल प्राप्त हाते हैं, जिनके द्वारा अनेक उद्योग चलाये जाते हैं, जैसे दियासलाई की लकड़ी, प्लाइवुड, बाँस, सावेघास इत्यादि । कुछ ऐसी महत्वपूर्ण चीजें भारतीय जंगलों में पायी जाती है, जिनसे दियासलाई, कागज, रेयन सिल्क तथा बनावटी सिल्क के उद्योग चलाये जाते हैं।

(ii) रोजगार :- वन कार्यों और वन उपजों पर आश्रित उद्योग में लगभग 30 लाख व्यक्तियों एवं उनके आश्रितों को रोजगार मिला हुआ है।

(iv) ईंधन :- व्यापारिक महत्व की लकड़ियों के साथ-साथ वनों से हमें जलाने के लिये भी लकड़ियाँ मिलती हैं। ईंधन की लकड़ी आज भी ऊर्जा का मुख्य स्रोत है।

(v) पशुओं का चारा :- वनों से गाय, बैल, भौंस और अन्य पशुओं को चारा प्राप्त होता है।

(vi) सरकार की आय:- वनों से सरकार को प्रति वर्ष करोड़ों रुपये की आय होती है।

(vii) आयुर्वेदिक तथा अन्य जड़ी-बुटियाँ :- भारतीय वनों में कुछ ऐसी जड़ी-बूटियाँ पायी जाती हैं, जिनसे अनेक प्रकार की औषधियाँ तैयार की जाती हैं।

2. परोक्ष लाभ :- भारतीय वनों से प्राप्त होने वाले परोक्ष लाभों में से कुछ प्रमुख इस प्रकार है :-

(i) जलवायु :- घने जंगलों से तीव्र हवाएँ रुक जाती हैं, जिससे निकटवर्ती वनों में अधिक गर्म तथा अधिक ठण्डी हवा नहीं आ पाती अर्थात् जलवायु कुछ अंश समशीतोष्ण बनी रहती है।

(ii) वर्षा :- वन वाष्पयुक्त बादलों से वर्षा कराते हैं।

(iii) भूमि संरक्षण :- भारतवर्ष की लगभग सभी नदियाँ पहाड़ों से तथा जंगलों में से होकर निकलती हैं। वनों के कारण उन नदियों का प्रवाह अधिक नहीं हो पाता है। फलतः प्रवास के कारण मिट्टी का कटाव कम होता है और उपजाऊ मिट्टी की रक्षा होती है।

(iv) बाढ़ नियन्त्रण :- वन वर्षा के जल को स्पंज की भाँति चूस लेते हैं, जिससे पड़ोसी प्रदेश में बाढ़ का भय नहीं रहता ।

(v) बढ़ते हुये रेगिस्तान को रोकना :- वन तेज आँधियों को रोककर बालू से कृषि योग्य भूमि की रक्षा करते हैं।

(vi) अन्य परोक्ष लाभ :-

(a) वन प्रदेश वायु प्रवाह की तेजी को कम करके आबाद क्षेत्रों को शीत या औषधियों से बचाते हैं।

(b) जंगलों के जंगली जाति के लोगों को कन्दमूल, फल-फूल, जानवरों इत्यादि के रूप में भोजन प्राप्त होता है।

(c) वन्य वृक्षों की पत्तियाँ सूख-सूखकर भूमि पर गिरती हैं, जो खाद का कार्य करके उसे उपजाऊ बना देती हैं।

(d) वन-सीमाएँ देश की सुरक्षा की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि घने जंगलों में फौजी कार्यवाही करना कठिन होता है।)

(e) वनों के कारण देश के प्राकृतिक सौन्दर्य में वृद्धि होती है।

भारत में वनों के महत्व के बावजूद भी वनों के विकास पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। आज भी देश के वन एवं वन-उद्योग पिछड़ी दशा में हैं। इसके कई कारण हैं, जिन्हें निम्नानुसार दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. प्राकृतिक कारण :-

(i) वृक्षों की विभिन्नता :- भारत में निश्चत वन-क्षेत्र में एक ही प्रकार के वृक्ष नहीं मिलते हैं बल्कि अनेक प्रकार के वृक्ष मिलते हैं, जिसके कारण एक ही प्रकार के वृक्षों की लकड़ी एकत्रित करने में समय तथा व्यय अधिक लगता है।

(ii) वनों की दुर्गम स्थिति:- बहुत से वन-क्षेत्र अधिक ऊँचाई पर स्थित होने के कारण दुर्गम है, जिनका शोषण नहीं हो पा रहा है। हिमालय तथा पश्चिमी घाट के ऊँचे भागों पर स्थित वन दुर्गम स्थिति के कारण आज तक नहीं काटे गये हैं।

(iii) वनों का असमान वितरण :- भारत में वनों का वितरण समान नहीं है। देश के अनेक भागों, तराई के भागों, छोटा नागपुर, हिमालय की तराई आदि में बहुत ही घने वन हैं। जबकि राजस्थान के पश्चिमी भाग में तो वन का अभाव ही है।

(iv) अग्नि व रोग :- भारतीय वन क्षेत्र में अग्नि तथा वनस्पति से काफी हानि होती है। मूलतः अग्नि व उपकरणों से उनकी पूर्ण सुरक्षा होना आवश्यक है।

(v) अस्वास्थ्यकर जलवायु : वनों की अस्वास्थ्यकर एवं कठोर जलवायु तथा इनमें पाये जाने वाले हिंसक पशु इनके विकास में बाधक रहते हैं।जार कि आज

2. मानवीय कारण

(i) यातायात :- भारतीय वन उद्योग से प्राप्त माल को यातायात करना कठिन समस्या है। उनके लिये रेल उद्योग का सहयोग अभी तक कम मिला है और रेल भाड़े के अत्यधिक भार के कारण अविकसित वन उद्योग को सम्भालना कठिन है।

(ii) वैज्ञानिक ढंग: भारत में वन व्यवस्था, वनीकरण, वृक्षारोपण तथा वन उपज के उपयोग अभी तक पूर्णतया वैज्ञानिक ढंग से नहीं किये जाते । शत्रकीसरी

(iii) अनुसंधान :- भारत में वनोपज का उपयोग आर्थिक दृष्टि से करने की दिशा में अनुसंधान अभी तक व्यापक स्तर पर नहीं हुआ है।

(iv) कर्मचारियों का अभाव : भारत के वन उद्योग के पिछड़ेपन का मुख्य कारण प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव है।

(v) लकड़ी काटने के पुराने तरीके :- देश में लकड़ी काटने के पुराने तरीके ही काम में लाये जा रहे हैं। आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों से लकड़ी काटने से व्यर्थ ही लकड़ी नष्ट नहीं होती ।

(vi) जनसंख्या का दबाव :- जनसंख्या के दबाव के कारण एक बड़े भू-भाग को काटकर उसे कृषि कार्यों में लाया गया है, इससे देश में वनों की बहुत अधिक क्षति हुई है।

5.5 राष्ट्रीय वन-नीति (National Forest Policy)

सर्वप्रथम ब्रिटिश शासन काल में (स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व) सन् 1894 में राष्ट्रीय वन-नीति घोषित की गई थी, जिसमें वनों का कृषिगत विकास से ताल-मेल बैठाया गया था। स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्रीय वन-नीति (National Forest Policy) 1952 में घोषित की गई। इसकी मुख्य बातें हैं :

सन् 1952 की वन-नीति में वनों का वर्गीकरण कार्यात्मक आधार (Functional Basis) पर करने का सुझाव दिया गया ताकि सुरक्षा वन, राष्ट्रीय वन, ग्रामीण वन तथा वृक्षों की भूमि के अन्तर्गत इन्हें विभाजित किया जा सके। भारत सरकार ने 1952 में राष्ट्रीय वन नीति सम्बन्धी अपने प्रस्ताव में देश में एक-तिहाई भूमि पर वन लगाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। पहाड़ी क्षेत्रों में 60 प्रतिशत और मैदानों में 20 प्रतिशत भाग पर वन आवश्यक माने गये थे। वन नीति के दो उद्देश्य रखे गये थे :

1. वन साधनों के दीर्घकालीन विकास की व्यवस्था करना और

2. निकट भविष्य में इमारती लकड़ी की बढ़ती हुई आवश्यकता को पूरा करना।

सन् 1952 की वन-नीति के माध्यम से वनों की संरचना एवं उपयोग में बुनियादी परिवर्तन करने का प्रयास किया गया है। इस नीति के अन्तर्गत निम्नांकित बातों पर विशेष रूप से बल दिया गया थाः

(i) भूमि का ऐसा सन्तुलित और पूरक उपयोग करना, जिससे प्रत्येक प्रकार की भूमि से अधिकतम उत्पत्ति मिले और उसका न्यूनतम ह्रास हो ।

(ii) पर्वतीय क्षेत्रों में बाढ़ रोकना तथा नदियों को किनारों और ढालू मैदानों में मिट्टी का कटाव रोकना, जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति का क्षय न हो।

(iii) समुद्री किनारों और मरु भूमि (राजस्थान) की रन को आगे बढ़ने से रोकना।

(iv) वन रोपण हेतु प्राकृतिक एवं जलवायु सम्बद्ध स्थिति में संभावित सुधार करना।

(v) चराई के लिये घास तथा खेती के औजारों और ईंधन की पूर्ति के लिये लकड़ी की व्यवस्था करना, जिससे गोबर खाद के काम आ सके।

(vi) सुरक्षा, परिवहन तथा अन्य उद्योगों के लिये व्यापारिक लकड़ी की स्थायी पूर्ति करना ।

(vii) उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ वनों से अधिकतम आय प्राप्त करना ।

(viii) जनजाति के लोगों को परिवर्तनशील किस्म की या झूम खेती (Shifting Cultivation) की प्रथा से मुक्त करना।

(ix) वन नियमों में वृद्धि करके वन प्रशासन की कार्यकुशलता में सुधार करना ।

(x) सभी प्रकार के कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना ।

(xi) वनों से सम्बन्धी अनुसंधान को बढ़ावा देना ।

उपर्युक्त वन नीति को राज्य सरकारें विभिन्न कारणों से लागू नहीं कर पायी हैं। सुरक्षा, रेल, सार्वजनिक निर्माण विभागों, कॉलेज व विश्वविद्यालयों की भूमियों पर वृक्षारोपण का विस्तार नहीं किया गया है। पहाड़ी क्षेत्रों में 60 प्रतिशत व मैदानी भागों में 20 प्रतिशत क्षेत्रों में वनों को लगाने का कार्य अभी तक सम्पन्न नहीं किया जा सका है।

5.5.1 1988 की वन-नीति

वन संसाधनों के विकास एवं प्रबन्धन के उद्देश्य से सन् 1988 में संशोधित वन नीति की घोषणा की गई। नई वन नीति का मुख्य लक्ष्य विद्यमान वन क्षेत्र का संरक्षण और उसमें विस्तार करना है। इस संशोधित वन नीति के प्रमुख बिन्दु निम्न प्रकार हैं :-

1. पर्यावरण में सन्तुलन एवं स्थिरता को बनाये रखना ।

2. वन संसाधनों का समुचित संरक्षण करना ।

3. नदियों, झीलों एवं जलाशयों के प्रभाव क्षेत्र (Catchment Areas) में मिट्टी के कटाव एवं वनस्पति

को नष्ट होने को रोकना ।

4. राजस्थान एवं समुद्र तटीय प्रदेशों में बालू के टीलों के विस्तार को सघन वृक्षारोपण के द्वारा नियन्त्रित करना ।

5. बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण और सामाजिक वानिकी के कार्यक्रमों द्वारा वनों का विस्तार करना ।

6. ग्रामीणों एवं आदिवासियों की ईंधन, लकड़ी, चारा और वनों के अन्य उत्पादों की जरूरतों को पूरा करने के लिये समुचित उपाय करना ।

7. राष्ट्रीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये वनों की उत्पादकता को बढ़ाना ।

8. वन उत्पादों के कुशल उपयोग को प्रोत्साहित करना ।

9. लकड़ी का अनुकूलतम प्रतिस्थापन करना ।

10. विद्यमान वनों पर दबाव कम करने और वन-नीति के उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यापक जन आन्दोलन तैयार करना जिसमें महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित किया जावे ।

सन् 1988 की वन-नीति को मूर्त रूप देने के उद्देश्य से आठवीं पंचवर्षीय योजना में विशाल वन रोपण कार्यक्रम को अपनाया गया। इसी प्रकार देश की नवीं पंचवर्षीय योजना में वृक्षों और उनके बीजों में सुधार, वनों की लकड़ी के साथ-साथ अन्य उत्पादों के विकास, कृषि वानिकी तथा लकड़ी की स्थानापन्न वस्तुओं की खोज पर विशेष ध्यान दिया गया ।

5.6 पंचवर्षीय योजनाओं में वन-विकास कार्यक्रम (Forest development programs in five year plans)

पंचवर्षीय योजनाओं में यद्यपि वर्तमान वन संसाधनों का व्यवस्थित विदोहन, संरक्षण तथा वन रोपण (Afforestation) के साथ-साथ पुनः वन लगाने (Reforestation) से संबंधित कार्यक्रमों का निर्धारण कर के उन्हें क्रियान्वित किया गया तथापि स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। 1952 के राष्ट्रीय वन नीति प्रस्ताव में देश के कुल भू-क्षेत्र के 1/2 भाग पर वनों का विस्तार करने की सिफारिश की गई थी। अब तक की प्रगति सन्तोषजनक नहीं रही है क्योंकि कुल भू-क्षेत्र का लगभग 27 प्रतिशत भाग ही वनों के अन्तर्गत आ पाया है और इसके भी काफी अंश पर उत्तम किस्म के वन नहीं पाये जाते हैं। कारण वनों की बड़ी दुर्दशा देखने को मिलती है। अभी घटिया वन क्षेत्रों का पुनः विकास करने की दृष्टि से सीमित सफलता ही मिल पायी है। वन विकास के उद्देश्य से अभी तक कुछ ही राज्यों में वन-विकास-निगम स्थापित किये गये हैं ताकि संस्थागत वित्त का उपयोग करके वृक्षारोपण के कार्यक्रमों का विस्तार किया जा सके। पाँचवीं योजना में राष्ट्रीय पार्कों का विकास करने तथा वन्य पशुओं की रक्षा सम्बन्धी गतिविधियों पर जोर दिया गया था। इसमें 'प्रोजेक्ट टाइगर' कार्यक्रम हाथ में लिया गया था ।

प्रथम से पाँचवी पंचवर्षीय योजना तक वनों के विकास हेतु केवल 372 करोड़ की राशि व्यय की गई, किन्तु इसके बाद इस मद पर व्यय की गई राशि में तेजी से वृद्धि हुई है। छठीं योजना में इसे बढ़ाकर 700 करोड़ रुपये एवं सातवीं योजना में 1860 करोड़ रुपये कर दिये गये। वन-विकास की दिशा में तेजी लाने के उद्देश्य से आठवीं योजना में 4082 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई। देश की नवीं योजना में भी 900 करोड़ रुपये वनों के विकास के लिये उपलब्ध कराये गये। इस अवधि में वनों के विकास हेतु निम्न कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया गया :-

(i) परिवेश संरक्षण व पशुओं तथा पौधों की विविधता पर बल देना,

(ii) सामाजिक वानिकी, फार्म वानिकी व अन्य वृक्षारोपण कार्यक्रमों पर बल देना,

(iii) लोगों की ईधन, चारे, छोटी किस्म की वनों की वस्तुओं व लघु टिम्बर की मूल भूत आवश्यकताओं को पूरा करना है,

(iv) वन कार्यक्रमों को जनजाति के कल्याण कार्यक्रमों से जोड़ना,

(v) वन अनुसंधान, शिक्षा, प्रशिक्षण व विस्तार पर जो देना,

(vi) वन्य- पशुओं की सुरक्षा पर जोर देना, तथा

(vii) उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये एक जन आन्दोलन तैयार करना।सिचल

5.7 युक्तियुक्त वन-संसाधन विकास के लिये सुझाव (Suggestions for proper development of forest resources)

देश में जनसंख्या के दबाव एवं विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में लापरवाही के कारण योजना के 50 वर्षों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ। अतः देश में वन क्षेत्र बढ़ाने एवं वनों की उत्पादकता में वृद्धि करने के उद्देश्य निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :-

1. वनों के विकास के लिये दीर्घकालीन योजना की आवश्यकता :- वन-संसाधन के युक्तियुक्त विकास के लिये दीर्घकालीन नियोजन न केवल वांछनीय है, वरन् अत्यावश्यक भी। इन दीर्घकालीन योजनाओं में वनों के समुचित विकास की ओर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। वन-उत्पादों के निर्यात एवं वनों की उत्पादकता में वृद्धि करने की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिये । की

2. नवीन वृक्ष लगाने पर विशेष जोर:- अभी तक शहरों एवं नगरों के चारों ओर ग्रामीण क्षेत्रों में जलाने की लकड़ी उत्पन्न करने एवं शीघ्र ऊगने वाले वृक्षों से संबंधित कार्यक्रमों में विशेष सफलता नहीं मिली। अतः भविष्य में नियोजित ढंग से अधिकाधिक वृक्षारोपण पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। जिस भूमि पर खेती करना सम्भव नहीं है, वहाँ पर वृक्षारोपण के सघन कार्यक्रम बनाया जाना चाहिये ।

3. वृक्षारोपण की कटाई नियोजित ढंग से होनी चाहिये -बिना सोचे समझे वृक्षों की कटाई नहीं होना चाहिये। इसे कठोरता से रोका जाना चाहिये। पिछले अनुभवों के आधार पर इस दिशा में ठोस उपाय किये जाने चाहिये ।

4. आवश्यकता के अनुसार वृक्षारोपण: देश में लकड़ी-आश्रित उद्योगों, परिवहन व भवन निर्माण की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये वनों का विस्तार किया जाना चाहिये। कागज उद्योग एवं रेयान श्रेणी की लुगदी बनाने वाले कारखाने की माँग को भी ध्यान में रखा जाना चाहिये ।

5. वैकल्पिक कच्चे माल के उपयोग को बढ़ावा :- जहाँ वनों पर आधारित कच्चे माल की पूर्ति कम है, वहाँ वैकल्पिक कच्चे माल के उपयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिये। उदाहरणार्थ कागज मिलों में गन्ने का छिलका व जूट की डण्डियों का उपयोग। इससे बाँस की माँग में कमी होगी तथा मूल्य भी नियन्त्रित रहेंगे ।

6. सुदूर स्थानों में वृक्षारोपण :- वर्तमान में यातायात के साधनों में तेजी से विस्तार हो रहा है। जिन सुदूर स्थानों पर वनों के विस्तार की सम्भावनाएँ विद्यमान हैं, वहाँ पर यातायात के साधनों का विकास करके सघन वृक्षारोपण किया जाना चाहिये ।

संक्षेप में वन संसाधनों के विकास के लिये एक समयबद्ध (Time-bound) कार्यक्रम बना कर उसे ठीक ढंग से कियान्वित किया जाना चाहिये। इससे ग्रामवासियों को जहाँ ईंधन एवं काम की लकड़ी ठीक ढंग से प्राप्त हो सकेगी, वहीं विभिन्न प्रकार के वनाश्रित उद्योगों को नियमित रूप से कच्चा माल प्राप्त हो सकेगा। इसके साथ ही वनों के संरक्षण के विकास के लिये जन-सहयोग भी प्राप्त किया जाना चाहिये ।

5.8 मुख्य शब्द

1. **वन (Forest)**
   - एक प्राकृतिक या मानव द्वारा प्रबंधित क्षेत्र जिसमें पेड़-पौधे, वन्यजीव, और अन्य जैविक एवं अजैविक घटक रहते हैं। यह पारिस्थितिकी तंत्र का महत्वपूर्ण हिस्सा है।
2. **वनस्पति (Vegetation)**
   - किसी क्षेत्र में उगने वाले पौधे, पेड़, और घास का समूह। यह वन के पारिस्थितिकी तंत्र का महत्वपूर्ण घटक है।
3. **वन्यजीव (Wildlife)**
   - वन में रहने वाले पशु, पक्षी, कीड़े और अन्य जीव। ये वन के जैव विविधता का हिस्सा होते हैं।
4. **वन उत्पादन (Forest Products)**
   - वन से प्राप्त वस्तुएं जैसे लकड़ी, फाइबर, रेजिन, औषधियां, फलों और अन्य वन आधारित उत्पाद जो मानव जीवन के लिए उपयोगी होते हैं।
5. **वन संरक्षण (Forest Conservation)**
   - वनों के प्राकृतिक रूप को बनाए रखने और उनका संरक्षण करने की प्रक्रिया, ताकि उनका पर्यावरणीय, जैविक और आर्थिक महत्व सुरक्षित रहे।
6. **वन कानून (Forest Law)**

- कानून और नियम जो वनों के संरक्षण और उनके संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग को सुनिश्चित करते हैं। जैसे, **वन संरक्षण अधिनियम**, **राष्ट्रीय वन नीति** आदि।

7. **जैव विविधता (Biodiversity)**
   - किसी विशिष्ट क्षेत्र में पाए जाने वाली सभी जीवन रूपों की विविधता, जिसमें पौधे, पशु, कीड़े, सूक्ष्मजीव और अन्य जैविक घटक शामिल हैं।
8. **वृक्षारोपण (Afforestation)**
   - नई भूमि पर पेड़-पौधों का रोपण करना, जिससे वन क्षेत्र का विस्तार होता है और पर्यावरणीय संतुलन बना रहता है।
9. **रेग्रोथ (Regrowth)**
   - कटे या जलाए गए वनों का पुनर्निर्माण, जिसमें वनस्पतियों और वृक्षों का पुन: विकास शामिल है।
10. **वनों की अतिक्रमण (Deforestation)**
    - जंगलों का अवैध तरीके से या अत्यधिक दर से नष्ट करना, जिससे पर्यावरणीय असंतुलन और जैव विविधता का संकट पैदा होता है।
11. **वर्षा वन (Tropical Rainforest)**
    - उच्च वर्षा वाले उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में पाया जाने वाला घना वन, जिसमें पौधे और पशु विविधता अत्यधिक होती है।
12. **कांपस वन (Temperate Forest)**
    - उन क्षेत्रों में पाया जाने वाला वन जो औसत तापमान में रहते हैं, और जहां चार मौसम होते हैं—गर्म, ठंडा, शरद और वसंत।
13. **पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem)**
    - जीवों और उनके पर्यावरण के बीच पारस्परिक संबंधों का एक प्रणाली, जिसमें वन भी एक महत्वपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र है।
14. **वनस्पति संरक्षण (Vegetation Conservation)**
    - वनस्पतियों के संरक्षण और उनका विवेकपूर्ण उपयोग करने के लिए किए गए प्रयास, ताकि पारिस्थितिकी तंत्र का संतुलन बनाए रखा जा सके।

15. **जलवायु परिवर्तन (Climate Change)**
   - जलवायु में बदलाव, जैसे वैश्विक तापन और मौसम में परिवर्तन, जो वन और पर्यावरणीय संसाधनों पर गहरा प्रभाव डालते हैं।

16. **नवोदित वन (Secondary Forest)**
   - वे वन जो मानव गतिविधियों (जैसे वन कटाई) के बाद प्राकृतिक रूप से फिर से विकसित होते हैं।

17. **जैविक संसाधन (Biotic Resources)**
   - वन संसाधन जिनमें जीवन होता है, जैसे पेड़, पौधे, वन्यजीव, और सूक्ष्मजीव।

18. **अजैविक संसाधन (Abiotic Resources)**
   - वन के अजैविक तत्व, जैसे जल, मिट्टी, खनिज, और हवा, जो वन के पारिस्थितिकी तंत्र का हिस्सा होते हैं।

19. **नम क्षेत्र वन (Wetland Forest)**
   - वे जंगल जो नमी वाले क्षेत्रों में होते हैं, जैसे दलदल, जलाशय के किनारे या नदियों के आस-पास, और जहां विशेष प्रकार के पौधे और जीव पाए जाते हैं।

20. **उधार भूमि (Clear-cutting)**
   - एक वन क्षेत्र में सभी पेड़ों को एक साथ काटने की प्रक्रिया, जो अक्सर पर्यावरणीय दृष्टिकोण से हानिकारक होती है।

21. **वृक्षारोपण नीति (Afforestation Policy)**
   - सरकार द्वारा निर्धारित नियम और योजनाएँ जो नई वनस्पति को रोपने और वनों का संरक्षण करने के लिए बनाई जाती हैं।

22. **आधिकारिक वन (Reserved Forest)**
   - वह वन जो सरकार द्वारा संरक्षित किया गया हो और जिसका उपयोग केवल विनियमित तरीके से किया जा सकता है।

23. **वन्यजीव अभयारण्य (Wildlife Sanctuary)**

   - एक सुरक्षित क्षेत्र जहाँ वन्यजीवों और उनके प्राकृतिक आवास को संरक्षित किया जाता है, और यहाँ पर शिकार, लकड़ी की कटाई, या अन्य हानिकारक गतिविधियाँ निषेध होती हैं।

24. **वन विकास (Forest Development)**
   - वनों के संरक्षण और विकास के लिए किए गए कार्य, जिसमें वृक्षारोपण, पुनर्वनीकरण, और जैव विविधता की रक्षा के उपाय शामिल होते हैं।

25. **कागजी उद्योग (Pulp and Paper Industry)**
   - लकड़ी से कागज बनाने वाली औद्योगिक प्रक्रिया जो वनों से लकड़ी का उपयोग करती है।

5.9 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

यह स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्न वन संसाधनों के अध्ययन के लिए तैयार किए गए हैं, जो छात्रों या पाठकों को वन संसाधनों की समझ और उनके प्रबंधन के बारे में विचार करने के लिए प्रेरित करेंगे।

प्रश्न 1: वन संसाधन क्या होते हैं?

उत्तर: वन संसाधन उन प्राकृतिक संसाधनों को कहते हैं, जो वनों से प्राप्त होते हैं। इनमें लकड़ी, फाइबर, औषधियाँ, फसलें, रेजिन, रेजिन, खाद्य सामग्री, जल, और अन्य वन्य उत्पाद शामिल होते हैं। ये संसाधन मानव जीवन के लिए आवश्यक हैं और पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वन संसाधन प्राकृतिक जैविक और अजैविक घटकों से मिलकर बनते हैं, जैसे कि पेड़-पौधे, वन्यजीव, मिट्टी, जल, और खनिज।

प्रश्न 2: वनों का संरक्षण क्यों महत्वपूर्ण है?

उत्तर: वनों का संरक्षण अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि वे:

1. **जैव विविधता का संरक्षण करते हैं:** वनों में बड़ी संख्या में पौधे और जीव रहते हैं, जो जैव विविधता के लिए जरूरी हैं।
2. **जलवायु संतुलन बनाए रखते हैं:** वन CO_2 को अवशोषित करते हैं और ऑक्सीजन छोड़ते हैं, जो जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करता है।
3. **मिट्टी का संरक्षण करते हैं:** वनों की जड़ें मिट्टी को स्थिर करती हैं, जिससे मृदा क्षरण और बाढ़ को रोका जा सकता है।

4. **स्थानीय समुदायों के लिए संसाधन प्रदान करते हैं:** जंगलों से लकड़ी, ईंधन, औषधियाँ, और अन्य वन उत्पाद प्राप्त होते हैं, जो स्थानीय जीवन का हिस्सा होते हैं।
5. **जल के स्रोतों को बनाए रखते हैं:** वन जलधाराओं और नदियों के पास स्थित होते हैं, जो जल को संचित करने में मदद करते हैं।

प्रश्न 3: वनस्पति और वन्यजीवों का संरक्षण क्यों आवश्यक है?

उत्तर: वनस्पति और वन्यजीवों का संरक्षण इसलिए आवश्यक है क्योंकि:

1. **वन्यजीव पारिस्थितिकी तंत्र का हिस्सा हैं:** वे भोजन श्रृंखला में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र का संतुलन बनाए रहता है।
2. **वनस्पति प्राकृतिक संसाधन प्रदान करती हैं:** वनस्पतियाँ वातावरण में ऑक्सीजन का उत्सर्जन करती हैं और पर्यावरणीय सेवा (जैसे प्रदूषण नियंत्रण) प्रदान करती हैं।
3. **जीवों की प्रजातियों का संरक्षण:** बहुत सी वनस्पतियाँ और जीव केवल जंगलों में ही पाई जाती हैं, जिनकी विलुप्ति जैव विविधता के लिए खतरे की घंटी है।
4. **सांस्कृतिक और पारंपरिक महत्व:** वनस्पतियाँ और वन्यजीवों का संरक्षण स्थानीय समुदायों की जीवनशैली और पारंपरिक ज्ञान के लिए भी महत्वपूर्ण है।

प्रश्न 4: वनों की अतिक्रमण (Deforestation) के प्रभाव क्या हैं?

उत्तर: वंस की अतिक्रमण के कई नकारात्मक प्रभाव होते हैं, जैसे:

1. **जैव विविधता का नुकसान:** वनों की अतिक्रमण से हजारों प्रजातियाँ नष्ट हो सकती हैं, क्योंकि उनके प्राकृतिक आवास समाप्त हो जाते हैं।
2. **जलवायु परिवर्तन:** वनों की अतिक्रमण के कारण कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन बढ़ जाता है, जो ग्लोबल वॉर्मिंग और जलवायु परिवर्तन को बढ़ाता है।
3. **मिट्टी का कटाव:** पेड़-पौधों के हटने से मिट्टी का कटाव बढ़ता है, जिससे भूमि की उर्वरता घटती है और बाढ़ और सूखा जैसे प्राकृतिक आपदाएँ उत्पन्न हो सकती हैं।
4. **जल संकट:** वनों की अतिक्रमण से जलाशय और जल स्रोतों का अव्यवस्थित उपयोग बढ़ता है, जिससे पानी की कमी हो सकती है।

5. **स्थानीय समुदायों पर प्रभाव:** बहुत से आदिवासी और ग्रामीण समुदाय वन संसाधनों पर निर्भर होते हैं। वनों की अतिक्रमण से उनकी आजीविका और जीवनशैली को नुकसान होता है।

प्रश्न 5: वन संसाधनों के सतत उपयोग का क्या मतलब है?

उत्तर: वन संसाधनों का सतत उपयोग का मतलब है कि हम वन उत्पादों का ऐसा उपयोग करें, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए भी उपलब्ध रहें और पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखा जा सके। इसमें लकड़ी, औषधियाँ, फाइबर आदि का ऐसा उपयोग करना शामिल है, जो वन क्षेत्र की पुनर्निर्माण क्षमता को प्रभावित न करें। सतत उपयोग में निम्नलिखित सिद्धांत शामिल होते हैं:

1. **वृद्धि दर से कम कटाई:** वनों का उपयोग इस दर पर किया जाए कि वृक्षों और पौधों की प्राकृतिक वृद्धि बनी रहे।
2. **पुनर्निर्माण और पुनः植ोपण (Replanting):** कटे हुए पेड़ों की जगह नए पौधे लगाए जाएं, ताकि वन क्षेत्र पुनः विकसित हो सके।
3. **समान रूप से संसाधनों का उपयोग:** वन संसाधनों का अधिकतम उपयोग करने के बजाय उनके सीमित और विवेकपूर्ण उपयोग को प्राथमिकता दी जाए।

प्रश्न 6: भारत में प्रमुख वन प्रकार कौन से हैं?

उत्तर: भारत में विभिन्न प्रकार के वन पाए जाते हैं, जो विभिन्न जलवायु और भौगोलिक स्थितियों पर आधारित होते हैं:

1. **उष्णकटिबंधीय वर्षा वन (Tropical Rainforests):** ये जंगल अत्यधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पाए जाते हैं, जैसे पश्चिमी घाट और उत्तर-पूर्वी भारत। यहां घना जंगल और विविध जैविक विविधता होती है।
2. **मध्यम ऊंचाई के शीतोष्ण वन (Temperate Forests):** ये जंगल उन क्षेत्रों में पाए जाते हैं जहां ठंडे और शीतोष्ण मौसम होता है, जैसे हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड।
3. **तटीय और मानसूनी वन (Mangrove Forests):** ये वन समुद्र तटों और मैन्ग्रोव क्षेत्रों में पाए जाते हैं, जैसे सुंदरबन में।
4. **रेग्रोथ (Secondary) वन:** ये वे जंगल होते हैं जो वनक्षेत्रों के नष्ट होने के बाद पुनः विकसित हुए होते हैं।

5. **ऊंचाई वाले पहाड़ी वन (Mountain Forests):** ये जंगल हिमालयी क्षेत्रों में पाए जाते हैं और यहां पाइन, देवदार, और बर्च जैसे वृक्ष पाए जाते हैं।

प्रश्न 7: भारतीय वन नीति का उद्देश्य क्या है?

उत्तर: भारतीय वन नीति का उद्देश्य भारत में वन संसाधनों का संरक्षण, प्रबंधन, और उनका सतत उपयोग सुनिश्चित करना है। यह नीति वनों के संरक्षण और पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने के लिए बनाई गई है। इसके मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. **वन क्षेत्रों का संरक्षण:** भारतीय वन नीति का मुख्य उद्देश्य देश के वन क्षेत्र का विस्तार और संरक्षण करना है।
2. **आर्थिक और पारिस्थितिकीय लाभ सुनिश्चित करना:** वनों से आर्थिक और पारिस्थितिकीय लाभ प्राप्त करने के लिए समुचित प्रबंधन की योजना बनाना।
3. **वृक्षारोपण और पुनर्वनीकरण:** पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने के लिए वृक्षारोपण और पुनर्वनीकरण को बढ़ावा देना।
4. **समाज में वन संरक्षण की जागरूकता:** स्थानीय समुदायों में वन संरक्षण के महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाना।

5.10 संदर्भ सूची

- गोपाल, बी. (2019). भारत में वन संसाधन: नीति और प्रबंधन. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
- शर्मा, आर. (2021). वन और पर्यावरण: भारतीय परिप्रेक्ष्य. जयपुर: राजस्थानी ग्रंथागार।
- सिंह, एस. (2018). पर्यावरणीय अध्ययन और वन प्रबंधन. मुंबई: हेमंत पब्लिकेशन।
- चंद्र, पी. (2022). वन संरक्षण और उसकी चुनौतियां. दिल्ली: प्रभात प्रकाशन।
- अग्रवाल, एम. (2020). वन और जैव विविधता: नीति और व्यवहार. कोलकाता: ओरिएंट ब्लैकस्वान।

5.11: अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में उपलब्ध वन-संसाधनों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये एवं पंचवर्षीय योजनाओं में उनके विकास की विवेचना कीजिये ।

2. वन-संसाधनों के महत्व की विवेचना कीजिये और उनके उपयोग के लिये युक्तियुक्त भोजन की व्याख्या कीजिये ।

3. भारत में वन-संसाधनों पर एक लेख लिखिये ।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. 1952 की राष्ट्रीय वन-नीति क्या है ?

2. 1988 की राष्ट्रीय वन नीति को संक्षेप में लिखिए ।

3. पंचवर्षीय योजनाओं में वन विकास कार्यक्रम पर संक्षिप्त टीप लिखिए।

4. भारत में वनों का आर्थिक महत्व स्पष्ट कीजिए ।

5. भारतीय वनों के अप्रत्यक्ष लाभ बताइये ।

6. भारत में वनों का वर्गीकरण कीजिए ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारत में विश्व के वन क्षेत्र का कितना भाग है ?

(अ) 1 प्रतिशत

(ब) 2 प्रतिशत

(स) 3 प्रतिशत

(द) 4 प्रतिशत

2. भारत में कुल औद्योगिक क्षेत्रफल का कितना भाग वनों के अधीन है?

(अ) 20 प्रतिशत

(ब) 27 प्रतिशत

(स) 30 प्रतिशत

(द) 33 प्रतिशत

3.आरतीय वन प्रबन्ध संस्थान वर्ष 1998 में कहाँ पर स्थापित किया गया था ?

(अ) भोपाल में

(ब) मुम्बई में

(स) दिल्ली में

(द) देहरादून में

उत्तर :- (1) ब, (2) ब, (3) अ।

इकाई- 6

भारतीय अर्थव्यवस्था की मानव अधोसंरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 भारत में सामाजिक सेवा क्षेत्र पर व्यय
6.4 मानव संसाधनों का आर्थिक विकास में महत्व
6.5 मानव संसाधन के विकास के लिए विनियोग के क्षेत्र
6.6 मानव संसाधन के विकास के लिए निवेश की सीमाएँ
6.7 मानव विकास की आवश्यकता
6.8 मानव विकास निर्देशांक या सूचकांक की सीमाएँ
6.9 सार संक्षेप
6.10 मुख्य शब्द
6.11 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
6.12 संदर्भ सूची
6.13 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सामाजिक या मानव अधोसंरचना का विशेष महत्व होता है। विश्व के विकसित देशों के आर्थिक विकास का अध्ययन करने से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि सन् 1750 से 1950 की अवधि में इन देशों को जो आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त हुई है, उसका एक मुख्य कारण सामाजिक अधोसंरचना का विस्तार था। आधुनिक अर्थशास्त्री इसे मानव-पूँजी निर्माण कहते हैं जो "देश के सभी लोगों के ज्ञान, कुशलता तथा क्षमताएँ बढ़ाने की प्रक्रिया है" और इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सामान्य रूप से सामाजिक अधोसंरचना के विस्तार पर होने वाला व्यय सम्मिलित होता है। प्रो. डेनिसन के अनुसार सन् 1929 से 1957 के मध्य अमरीका में शिक्षा पर किए गये व्यय से सकल वास्तविक राष्ट्रीय आय में 23 प्रतिशत योगदान था ।

परन्तु पिछड़े एवं विकासशील देशों में संसाधनों की कमी के कारण सामाजिक अधोसंरचना पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता और परिणामस्वरूप सामान्य शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, कार्यकुशलता, शारीरिक स्वास्थ्य आदि का स्तर न्यून है। यही कारण है कि ऐसे देशों में श्रम की उत्पादकता बहुत कम होती है जिससे उत्पादन एवं उत्पादकता के स्तर में इच्छित वृद्धि नहीं हो पाती। इस विषय में प्रो. सोलोमन द्वारा किया गया अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि सन् 1889 से 1957 के मध्य अमरीका के कुल राष्ट्रीय उत्पाद में जितनी वृद्धि भौतिक पूँजी के द्वारा हुई, उतनी ही श्रम की उत्पादकता में वृद्धि से भी हुई। इस प्रकार पिछड़े एवं विकासशील देशों में सामाजिक अधोसंरचना, यथा शिक्षा, स्वास्थ्य, श्रम-कल्याण आदि में विस्तार से आर्थिक विकास की गति में तीव्रता आती है।

प्रो. हार्बिसन ने मानवीय शक्ति के समुचित विकास के लिए तीन तत्वों की आवश्यकता को बताया है, यथा- प्रथम- प्रोत्साहन, द्वितीय- प्रभावकारी प्रशिक्षण और तृतीय औपचारिक शिक्षा का व्यापक विस्तार । इस प्रकार पिछड़े एवं विकासशील देशों की जन शक्ति को इस प्रकार के कार्यों के लिए आकर्षित किया जाना चाहिए जो कि आर्थिक विकास को तीव्र कर सके। उदाहरण के लिए वैज्ञानिक, इंजीनियर, डॉक्टर, प्रबन्धक आदि जहाँ व्यक्ति स्वतः आकर्षित होकर आगे बढ़े। इसके साथ ही जनशक्ति को कुशल एवं उत्पादक बनाने के लिए तकनीकी शिक्षा-प्रशिक्षण भी आवश्यक है। तृतीय तत्व के रूप में औपचारिक शिक्षा का विकास (Development of Formal Education) है, जिसमें प्राथमिक, माध्यमिक एवं विश्वविद्यालयीन स्तर पर निवेश की आवश्यकता होती है। इन सभी स्तरों पर विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि के साथ-साथ शिक्षा की गुणवत्ता पर भी समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए ।

पिछड़े एवं गरीब देशों में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए क्योंकि ऐसे शिक्षित व्यक्तियों की सरकार, उद्योग, वाणिज्य एवं कृषि में सभी स्तरों पर आवश्यकता होती है। इसके साथ ही माध्यमिक स्तर पर रोजगारमूलक शिक्षा-प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों को महत्व दिया जाना चाहिए जिससे इन व्यक्तियों का विकास में योगदान प्राप्त होने के साथ-साथ शिक्षित बेरोजगारी की समस्या पैदा न हो। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि सामाजिक अधोसंरचना का विस्तार एक अत्यधिक खर्चीला कार्य है। अतः सार्वजनिक क्षेत्र के साथ-साथ निजी ट्रस्टों एवं समाजसेवी संस्थाओं एवं व्यक्तियों के सहयोग का प्रयास भी किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा स्वास्थ्य जैसी सामाजिक अधोसंरचना के अभाव में आर्थिक विकास सम्भव नहीं है। प्रो. मिर्डल के अनुसार "बहुत

बड़ी जनसंख्या को निरक्षर रखकर राष्ट्रीय विकास कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना निरर्थक है।" इसी प्रकार प्रो. गॉलब्रेथ ने लिखा है कि "विश्व में कहीं भी ऐसा निरक्षर कृषक वर्ग नहीं है जो प्रगतिशील हो और कहीं भी ऐसा साक्षर कृषक नहीं है जो प्रगतिशील न हो। इस प्रकार शिक्षा में निवेश अत्यधिक उत्पादक होता है। संक्षेप में, प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा एवं सभी स्तरों पर स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार देश के आर्थिक विकास का केन्द्र बिन्दु होता है।" अतः आर्थिक विकास की कार्य-योजना में सामाजिक अधोसंरचना को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
- विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।

6.3 भारत में सामाजिक सेवा क्षेत्र पर व्यय (Expenditure on Social Service Sector in India)

स्वतंत्रता के बाद से ही भारत में सामाजिक क्षेत्र के विस्तार को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया । प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही जहाँ कृषि, विद्युत, उद्योग एवं परिवहन के विकास के लिए बहुआयामी कार्यक्रम क्रियान्वित किए जा रहे हैं, वहीं शिक्षा, स्वास्थ्य, जल-आपूर्ति, सफाई व्यवस्था, पिछड़े वर्गों के उत्थान आदि पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में समाज सेवा क्षेत्र पर कुल 472 करोड़ रु. (कुल व्यय का 24 प्रतिशत) व्यय किए गए, जो बढ़कर द्वितीय योजना में 855 करोड़ (18.3 प्रतिशत), तृतीय योजना में 1492 करोड़ रु. (17.4 प्रतिशत), चतुर्थ योजना में 2986 करोड़ रु. (18.9 प्रतिशत), पंचम योजना में 6710 करोड़ रु. (17.4 प्रतिशत), छठीं योजना में 17790 करोड़ रु. (16.3 प्रतिशत), सातवीं योजना में 41747 करोड़ रु. (19.0 प्रतिशत), आठवीं योजना में 115929 करोड़ रु. (22.8 प्रतिशत) एवं नवीं योजना में 183273 करोड़ रु. (21.39 प्रतिशत) हो गए। दसवीं योजना (2002-07) में सामाजिक सेवा क्षेत्र पर कुल व्यय 4,36,529 करोड़ रुपए (26.97 प्रतिशत) किया गया तथा ग्यारहवीं योजना (2007-12) में सामाजिक सेवा क्षेत्र पर 11,02,327 करोड़ रुपए (कुल व्यय का 30.24 प्रतिशत) व्यय का प्रावधान रखा गया है। तालिका-1 में समाज सेवाओं के क्षेत्र में केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा किए गए व्यय का तुलनात्मक विवरण दर्शाया गया है।

तालिका-1

सामाजिक सेवाओं पर केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा किया गया व्यय

(राशि करोड़ रु.)

मद	1986-87	1990-91	1995-96	2000-01	2010-11
1. कुल व्यय	100470	163637	303586	595595	2071147
2. सामाजिक सेवाओं पर व्यय	18967	33255	65531	131805	522492
3. शिक्षा पर व्यय	8651	17094	32370	67036	235035
4. स्वास्थ्य पर व्यय	4566	7309	14135	27960	99738
5. अन्य मदों पर व्यय	5750	8852	19026	36809	187719
कुल व्यय प्रतिशत के रूप में					
6. सामाजिक सेवाएँ	18.9	20.3	21.6	22.1	25.2
7. शिक्षा पर प्रतिशत	8.6	10.4	10.7	11.3	11.3
8. स्वास्थ्य पर प्रतिशत	4.5	4.5	4.7	4.7	4.8
9. अन्य मदों पर प्रतिशत	5.7	5.4	6.3	6.2	9.1

स्रोतः आर्थिक समीक्षा, 2005, टैक्समैन प्रकाशन, पृष्ठ 226 एवं आर्थिक समीक्षा 2010-11 पृष्ठ 294

तालिका-1 से यह स्पष्ट है कि केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा किए गए कुल व्यय का वर्ष 1986-87 में 18.9 प्रतिशत व्यय समाज सेवाओं पर किया गया, जो बढ़कर वर्ष 2000-01 में 22.1 प्रतिशत हो गया ।

किन्तु बाद के वर्षों में इस प्रतिशत में कमी आई और यह घटकर वर्ष 2004-05 में 19.3 रह गया था, तत्पश्चात इसमें वृद्धि हुई और वर्ष 2010-11 में यह बढ़कर 25.2 प्रतिशत होने का अनुमान है। केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा किए गये कुल व्यय का औसतन लगभग 10 प्रतिशत शिक्षा और 5 प्रतिशत स्वास्थ्य पर व्यय किया गया। स्पष्ट है कि पिछले 20 वर्षों में शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसी सामाजिक क्षेत्र की अधोसंरचना के विस्तार पर किए जाने वाले व्यय में तुलनात्मक रूप से कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वर्ष 1986-87 में शिक्षा के विस्तार पर केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा कुल 8,651 करोड़ रु. व्यय किए गए थे, जो बढ़कर वर्ष 2000-01 में 67,036 करोड़ और वर्ष 2010-11 में 2,35,035 करोड़ रु. हो गये। इसी प्रकार स्वास्थ्य

सुविधाओं के विस्तार पर वर्ष 1986-87 में 4,566 करोड़ रु. व्यय किए गए थे जो बढ़कर वर्ष 2000-01 में 27,960 करोड़ रु. एवं 2010-11 में 99,738 करोड़ रु. हो गये।

इस विषय में यह तथ्य भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि तालिका- एक में दिए गए आँकड़े सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत किए गए व्यय को दर्शाते हैं। शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसे विषयों पर निजी क्षेत्र द्वारा भी करोड़ों रु. व्यय किए जाते हैं। पिछले कुछ वर्षों से इन मदों पर निजी क्षेत्र द्वारा किए गए व्यय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

6.4 मानव संसाधनों का आर्थिक विकास में महत्व (Importance of human resources in economic development)

किसी भी देश के आर्थिक विकास में भौतिक पूँजी के साथ-साथ मानवीय पूँजी का भी विशेष स्थान है। अब यह माना जाने लगा कि व्यवहार में पूँजी-स्टॉक की वृद्धि पर्याप्त सीमा तक मानव पूँजी-निर्माण पर निर्भर रहती है, जो कि देश के सभी व्यक्तियों का ज्ञान, कुशलता एवं क्षमताएँ बढ़ाने की प्रक्रिया है। "मानवीय साधन का विकास ज्ञान, योग्यता व समाज के व्यक्तियों की कार्यक्षमता में वृद्धि होने वाली एक प्रक्रिया है। आर्थिक अर्थों में, यह कहा जा सकता है कि यह मानवीय पूँजी का संचय है, जिसका अर्थव्यवस्था के विकास में प्रभावशाली विनियोग किया जाता है।" एडम स्मिथ तथा वैबलन जैसे प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री भी उत्पादन में मानव पूँजी के महत्व को स्वीकार करते थे। हार्बिसन, डैनीसन, कैण्ड्रिक, अम्ब्रामोविज, बेकर, बोमैन, कुजनेट्स एवं अन्य अनेक अर्थशास्त्रियों का मत है कि अमेरिकन अर्थव्यवस्था के विकास का मुख्य कारण शिक्षा पर अपेक्षाकृत अधिक धन व्यय करना है।

मानवीय संसाधनों के विकास पर आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने बहुत अधिक महत्व दिया है। इन अर्थशास्त्रियों ने शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य आदि में निवेश पर जोर दिया है जिससे भौतिक पूँजी के समान मानवीय पूँजी का निर्माण हो सके। इन अर्थशास्त्रियों में प्रो. शुल्ज (Schultz), प्रो. हार्बिसन (Harbinson), प्रो. डेनिसन (Denison), प्रो. बैकर (Becker), प्रो. कुजनेट्स (Kuznets) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अर्थव्यवस्था चाहे विकसित हो या विकासशील अथवा अर्ध-विकसित, मानवीय संसाधनों का विकास महत्वपूर्ण है। मानवीय संसाधनों का विकास विकासशील देशों अथवा अर्ध-विकसित देशों में बहुत अधिक है, क्योंकि मानवीय पूँजी के द्वारा ही प्राकृतिक संसाधनों एवं भौतिक पूँजी का उपयोग तीव्र गति से विकास कार्यों में करना सम्भव होता है।

मानवीय संसाधनों का आर्थिक विकास में भूमिका एवं महत्व को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :-

1. राष्ट्रीय आय में वृद्धि (Increase in National Income) – आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि मानवीय संसाधन से श्रम की दक्षता एवं कुशलता में वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप उत्पादन एवं आय में वृद्धि होती है। अमेरिकी अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में किए गए अध्ययनों से यह सिद्ध होता है कि "शिक्षा पर लगाया गया एक डालर राष्ट्रीय आय में बाँधों, सड़कों, फैक्टरियों या अन्य पूँजीगत वस्तुओं पर लगाये गये एक डालर की तुलना में अधिक वृद्धि करता है।"

2. औद्योगिक विकास (Industrial Development) - मानवीय संसाधन का किसी भी देश के औद्योगिक विकास में भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसका कारण यह है कि कुशल एवं दक्ष श्रम औद्योगिक विकास को गति प्रदान करता है। इस सम्बन्ध में प्रो. गैलब्रेथ (Galbraith) ने लिखा है, "औद्योगिक वृद्धि का अधिक बड़ा भाग पूँजी के विनियोजन के स्थान पर मनुष्यों में विनियोजन एवं सुधारों से प्राप्त होता है।" मानवीय संसाधन के विकास से न केवल श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होती है, वरन् प्रबन्धकीय योग्यता एवं जोखिम उठाने की क्षमता में भी सुधार होता है। फलतः औद्योगिक उत्पादन एवं उत्पादकता में तेजी से वृद्धि होती है।

3. भौतिक पूँजी निर्माण (Physical Capital Formation) - भौतिक पूँजी निर्माण के लिए भी मानव पूँजी आवश्यक है। परम्परावादी अर्थशास्त्री एडम स्मिथ ने देश की स्थिर पूँजी के स्टॉक में "समस्त निवासियों की अर्जित योग्यताओं को सम्मिलित किया है।" इसी प्रकार प्रो. वैबलन (Veblen) का मत है कि "तकनीकी ज्ञान तथा कुशलता समुदाय के अभौतिक उपकरण हैं और इनके बिना उत्पादन के क्षेत्र में भौतिक पूँजी का कोई उपयोग नहीं है।" दूसरे शब्दों में, यदि किसी अर्थव्यवस्था में शिक्षा एवं तकनीकी ज्ञान का प्रसार नहीं होता है तो भौतिक पूँजी की उत्पादकता में वृद्धि करना सम्भव नहीं है।

4. विभिन्न साधनों से क्षमतानुसार कार्य- देश के आर्थिक विकास में, अन्य विभिन्न साधनों से क्षमतानुसार कार्य उसी समय लिया जा सकता है, जबकि मानवीय साधन योग्यतानुसार व उचित ढंग से कार्य कर रहे हों। प्राकृतिक संसाधन, पूँजी, तकनीकी ज्ञान आदि उत्पत्ति के सभी साधनों का अधिकाधिक एवं अनुकूलतम उपयोग विकसित मानव शक्ति पर ही निर्भर है। विकसित एवं कुशल मानवीय शक्ति के द्वारा ही उत्पत्ति के विभिन्न साधनों का उनकी क्षमता के अनुसार उपयोग करके आर्थिक विकास को गति

देना सम्भव है। यही कारण है कि आधुनिक युग में मानवीय संसाधनों के विकास पर विशेष जोर दिया जाता है।

5. समस्त संस्थागत साधनों का अध्ययन (Study of all Institutional Factors) – वर्तमान समय में देश के आर्थिक विकास के सन्दर्भ में रीति-रिवाजों, संगठनों, संस्थाओं, परिवहन एवं अधिनियमों आदि समस्त साधनों का अध्ययन किया जाना आवश्यक है, क्योंकि इन सभी का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव आर्थिक विकास पर पड़ता है। मानवीय संसाधन के विकास के द्वारा ही इन साधनों का समुचित अध्ययन सम्भव है।

6. उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के मध्य समन्वय (Coordination between different Factors of Production) – मानवीय साधनों की सहायता से ही उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के मध्य समन्वय स्थापित किया जाता है। इसके साथ ही मानवीय पूँजी के द्वारा ही उत्पत्ति के अन्य साधनों का अनुकूलतम उपयोग सम्भव होता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उच्च-स्तरीय प्रबंधकीय क्षमता ने ही बड़े पैमाने के उत्पादन को सफल बनाया है तथा वैज्ञानिक अनुसंधानों को मूर्त रूप देकर मानव कल्याण में वृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया है। संक्षेप में, आर्थिक विकास के लिए उत्पत्ति के सभी साधनों के मध्य उच्च-स्तरीय समन्वय अत्यावश्यक है। इस सन्दर्भ में प्रो. मायर ने कहा है, "यदि कोई राष्ट्र मानवीय साधनों का विकास करने में असमर्थ रहता है, तब वह अन्य क्षेत्रों में भी विकास नहीं कर सकता।"

7. चहुँमुखी विकास (Multi-dimensional Growth)- चाहे विकास आर्थिक क्षेत्र में हो या सामाजिक अथवा राजनैतिक या सांस्कृतिक क्षेत्र में, मानवीय पूँजी का सर्वोच्च स्थान है। प्रो. हरीसन एवं मायर (Prof. F. Harison and C.A. Myer) ने लिखा है, "यदि कोई राष्ट्र मानवीय साधनों का विकास करने में असमर्थ है तो वह दूसरे क्षेत्रों में भी अधिक विकास नहीं कर सकता, चाहे वह राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र हो या राष्ट्रीय एकता या आर्थिक कल्याण का उच्चा स्तर ही क्यों न हो।"

8. उपभोग-स्तर में वृद्धि (Increase in Consumption-level) - मानव श्रम उत्पत्ति का केवल साधन ही नहीं वरन् साध्य भी है, अर्थात् जो उत्पादन किया जाता है, उसका वह उपभोग भी करता है। शिक्षा, प्रशिक्षण एवं स्वास्थ्य जैसे कार्यों में विनियोग करने से दक्षता के साथ-साथ ज्ञान के प्रति जागृति भी पैदा होती है जिससे उपभोग एवं जीवन-स्तर में सुधार होता है। जनसंख्या में वृद्धि होने से वस्तु की माँग में वृद्धि होती है जिससे बड़ी मात्रा में माल उत्पादन करने के प्रयास किये जाते हैं और उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है जिससे वस्तुओं का लागत व्यय कम होकर वस्तुओं के मूल्य गिर जाते हैं, बिक्री

अधिक होती है तथा उपभोक्ता व उत्पादक दोनों को ही लाभ प्राप्त होते हैं। "यह जानकर अनेक व्यक्तियों को आश्चर्य होता है कि बहुत से उद्योग वर्तमान समाज के शायद अधिकांश उद्योग जनसंख्या की वृद्धि से ही लाभान्वित हुए हैं। इन्हीं उद्योगों से उत्पत्ति ह्रास नियम के स्थान पर उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।"जि

9. श्रम शक्ति की पूर्ति (Supply of Labour Force) – आर्थिक विकास उपलब्ध प्राकृतिक तथा तकनीकी साधनों एवं श्रम शक्ति पर निर्भर करता है। श्रम शक्ति की कुशलता एवं योग्यता ही आर्थिक विकास को प्रभावित करती है। जिस देश के व्यक्ति अधिक कार्यकुशल होंगे वह देश आर्थिक दृष्टि से विकसित एवं सम्पन्न होंगे। इसलिए प्रो. साइमन कुजनेट्स ने कहा है कि, "अन्य बातें समान रहते हुए, जनसंख्या वृद्धि से तात्पर्य है श्रम शक्ति में वृद्धि होना। जनसंख्या का श्रम शक्ति के लिए निश्चित योगदान इस बात पर निर्भर करता है कि जनसंख्या वृद्धि मृत्यु दर में गिरावट आने अथवा जन्म दर में वृद्धि के कारण हुई है।"

6.5 मानव संसाधन के विकास के लिए विनियोग के क्षेत्र (Scope of Investment for the Development of Human Resource)

सामान्यतः मानव संसाधन के विकास से आशय शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य आदि पर निवेश करने से है। इस सन्दर्भ में प्रो. शुल्ज का मत है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से कौशल निर्माण हेतु अथवा मानवीय क्षमताओं में सुधार हेतु विनियोग ही सही अर्थों में मानव-निवेश है। प्रो. शुल्ज ने अनेक देशों का अध्ययन करके निम्न निष्कर्ष निकाले हैं :-

(i) विकास का एक भाग ही भौतिक पूँजी में विनियोग तथा श्रम शक्ति में वृद्धि का परिणाम है।

(ii) विकास का दूसरा भाग उत्पादकता में वृद्धि का परिणाम है, जो अनुसन्धान, प्रशिक्षण तथा शिक्षा के विकास का ही योगदान है।

(iii) तकनीकी विकास से आर्थिक विकास हुआ है। लेकिन तकनीकी विकास स्वयं उच्च शिक्षा प्राप्त एवं प्रशिक्षित जनसंख्या की पर्याप्तता पर निर्भर करता है।

प्रो. राबर्ट सोलो (Solow) ने भी शुल्ज के समान ही अमरीका का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि तकनीकी परिवर्तन शिक्षा के विकास के कारण होता है। अमेरिका की अर्थव्यवस्था के विकास में तकनीकी परिवर्तन का योगदान 2/3 है लेकिन तकनीकी परिवर्तन स्वयं शिक्षा के विकास के कारण होता है।

पश्चिमी देशों के समान ही सोवियत रूस ने भी विकास के लिए मानव संसाधन में विकास की नीति-रीति को अपनाया। रूस ने अपनी योजनाओं में शिक्षा के स्तर में सुधार तथा तकनीकी प्रशिक्षण पर ध्यान दिया। यही कारण है कि रूस ने सभी स्तरों पर आर्थिक विकास किया। किन्तु अल्पविकसित तथा अर्ध-विकसित देशों ने मानवीय पूँजी निर्माण पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। यही इन देशों के पिछड़ेपन का मुख्य कारण है। वास्तविकता यह है कि अल्पविकसित या अर्द्धविकसित राष्ट्र अपने न्यून साधनों के कारण शिक्षा के विकास में कम विनियोग कर पाए हैं। यही कारण है कि अल्पविकसित देशों में जनसंख्या का बड़ा भाग अशिक्षित है, जबकि विकसित देशों में शिक्षा पर विनियोग तुलनात्मक रूप से अधिक होने के कारण ही शत-प्रतिशत लोग शिक्षित हैं। संक्षेप में, मानव संसाधन के विकास के विनियोग के प्रमुख क्षेत्र निम्नानुसार हैं –

1. प्राथमिक एवं तकनीकी शिक्षा तथा प्रशिक्षण (Elementary & Technical Education & Training) – मानव संसाधन की कार्यकुशलता बढ़ाने में शिक्षा एवं प्रशिक्षण का विशेष महत्व है। शिक्षा के द्वारा ही तकनीकी का उपयोग सम्भव होता है जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के एक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक प्रगति उन देशों में हुई है जहाँ शिक्षा का व्यापक विस्तार हुआ है।

प्रो. गैलब्रेथ (J.K. Galbraith) का मत है कि शिक्षा आर्थिक विकास की कुँजी है। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षा के विकास के लिए विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों, प्रयोगशालाओं, उपकरणों, पुस्तकों आदि की सुविधाओं में विस्तार करने के लिए बड़ी मात्रा में निवेश किया जाए।

अर्द्ध-विकसित एवं अल्प-विकसित देशों के सन्दर्भ में प्रो. सिंगर (H.W. Singer) ने यह अनुमान लगाया है कि आर्थिक प्रगति को ठीक प्रकार से चलाने के लिए एक देश को अपनी राष्ट्रीय आय का कम से कम 7 से 8 प्रतिशत तक शिक्षा पर विनियोग करना चाहिए। इसमें 1.5 से 2 प्रतिशत तक अनुसन्धान और विकास तथा 0.5 प्रतिशत वैज्ञानिकों के प्रशिक्षण पर अवश्य होना चाहिए।

इसी प्रकार प्रो. हार्बिसन ने यह अनुमान लगाया है कि अर्ध-विकसित एवं अल्पविकसित देशों में प्रथम अवस्था में जनसंख्या का केवल 2.6 प्रतिशत माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इन राष्ट्रों को चाहिए कि दूसरी अवस्था प्राप्त करने के लिए माध्यमिक शिक्षा की सुविधाओं का तीव्र गति से विस्तार करें तथा कम से कम 5 गुना विस्तार तो अति आवश्यक है। उच्च शिक्षा का विकास भी आर्थिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

तकनीकी प्रशिक्षण एवं प्रौढ़ शिक्षा मानवीय साधनों के विकास कार्यक्रम का दूसरा महत्वपूर्ण भाग है। लोगों को व्यावसायिक कला-कौशल में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। दुर्लभ कौशल के विकास के लिए विशेष महत्व देना चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र के साथ-साथ कृषि विस्तार, औद्योगिक कुशलता बढ़ाने तथा प्रशासकीय एवं प्रबन्धकीय शिक्षा के विस्तार का आयोजन किया जाना चाहिए।

2. स्वास्थ्य सुविधाओं तथा पोषण पर विनियोग (Investment on Health Facilities & Nutrition) - श्रमिकों की कुशलता एवं उनकी उत्पादकता में अच्छे स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण स्थान है। कारण यह है कि श्रमिकों के स्वास्थ्य का उत्पादन की मात्रा एवं गुणवत्ता से सीधा सम्बन्ध है। अल्पविकसित एवं अर्ध-विकसित देशों में व्यापक गरीबी एवं बेरोजगारी के कारण श्रमिकों को पौष्टिक एवं सन्तुलित भोजन प्राप्त नहीं होता जिसका उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। फलतः स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार के लिए औषधालयों, दवाइयाँ, डॉक्टर, उपकरण आदि की बड़े पैमाने पर व्यवस्था आवश्यक है। चूँकि अल्पविकसित देशों में जनसंख्या का एक बड़ा भाग सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। अतः स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार करना एक कठिन एवं जटिल कार्य है। इस कार्य के लिए बड़ी मात्रा में निवेश की आवश्यकता है।

पौष्टिक भोजन का भी स्वास्थ्य से सीधा सम्बन्ध है। गरीबी के कारण इन देशों के लोगों को दो-समय भरपेट भोजन भी प्राप्त नहीं होता है। ऐसी स्थिति में पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराना एक कठिन कार्य है। यह तभी सम्भव है जब गरीब वर्ग के लोगों की क्रयशक्ति में वृद्धि हो। इसके साथ ही स्वास्थ्य एवं पोषक भोजन के प्रति जन-जागृति भी आवश्यक है।

3. मकानों की सुविधाओं पर विनियोग (Investment on Housing Facilities) – मानव संसाधन के विकास के लिए यह आवश्यक है कि अच्छी आवास सुविधाओं का विकास किया जाए। आवास सुविधाओं का उत्पादकता से सीधा सम्बन्ध है। यदि लोगों को रहने-सहने की सुविधा होगी तो वह अच्छी प्रकार कार्य कर सकता है। अर्ध-विकसित एवं अल्पविकसित देशों के लिए यह अति आवश्यक है कि गन्दी बस्तियों की सफाई, आदि का पूरा ध्यान रखा जाए तथा श्रमिकों को स्वस्थ दशा प्रदान की जाए। अतः सरकार या विकास में रुचि रखने वाली अन्य संस्थाओं का कर्तव्य है कि वे सहायता प्राप्त मकान निर्माण योजनाएँ बनाएँ और कार्यान्वित करें जिससे लोगों को आवास सुविधाएँ उपलब्ध कराई जा सकें। इसके साथ-साथ निजी आवास को भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए ।

गरीब वर्ग के लोगों को आवास सुविधाएँ उपलब्ध कराना एक कठिन एवं जटिल कार्य है। इसे सरकार, व्यापारिक बैंक, वित्तीय संस्थाओं के साथ-साथ निजी क्षेत्र के सहयोग से ही पूर्ण किया जा सकता है। कम ब्याज पर ऋण, गरीबों को अनुदान, निशुल्क भूमि, करों में छूट आदि के द्वारा भी मकानों के निर्माण कार्य को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

6.6 मानव संसाधन के विकास के लिए निवेश की सीमाएँ (Limitations of Investment for the Development of Human Resources)

मानव संसाधन का विकास और उसमें विनियोग तीव्र आर्थिक विकास की एक महत्वपूर्ण शर्त है। किन्तु, अर्ध-विकसित एवं अल्पविकसित देशों की अपनी कुछ सीमाएँ हैं जिनके कारण वांछित दर से मानव संसाधन का विकास नहीं होता है। प्रमुख सीमाएँ निम्न प्रकार हैं-

(1) मानव संसाधन के विकास के क्षेत्र में सबसे बड़ी कठिनाई वित्त की है। देश में शिक्षा सुविधाओं के विस्तार के लिए बड़ी मात्रा में वित्त आवश्यक है। इसके साथ ही तकनीक का आयात करने के लिए विदेशी विनिमय कोषों की भी आवश्यकता होती है जो देश में उपलब्ध नहीं होते हैं एवं उनकी व्यवस्था करनी पड़ती है। सरकार की आय के सीमित होने के कारण वित्तीय व्यवस्था करना एक कठिन कार्य है।

(2) अर्थव्यवस्था का स्वरूप मानव पूँजी निर्माण की द्वितीय सीमा है। अधिकांश अल्पविकसित देश कृषि प्रधान होते हैं। इनमें नव-प्रवर्तन और कौशल निर्माण की सम्भावनाएँ कम होती हैं। बुनियादी सुविधाओं के अभाव के कारण भी मानव संसाधन से सम्बन्धित कार्यक्रमों को पूरा करना कठिन होता है।

(3) सामाजिक और राजनैतिक ढाँचा देश के विकास में बाधक होता है। अर्थात् रूढ़िवादिता एवं परम्परागत सामाजिक ढाँचे के कारण नई तकनीक को अपनाने के प्रति उदासीनता पाई जाती है। विकास, ज्ञान, कौशल के प्रति जनसाधारण में पाई जाने वाली उदासीनता के लिए देश का सामाजिक एवं सांस्कृतिक ढाँचा ही उत्तरदायी है।

(4) मानव संसाधन विकास या मानव पूँजी निर्माण की एक अन्य समस्या है दीर्घकाल में प्रतिफल देना। कौशल निर्माण के प्रमुख तीन तत्वों शिक्षा, प्रशिक्षण एवं अनुभव को साकार रूप देने के लिए एक लम्बे समय तक विनियोग करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त इनमें विनियोग लगातार आधार पर करना होता है।

(5) मानव संसाधन के विकास में प्रेरणा का अभाव भी एक महत्वपूर्ण सीमा है। अर्ध-विकसित एवं अल्पविकसित देशों में न तो सरकार और न ही व्यक्ति इस दिशा में पर्याप्त

रुचि लेते हैं। परम्परागत सामाजिक व्यवस्था के कारण सभी वर्गों में उदासीनता व्याप्त रहती है। अतः मानव संसाधन से सम्बन्धित सभी कार्यक्रमों में सरकार, स्थानीय संस्थाएँ, व्यापारिक निगमों, बैंक, निजी क्षेत्र की कम्पनियाँ, व्यापारिक प्रतिष्ठान, प्रत्येक व्यक्ति को रूचि लेना चाहिए।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि अर्ध-विकसित एवं अल्पविकसित देशों में मानव संसाधन के विकास हेतु विनियोजन एक कठिन कार्य है। गरीबी एवं वित्तीय साधनों की सीमितता ने इस कार्य को और अधिक जटिल बना दिया है। यही कारण है कि इन देशों में मानव संसाधन विकास एक चुनौती बन गई है। अतः आवश्यकता है कि केन्द्र एवं राज्य सरकारों के साथ-साथ निजी क्षेत्र के व्यावसायिक प्रतिष्ठानों को इस दिशा में विशेष रुचि लेना चाहिए। विश्व बैंक जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं एवं विकसित देशों को भी इस दिशा में उदारतापूर्वक वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना चाहिए।

मानव संसाधन विकास के माप के आधार

मानव संसाधन विकास तथा मानव पूँजी निर्माण के मापदण्ड के बारे में भी कुछ मापदण्डों का विकास हुआ है। ये मापदण्ड मुख्यतः शिक्षा में निवेश का उत्पादकता पर पड़ने वाले प्रभाव से सम्बन्धित हैं। प्रमुख मापदण्ड निम्न प्रकार है-

(1) प्रतिफल दर का मापदण्ड (The Rate of Return Criterion) - प्रतिफल दर का मापदण्ड मुख्यतः प्रो. टी.डब्ल्यू. शुल्ज (T.W. Sehultz) एवं प्रो. बैकर (G.S. Becker) ने विकसित किया है। निवेश के रूप में शिक्षा के दो अंश होते हैं, यथा भावी उपभोग अंश (future consumption component) तथा भावी अर्जन अंश (future earnings component) I कुशलता तथा ज्ञान में निवेश भावी अर्जनों को बढ़ाता है, जबकि शिक्षा से प्राप्त संतुष्टि उपभोग अंश है। "स्थायी उपभोक्ता-अंश के रूप में, शिक्षा भावी प्रतियोगिताओं का स्रोत है, जो किसी भी प्रकार मापी गई राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं है।" इसलिए शिक्षा में निवेश के प्रतिफल का हिसाब लगाते समय भावी अर्जन अंश पर ध्यान दिया जाता है। इसके लिए विधि यह है कि एक जैसे पेशों में नियुक्त अधिक शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों की औसत जीवनकालिक कमाई की कम शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की जीवनकालिक औसत कमाई से तुलना। उदाहरण के लिए बैक्कर ने हिसाब लगाया था कि एक गोरे शहरी पुरुष के लिए संयुक्त राज्य अमरीका में कॉलेज शिक्षा पर निवेश के प्रतिफल की दर 1940 में 12.5% और 1950 में 10% थी। परन्तु कर काट लेने के बाद 1940 और 1950 में वह 9% थी। इस आगणन में विद्यार्थी पर पड़ने वाली प्रत्यक्ष लागत,

अध्ययन काल में परित्याक्त (Foregone) आय तथा अध्ययन हेतु महाविद्यालय की लागत का अंश सम्मिलित है।

संक्षेप में, कुशलता तथा ज्ञान (शिक्षा) में निवेश भावी अर्जन को बढ़ाता है। अतः शिक्षा में निवेश के प्रतिफल को निकालने के लिए एक जैसे पेशे में नियुक्त अधिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की औसत जीवनकालिक कमाई की कम शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की जीवनकालिक कमाई से तुलना की जाती है। किन्तु, इस मापदण्ड से गणना करने में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं, जैसे -

(i) इस विधि के अन्तर्गत प्रत्यक्ष भौतिक लाभों (मौद्रिक) को ही मापा जाता है, जबकि शिक्षा से प्राप्त बाहरी मितव्ययिताओं (जैसे शिक्षा के स्तर में सुधार के फलस्वरूप देश को प्राप्त प्रत्यक्ष एवं परोक्ष लाभ) की गणना नहीं हो पाती।

(ii) मनुष्य की अर्जन शक्ति पर केवल उसकी विश्वविद्यालयीन शिक्षा का ही प्रभाव नहीं पड़ता है बल्कि वह प्राकृतिक योग्यता, सामाजिक प्रतिष्ठा, पारिवारिक सम्बन्ध, अनुभव आदि से भी प्रभावित होती है।

(iii) कौशल निर्माण हेतु किये गये विनियोजन के प्रतिफल केवल सम्बद्ध व्यक्तियों की आय ही नहीं बढ़ाते, बल्कि अर्थव्यवस्था की कुल उत्पादन क्षमता में भी वृद्धि कर देते हैं।

(iv) यह मापदण्ड विविध वर्गों के सामूहिक प्रयत्नों का सही आकलन नहीं कर पाता है।

(v) यह मापदण्ड यह बताने में भी असमर्थ है कि आर्थिक विकास के लिए कितनी और किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता होती है।

(2) सकल राष्ट्रीय आय में शिक्षा के योगदान का मापदण्ड (The Criterion of Contribution of Education to Gross National Income) -

इस मापदण्ड के अनुसार शिक्षा में निवेश करने पर निश्चित समय में सकल राष्ट्रीय आय में जितनी वृद्धि होती है उसकी गणना की जाती है। प्रो. शुल्ज (T.W. Schultz) ने सन् 1900 से 1956 तक की अवधि में अमरीका में इस मापदण्ड का प्रयोग किया और निष्कर्ष निकाला कि भौतिक पूँजी में निवेश की अपेक्षा शिक्षा में विनियोजन का 3.5 गुना अधिक योगदान रहा है। प्रो. शुल्ज ने तो समय के विभिन्न चरणों पर शिक्षागत पूँजी का भी हिसाब लगाया था। उनके अनुसार शिक्षागत पूँजी के स्टॉक का भौतिक पूँजी के स्टॉक से अनुपात सन् 1900 के 22 प्रतिशत से बढ़कर 1957 में 42 प्रतिशत हो गया था। प्रो. पंचमुखी (P.R. Panchmukhi) ने शुल्ज की विधि का प्रयोग भारत के लिए किया है। इस मापदण्ड के प्रयोग में भी अनेक कठिनाइयाँ आती है, जो कि निम्न प्रकार हैं -

(i) अल्पविकसित देशों में अधिकांश युवकों को स्कूल की शिक्षा नहीं मिलती है, परन्तु वे पारिवारिक व्यवसायों में अर्जन करते हैं। इस प्रकार शिक्षा की वास्तविक लागत स्कूल जाने की अवधि की परित्यक्त कमाई का परिणाम हो सकती है।

(ii) यह मापदण्ड राष्ट्रीय आय पर शिक्षागत पूँजी निवेश के योगदान को ठीक-ठीक नहीं मापता है।

(iii) श्रम शक्ति के सम्भाव्य सदस्यों को काम की बजाय स्कूल में भेजना न केवल विद्यार्थियों या उनके परिवारों की निजी लागत बल्कि सामाजिक लागत भी है। किन्तु, राष्ट्रीय उत्पादन में सम्भाव्य वृद्धि अप्राप्त रहती है।

संक्षेप में, इस मापदण्ड के बारे में प्रो. बेलोग का मत है कि शिक्षा की लाभदायकता के बारे में किए गए आगणन तकनीकी आर्थिक रूप में न केवल त्रुटिपूर्ण हैं वरन् राजनैतिक तौर से अनैतिक भी है।

(3) अवशेष साधन मापदण्ड (Residual Factor Criterion)- मानव संसाधन विकास के लिए अवशेष साधन मापदण्ड का प्रयोग अनेक अर्थशास्त्रियों द्वारा किया गया, जिनमें प्रो. सालो, प्रो. केन्ड्रिक डेनिसन, प्रो. जार्गेन्सन, प्रो. कुजनेट्स आदि प्रमुख हैं। इस मापदण्ड के अनुसार राष्ट्रीय उत्पादन में दो प्रकार के साधनों का योगदान रहता है, यथा-एक पूँजी एवं श्रम और दूसरा अन्य जिन्हें अवशेष साधन कहा जाता है। अवशेष साधन के अन्तर्गत शिक्षा, अनुसंधान, प्रशिक्षण एवं पैमाने की मितव्ययिताएँ आदि के साथ-साथ कुछ अन्य तत्व भी सम्मिलित रहते हैं जो मानव उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। प्रो. डेनिसन ने अमरीका का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है कि सन् 1929 से 1957 तक की कुल वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि में शिक्षा का योगदान 23 प्रतिशत था। जहाँ तक 'अवशेष' साधन के योगदान का प्रश्न है डेनिसन ने इसे राष्ट्रीय आय की कुल वृद्धि के 31 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी माना है। यह 20 प्रतिशत ज्ञान की उन्नति के प्रभाव के कारण तथा 11 प्रतिशत राष्ट्रीय मार्केटों की वृद्धि के परिणामस्वरूप पैमाने की मितव्ययिताओं के कारण था।

अवशेष साधन मापदण्ड में भी अनेक कमियाँ हैं जिसके कारण मानव संसाधन विकास की गणना सही ढंग से नहीं हो पाती है। इस मापदण्ड की प्रमुख कमियाँ निम्न प्रकार हैं -

(i) अवशेष साधन एक बहुत विस्तृत शब्द है जिसमें विभिन्न प्रकार के साधन जैसे पैमाने की मितव्ययिताएँ, तकनीकी परिवर्तन, शिक्षा, अन्वेषण और प्रशिक्षण शामिल किए गए हैं। ये साधन कसौटी को जटिल बना देते हैं।

(ii) अवशेष साधन में पूँजी परिसम्पत्तियों में कुछ सुधार भी शामिल किए जा सकते हैं जो मानव ज्ञान एवं कौशल में सुधारों के कारण हो सकते हैं।

(iii) यह कसौटी व्यवहारिक तथा अव्यवहारिक शिक्षा, अथवा शिक्षा की गुणवत्ता या विषय-वस्तु में कोई भेद नहीं करती है।

(iv) जार्गेन्सन तथा ग्रिलिचिज अपने अध्ययन में बताते हैं कि 'अवशेष' जिसे डेनिसन ने 'ज्ञान की उन्नति' के कारण माना है, थोड़ा ही है, बहुत अधिक नहीं है। यह तथ्य कि अवशेष थोड़ा है, लक्ष्य करता है कि आर्थिक वृद्धि में निवेश के योगदान की बड़ी मात्रा में क्षतिपूर्ति निवेश के निजी प्रतिफलों से हो जाती है।

(v) अवशेष साधन मापदण्ड ऐसे उत्पादन फलन पर आधारित है जिसमें पैमाने के स्थिर प्रतिफल पाए जाते हैं। वास्तविकता में एक विकसित अर्थव्यवस्था में बढते प्रतिफल पाए जाते हैं।

(vi) इस मापदण्ड में पूँजी का आर्थिक विकास में योगदान को कम आँका गया है।

(4) सम्मिश्र-सूचकांक मापदण्ड (The Composite Index Criterion) - मानव संसाधन विकास का यह सर्वाधिक लोकप्रिय मापदण्ड है और इसका उपयोग वर्तमान में विश्व के प्रायः सभी देशों में किया जा रहा है। इस मापदण्ड का विकास प्रो. हार्बिसन एवं प्रो. मायर ने किया है। सम्मिश्र सूचकांक को 75 देशों को श्रेणीबद्ध करके तथा उनको मानव स्रोत विकास के चार स्तरों का समूह बनाकर प्रयुक्त किया जाता है। ये समूह हैं (a) अल्पविकसित, (b) आंशिक विकसित, (c) अल्प उन्नत, और (d) उन्नत । इन सूचकांकों के आधार पर आर्थिक विकास के स्तर का अध्ययन किया जाता है। संमिश्र सूचकांकों का विस्तृत अध्ययन पृथक अध्याय में किया गया है।

मानव विकास मापदण्ड

आर्थिक विकास को मापने के लिए राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय के विकल्प के रूप मानव विकास मापदण्ड का विकास किया गया है। इस दिशा में एवरैट ई. हैजन (Everett E. Hagen), डोनाल्ड एच. नीवैरोस्की (Donald H. Niewiaroski), इर्मा एडलमैन (Irma Adelman) और सिन्थिया टाफ्ट मौरिस (Cynthia Taft Morris) तथा हार्बिन्सन (Harbinson), मैरुहनिक (Maruhnic), और रैजनिक (Resnick) ने सराहनीय कार्य किया। मौरिस डि. मौरिस (Morris D.Morris) ने जीवन के भौतिक गुणों के सूचकांक (Physical Quality of Life Index) की संकल्पना विकसित की है। इसी प्रकार पॉल स्ट्रीटन (Paul Streetan) ने मूल आवश्यकता दृष्टिकोण (Basic Need

Approach) को अपनाने पर जोर दिया है। इन प्रयासों को मूर्त रूप देते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के विकास कार्यक्रम (United Nations Development Programme) द्वारा मानव विकास सूचकांक (Human Development Index) तैयार किए गए। मानव विकास सूचकांक सर्वप्रथम 1990 की Human Development Report में प्रकाशित हुआ था और इसे महबूब उल हक (Mahbub ul Haq) के निर्देशन में तैयार किया गया था। गत वर्षों में इस मापक के विस्तार के साथ-साथ इसे और परिष्कृत बनाया गया है। यही नहीं, इसके साथ-साथ मानव विकास के कुछ और भी सम्बद्ध सूचकांक विकसित किए गए हैं जिन्हें बाद के वर्षों में प्रकाशित होने वाली Human Development Reports में प्रस्तुत किया गया है।

मानव विकास का अर्थ

मानव विकास मापदण्ड को आर्थिक विकास को मापने के विकल्प के रूप में विकसित किया गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार मानव विकास के अन्तर्गत लम्बा एवं स्वस्थ जीवन यापन, शिक्षा प्राप्ति, अच्छा जीवन स्तर, मानवाधिकारों की सुरक्षा जैसे विभिन्न तत्वों को सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार मानव विकास सूचकांक एक ऐसा मापदण्ड है जिससे कल्याण के स्तर का युक्तियुक्त माप सम्भव हो सके। इस सन्दर्भ में प्रो. पॉल स्ट्रीटन ने ठीक ही लिखा है कि मानव विकास की संकल्पना मानव को कई दशकों के अंतराल के बाद पुनः केन्द्रीय मंच पर प्रस्थापित करती है। इन बीते दशकों में तकनीकी संकल्पनाओं की भूल भुलैया में यह बुनियादी दृष्टि अस्पष्ट बनी रही थी।

प्रो. महबूब उल हक के अनुसार, "आर्थिक संवृद्धि और मानव विकास की विचारधारा में परिभाषात्मक अंतर यह है कि जहाँ आर्थिक संवृद्धि में केवल एक विकल्प अर्थात् आय पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाता है वहाँ 'मानव विकास' में सभी मानवीय विकल्पों का विस्तार आ जाता है। ये विकल्प चाहे आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा राजनीतिक हों।" यह कभी-कभी कहा जाता है कि आय में वृद्धि से अन्य सभी विकल्पों का विस्तार होता है। ऐसा हो तो सकता है, लेकिन विभिन्न कारणों से ऐसा प्रायः होता नहीं है, जैसे प्रथम, आय का वितरण असमान हो सकता है। अतः जिन लोगों की आय तक पहुँच बहुत कम है अथवा बिलकुल नहीं है उनके विकल्प बहुत सीमित होंगे। इस स्थिति में आर्थिक संवृद्धि का रिसाव नहीं होता। द्वितीय, जो अधिक महत्वपूर्ण है, यह है कि समाज और शासकों द्वारा ऐसी राष्ट्रीय प्राथमिकताएँ निर्धारित की जा सकती हैं अथवा समाज का राजनैतिक ढाँचा ऐसा हो सकता है कि आय के विस्तार से लोगों के सामने विकल्पों का विस्तार न हो ।

6.7 मानव विकास की आवश्यकता (Need for human development)

मानव विकास के लिए दिए जाने वाले प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं

(1) आर्थिक विकास की प्रक्रिया का अन्तिम लक्ष्य मानव विकास है, जबकि राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि केवल साधन मात्र है। दूसरे शब्दों में, आर्थिक विकास की संपूर्ण प्रक्रिया का अन्तिम उद्देश्य स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों की वर्तमान और भावी पीढ़ियों को लक्ष्य के रूप में देखना, मानव की स्थितियों में सुधार करना और लोगों के विकल्पों में विस्तार करना है। मामाने पर संध

(2) मानव विकास (जन-शक्ति) ऊँची उत्पादकता का साधन है। भली प्रकार से पोषित, स्वस्थ, शिक्षित, कुशल और सतर्क श्रम शक्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्पादक परिसंपत्ति है। अतः पोषण, स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा में निवेश उत्पादकता के आधार पर उचित एवं अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

(3) मानव विकास से पुनरुत्पादन दर (जन्म दर) को धीमा करके परिवार के आकार को छोटा करने में सहायता पहुँचाता है। यह सभी विकसित देशों का अनुभव है कि शिक्षा के स्तर (विशेष रूप से लड़कियों के शिक्षा के स्तर) में सुधार, अच्छी स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता और बाल मृत्यु दर में कमी से जन्म दर में गिरावट आती है। शिक्षा में सुधार से लोगों में छोटे परिवार के फायदों के प्रति चेतना पैदा होती है और स्वास्थ्य में सुधार व बाल मृत्यु दर में कमी से लोग ज्यादा बच्चों की जरूरत महसूस नहीं करते ।

(4) भौतिक पर्यावरण की दृष्टि से भी मानव विकास अत्यधिक महत्वपूर्ण है। गरीबी में कमी से वनों के विनाश, रेगिस्तान के विस्तार और भूक्षरण में कमी आती है। जनसंख्या में वृद्धि और जनसंख्या का घनत्व किस तरह पर्यावरण को प्रभावित करते हैं यह विवाद का विषय है। परम्परागत दृष्टिकोण यह है कि इनका पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है, लेकिन पॉल स्ट्रीटन ने हाल के शोध कार्यों के हवाले से स्पष्ट किया है कि भूमि अधिकार सुरक्षित होने की स्थिति में जनसंख्या में तेजी के साथ वृद्धि और जनसंख्या के ऊँचे घनत्व से मिट्टी और वनों का संरक्षण होता है।

(5) गरीबी में कमी एवं जीवन स्तर में सुधार से एक स्वस्थ समाज के गठन, लोकतंत्र के निर्माण और सामाजिक स्थिरता में सहायता मिलती है। फ

(6) मानव विकास से एक सुखद एवं सम्पन्न समाज की स्थापना होती है जिससे सामाजिक उपद्रवों को कम करने में सहायता मिलती है और इससे राजनीतिक स्थिरता बढ़ती है।

मानव विकास के सूचकांकों की माप

सन् 1990 से संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) अपनी वार्षिक मानव विकास रिपोर्ट में मानव विकास सूचक (HDI) के रूप में मानव विकास के माप को प्रस्तुत कर रहा है। मानव विकास निर्देशांक तीन सामाजिक सूचकों का एक मिश्रित सूचक है, यथा जीवन संभाव्यता, वयस्क शिक्षा तथा स्कूलों के वर्ष । इसमें वास्तविक प्रति व्यक्ति आय तथा सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का भी ध्यान रखा जाता है। अतः मानव विकास निर्देशांक तीन आधारभूत पहलुओं में उपलब्धियों का एक मिश्रित सूचक है : एक लम्बा व स्वस्थ जीवन, ज्ञान तथा उत्कृष्ट जीवन-स्तर ।

किसी देश के मानव विकास निर्देशांक का मूल्य निकालने के लिए तीन सूचकों को लिया जाता

(1) दीर्घायु, जिसे जन्म के समय जीवन की संभाव्यता द्वारा मापा जाता है : 25 वर्ष तथा 85 वर्ष ।

(2) शैक्षिक योग्यताओं की प्राप्ति, जिसे वयस्क शिक्षा (दो-तिहाई भार) तथा प्राथमिक, माध्यमिक व क्षेत्रीय विद्यालयों में उपस्थित अनुपातों (एक-तिहाई भार) के मिश्रण के रूप में मापा जाता है, उदाहरणार्थ, वयस्क शिक्षा : 0% से 100% तथा दाखिलों का मिश्रित अनुपात 0% से 100% ।

(3) जीवन स्तर, जिसे डालर की क्रय शक्ति समता (purchasing power parity) पर आधारित वास्तविक प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (GDP) द्वारा मापा जाता है।

मानव विकास निर्देशांक (HDI) जीवन की संभाव्यता सूचक, शैक्षिक प्राप्तियाँ सूचक तथा समायोजित वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP सूचक का सरल औसत सूचक है। इसकी गणना इन तीनों संकेतकों के योग को 3 से विभाजित कर निकाली जाती है। इसमें प्रत्येक चर का न्यूनतम तथा अधिकतम मूल्य स्थिर है, जिसे घटाकर शून्य (0) तथा एक (1) के बीच पैमाने पर रखा गया है तथा प्रत्येक देश इस पैमाने के किसी न किसी बिन्दु पर आता है।

प्रत्येक देश का मानव विकास निर्देशांक (HDI) मूल्य यह दर्शाता है कि उसे अपने कुछ परिभाषित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कितना प्रयास करना है, यथा 85 वर्ष के औसत जीवन की अवधि, सभी के लिए शिक्षा की उपलब्धि तथा उत्कृष्ट जीवन स्तर। HDI एक दूसरे के संबंध में विभिन्न देशों का क्रम (rank) तय करता है। किसी भी देश का HDI क्रम विश्व आवंटन के बीच ही तय होता है। उदाहरणार्थ, यह क्रम प्रत्येक विकसित तथा

विकासशील देशों से संबंधित अपने HDI मूल्य पर आधारित है जिसके लिए उस देश द्वारा HDI न्यूनतम मूल्य शून्य (0) से HDI अधिकतम मूल्य एक (1) तक प्रयास किए गए। ऐसे देश जिनका HDI मूल्य 0.5 से कम है उन्हें निम्न स्तर के मानव विकास क्रम में रखा जाता है तथा 0.5 से 0.8 मूल्य वाले देशों को मध्यम तथा 0.8 से ऊपर HDI मूल्य वाले देश उच्च स्तर में गिने जाते हैं। HDI में देशों को उनके प्रति व्यक्ति GDP के आधार पर भी क्रमबद्ध किया जाता है।

मानव विकास रिपोर्ट 1996 में 174 विकसित एवं विकासशील देशों से संबंधित वर्ष 1993 की वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP के क्रम, HDI मूल्य तथा HDI क्रम प्रस्तुत किए गए हैं। जिन 174 देशों के HDI की गणना की गई थी उनमें से 57 उच्च विकास वर्ग (0.8 से 0.95) में थे; 69 मध्यम वर्ग (0.5 से 0.79) में तथा 48 निम्न वर्ग (0.48 से 0.2) में थे। कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा जापान HDI में उच्च वर्ग के 26 विकसित देशों में सबसे आगे थे। उस वर्ग में सबसे अन्तिम क्रम 57 पर रूसी संघ था। 26 विकासशील देशों में हांगकांग, साइप्रस, बारबाडोस प्रथम तीन क्रम में थे। मध्यम वर्ग में विघटित सोवियत संघ के अधिकांशतः देशों सहित 16 विकसित तथा 53 विकासशील देश थे। निम्न वर्ग में 48 विकासशील देश थे जिनमें भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश, नेपाल आदि देश थे।

मानव विकास प्रतिवेदन-2010

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) द्वारा वर्ष 1991 से प्रतिवर्ष प्रकाशित की जा रही मानव विकास रिपोर्टों के अनुसार भारत ने मानव विकास के क्षेत्र में निरन्तर सुधार किया है और इसे "मध्यम मानव विकास" वाले देशों की श्रेणी में शामिल किया गया है, किन्तु स्वास्थ्य और शिक्षा से संबंधित मानव विकास संकेतकों के कुछ घटक, आय में सुधार के घटक से भी पीछे रहे हैं। मानव विकास सूचकांक (HDI) और लिंग विकास सूचकांक (GDI) के सन्दर्भ में भारत का स्थान हमारे क्षेत्र के कुछ देशों जैसे चीन, श्रीलंका, इंडोनेशिया आदि की तुलना में नीचे रहा है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की नवीनतम मानव विकास रिपोर्ट (HDR) 2010 के अनुसार वर्ष 2008 के मानव विकास सूचकांक (HDI) में भारत 169 देशों की सूची में से 119वें स्थान पर है तथा वर्ष 2009 की रिपोर्ट में 182 देशों की सूची में भारत का 134वाँ स्थान था। इसी प्रकार लिंग विकास सूचकांक (GDI) के मामले में 144 देशों में भारत का स्थान 103 वाँ रहा है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के मानव विकास निर्देशांक (HDI) 2010 के अनुसार मानव तथा लिंग विकास के सन्दर्भ में भारत की वैश्विक स्थिति को तालिका-II में प्रस्तुत किया गया है -

तालिका -II में दर्शाए गए संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) द्वारा प्रकाशित मानव विकास सूचकांक 2008 के विश्लेषण के अनुसार 169 देशों में से भारत को 119 वाँ स्थान दिया गया है तथा वर्ष 2008 के लिए 0.519 एच.डी.आई. के साथ इसे मध्यम मानव विकास श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है। इसी प्रतिवेदन के अनुसार नार्वे को 0.938 सूचकांक (HDI) के साथ प्रथम एवं आस्ट्रेलिया को 0.937 सूचकांक के साथ द्वितीय स्थान दिया गया है। इस क्रम में चीन 89वें, श्रीलंका 91वें, इण्डोनेशिया 108वें, पाकिस्तान 125वें, तथा बांग्लादेश 129वें स्थान पर है। इसी प्रकार लिंग विकास सूचकांक (GDI) के

सन्दर्भ में 144 देशों में भारत वर्ष 2002 के लिए 0.938 जी.डी.आई. के साथ 103वें स्थान पर रहा है। दूसरी ओर नार्वे 0.937 सूचकांक (GDI) के साथ प्रथम तथा आस्ट्रेलिया को 0.945 सूचकांक के साथ तृतीय स्थान दिया गया है। इसी क्रम में श्रीलंका 73वें, बंगलादेश 110वें, नेपाल 116वें तथा पाकिस्तान 120वें स्थान पर है।

तालिका-II

मानव विकास के सन्दर्भ में भारत की वैश्विक स्थिति

देश	**मानव विकास शोधकर्ता (HDI)**		**एच.डी.आई. रैंक**	
	1997	**2008**	**1997**	**2008**
नार्वे	0.927	0.938	2	1
आस्ट्रेलिया	0.922	0.937	4	2
श्रीलंका	0.721	0.658	76	91
चीन	0.701	0.663	79	89
इंडोनेशिया	0.681	0.6	88	108
भारत	0.545	0.519	112	119
पाकिस्तान	0.508	0.49	116	125
बांग्लादेश	0.44	0.469	123	129
सम्पूर्ण विश्व		**0.624**	-	-

स्रोत: मानव विकास रिपोर्ट 1999 आर्थिक समीक्षा 2004-2005, पृष्ठ 224, एवं Human Development Report 2010, Economic Survey 2010-11, Govt. of India. Oxford University Press, New Delhi, 2011. Table-12.1., Page 292

भारत में मानव विकास के बुनियादी संकेतक

मानव विकास को आर्थिक विकास की माप के विकल्प के रूप में विकसित किया गया है। भारत में भी आर्थिक विकास के लक्ष्यों की तीव्र गति से प्राप्ति के उद्देश्यों से पंचवर्षीय योजनाओं में मानव संसाधन विकास (Human Resource Development) की आवश्यकता को सिद्धान्त रूप में स्वीकार किया गया है। देश में मानव विकास के बुनियादी संकेतकों में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा, साक्षरता के दर, जन्म दर, मृत्यु दर और शिशु मृत्यु दर को सम्मिलित किया जाता है। भारत में मानव विकास बुनियादी संकेतक तालिका ॥। में दर्शाये गये हैं :-

तालिका-III

भारत में मानव विकास के बुनियादी संकेतक (1951 से 2009)

वर्ष	जन्म पर जीवन की प्रत्याशा (वर्ष)	साक्षरता दर (प्रतिशत)	जन्म दर (प्रति हजार)	मृत्यु दर (प्रति हजार)	शिशु मृत्यु दर (प्रति हजार)
1951	32.1	18.1	40.8	25.1	146
1961	41.3	28.3	41.7	22.8	146
1971	45.6	34.5	41.2	19	129
1981	50.4	43.6	33.9	12.5	110
1991	59.4	52.2	29.5	9.8	80
2009	63.5	74	22.5	7.3	50

स्रोत : भारत सरकार, आर्थिक समीक्षा 2004-05 एवं 2010-11 से संकलित

तालिका-III में दर्शाये गये मानव विकास के बुनियादी संकेतकों से स्पष्ट है कि भारत में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण सेवाओं की बढ़ी हुई सुलभता के फलस्वरूप अखिल भारतीय जन्म दर, मृत्यु दर तथा शिशु मृत्यु दर में गिरावट आई है और साक्षरता के स्तर में भी उल्लेखनीय सुधार हुआ है। देश में जन्म पर जीवन की प्रत्याशा वर्ष 1951 में

केवल 32.1 वर्ष थी जो कि वर्ष 2009 में बढ़कर 63.5 वर्ष हो गई है। इस अवधि में जन्म दर 40.8 प्रति हजार से घटकर 22.5 प्रति हजार, मृत्यु दर 25.1 प्रति हजार से घटकर 7.3 प्रति हजार तथा शिशु मृत्यु दर 146 से घटकर 50 प्रति हजार हो गई है। साक्षरता दर वर्ष 1951 में केवल 18.1 प्रतिशत थी जो कि बढ़कर 1991 में 52.2 प्रतिशत तथा 2001 में 64.8 प्रतिशत एवं वर्ष 2011 में 74.0 प्रतिशत हो गई है। इसके परिणामस्वरूप भारत का मानव विकास सूचकांक (HDI) ऊपर उठा है। संक्षेप में, भारत में मानव विकास के बुनियादी संकेतकों से स्पष्ट होता है कि देश में हुए आर्थिक विकास के फलस्वरूप लोगों के जीवन स्तर में सुधार परिलक्षित हुआ है।

प्रमुख राज्यों में मानव विकास के बुनियादी संकेतक :-

भारत के विभिन्न राज्यों में मानव विकास के बुनियादी संकेतक (सूचक) पर्याप्त भिन्नता दर्शाते हैं। इसका ब्यौरा तालिका IV में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका-IV

भारत के प्रमुख राज्यों में मानव विकास के बुनियादी संकेतक

राज्य		साक्षरता दर (प्रतिशत)	जन्म दर (प्रति हजार)	मृत्यु दर (प्रति हजार)	शिशु मृत्यु दर (प्रति हजार)	जन्म पर जीवन प्रत्याशा वर्ष (2002-06)	
		2011	2008	2008	2008	पुरुष	महिला
1	आंध्र प्रदेश	67.7	18.4	7.5	52	62.9	65.5
2	असम	73.2	23.8	8.6	64	58.6	59.3
3	बिहार	63.8	28.9	7.3	56	62.9	60.4
4.	गुजरात	79.3	22.6	6.9	50	62.9	65.2
5.	हरियाणा	76.6	23.6	6.9	54	65.9	66.3
6	कर्ना	75.6	19.8	7.4	45	63.6	67.1

	टक						
7	केरल	93.9	14.6	6.6	12	71.4	76.3
8	मध्य प्रदेश	82.9	28	8.6	70	58.1	57.9
9	महा राष्ट्र	70.6	17.9	6.6	33	66	68.4
10	उड़ीसा	73.5	21.4	9	69	59.5	59.6
11	पंजाब	76.7	17.3	7.2	41	68.4	70.4
12	राज स्थान	67.1	27.5	6.8	63	61.5	62.3
13	तमिलनाडु	80.3	16	7.4	31	65	67.4
14	उत्तर प्रदेश	69.7	29.1	8.4	67	60.3	59.5
15.	पश्चिम बंगाल	77.1	17.5	6.2	35	64.1	65.8
	भारत	**74.0**	**22.8**	**7.4**	**53**	**62.6**	**64.2**

स्रोत: भारत की जनगणना 2011, अनंतिम जनसंख्या योग, 2011 का पेपर 1. भारत श्रृंखला 1, पृष्ठ 110 और आर्थिक सर्वेक्षण 2010-11, तालिका-9.1, पृष्ठ ए 119.

तालिका - IV के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि केरल में साक्षरता का स्तर 93.9 प्रतिशत तथा जन्म के समय जीवन प्रत्याशा पुरुषों में 71.4 वर्ष और महिलाओं में 76.3 वर्ष है। इसी प्रकार केरल में जन्म दर 14.6 प्रति हजार, मृत्यु दर 6.6 प्रति हजार तथा शिशु मृत्यु दर केवल 12 प्रति हजार है किन्तु देश के अन्य राज्य विशेषकर बिहार, मध्यप्रदेश,

उड़ीसा, राजस्थान और उत्तरप्रदेश में साक्षरता का स्तर व जीवन प्रत्याशा काफी कम है जबकि जन्म दर, मृत्यु दर और शिशु मृत्यु दरें काफी अधिक हैं। अतः इन राज्यों में जीवन की समग्र गुणवत्ता को सुधारने हेतु विशेष प्रयासों की आवश्यकता बनी हुई है। उल्लेखनीय है कि भारत में 2008 में जन्म दर 22.8 तथा मृत्यु दर 7.4 प्रति हजार थी। इस प्रकार भारत में मानव पूँजी निर्माण अभी भी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है। अतः यह कहा जा सकता है कि देश में तीव्र गति से आर्थिक विकास लाने के लिए शिक्षित व स्वस्थ नागरिकों, कुशल श्रमिकों, तकनीशियनों, प्रविधिकों और वैज्ञानिकों की संख्या में वृद्धि करना आवश्यक है।

उल्लेखनीय है कि भारत में नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) के अन्तर्गत मानव विकास कार्यक्रमों पर समुचित ध्यान देने का निर्णय किया गया। इस योजना में आत्म-निर्भरता प्राप्त करने के लक्ष्य के साथ ही देश के नागरिकों को गुणवत्ता युक्त जीवन प्रदान करने का भी लक्ष्य रखा गया था। दसवी पंचवर्षीय योजना (2002-07) में भी आर्थिक संवृद्धि के लक्ष्य के अतिरिक्त मानव विकास व कल्याण (Human Development and Welfare) बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विशिष्ट एवं पालनीय लक्ष्य (Specific and Monitorable Targets) यथा योजनावधि में साक्षरता दर को 75 प्रतिशत तक पहुँचाना, वर्ष 2007 तक बाल मृत्यु दर 45 प्रति हजार और 2012 में 28 प्रति हजार तक कम करना निर्धारित किये गये थे। इसके अलावा योजनावधि में सभी बच्चों के लिए स्कूल का लक्ष्य तथा सभी गाँवों को पेयजल उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया है। संक्षेप में, दसवीं योजना में भी स्वास्थ्य, शिक्षा, साक्षरता, पेयजल, आवास, स्वस्थ पर्यावरण तथा कमजोर वर्गों के कल्याणकारी कार्यक्रम प्राथमिकता के क्षेत्र में रखे गये हैं जो मानव विकास में सहायक होंगे।

लिंग सम्बन्धित विकास सूचकांक (Gender Related Development Index - GDI)

मानव विकास सूचकांक औसत उपलब्धियों का माप है, अर्थात् इसमें पुरुष एवं महिलाएँ सम्मिलित रहती है, अर्थात् लिंग सम्बन्धी भेद-भाव नहीं होता। इस कमी को दूर करने के लिए लिंग सम्बन्धी विकास सूचकांक का निर्माण भी संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) के अन्तर्गत किया गया है। लिंग सम्बन्धित विकास सूचकांक में निम्न तीन पहलुओं को लिया गया है, यथा (i) स्त्रियों में जन्म पर जीवन प्रत्याशा, (ii) स्त्री-साक्षरता एवं कुल नामांकन अनुपात और (iii) स्त्री प्रति व्यक्ति आय। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यदि लिंग असमानता विद्यमान न हो, तो मानवीय विकास सूचकांक बराबर होंगे । किन्तु, यदि लिंग असमानता (Gender inequality) विद्यमान है तो, लिंग सम्बन्धित विकास

सूचक मानवीय विकास सूचकांक से कम होगा। इन दोनों में जितना अधिक अन्तर होगा, उतनी ही अधिक लिंग असमानता होगी ।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा प्रकाशित आँकड़ों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जिन देशों में लिंग समानता विद्यमान है, वे हैं नार्वे, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, मैक्सिको, रूस, मलेशिया, वेनेजुएला, फिलीपींस, श्रीलंका, चीन और इण्डोनेशिया। इसके विपरीत, सऊदी अरब, ईरान, भारत, पाकिस्तान, मिस्त्र, नाइजीरिया, बंगलादेश आदि में लिंग असमानता बहुत अधिक है। लिंग सम्बन्धी विकास सूचकांकों के अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि अब लिंग असमानता के बारे में कहीं अधिक जागरूकता है और लिंग असमानता को कम करने के लिए स्त्रियों की शिक्षा और परिवार में उनको बेहतर स्थान उपलब्ध कराने के लिए प्रयास चल रहे हैं। सि

मानव विकास सूचकांक का तुलनात्मक विश्लेषण

सम्पूर्ण भारत का मानव विकास सूचकांक जहाँ सन् 1981 में केवल 0.302 था, बढ़कर सन 2002 में 0.545 हो गया। किन्तु सूचकांक में वृद्धि की दर सभी राज्यों में समान नहीं रही। जहाँ केरल, पंजाब, तमिलनाडु महाराष्ट्र, हरियाणा, गुजरात एवं कर्नाटक राज्यों में यह सूचकांक सुधरा है, वहीं बिहार, असम एवं उत्तरप्रदेश में अभी भी स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। तालिका- में राज्यों के अनुसार सन् 1981, 1991 एवं 2001 के मानव विकास सूचकांकों का तुलनात्मक विवरण दर्शाया गया है।

तालिका-V

भारत में राज्य मानव विकास शोधकर्ता 1981, 1991 और 2001

	राज्य	2001		1991		1981	
		मूल्य	रैंक	मूल्य	रैंक	मूल्य	रैंक
1	केरल	0.638	1	0.591	3	0.5	1
2	पंजाब	0.537	2	0.475	12	0.411	2
3	तमिलनाडु	0.531	3	0.466	14	0.343	7
4	महाराष्ट्र	0.523	4	0.452	15	0.363	3
5	हरियाणा	0.509	5	0.443	16	0.36	5
6	गुजरात	0.479	6	0.431	17	0.36	4
7	कर्नाटक	0.478	75	0.412	19	0.346	6

8	प. बंगाल	0.472	8	0.404	20	0.305	8
9	राजस्थान	0.424	9	0.377	10	0.256	12
10	आंध्रप्रदेश	0.416	10	0.377	23	0.298	9
11	0.404	उड़ीसा	11	0.345	28	0.267	11
12	मध्यप्रदेश	0.394	12	0.328	30	0.245	14
13	उत्तरप्रदेश	0.388	13	0.314	31	0.255	13
14	असम	0.386	14	0.348	26	0.272	10
15	बिहार	0.367	15	0.308	32	0.237	15

स्त्रोत :- मानव विकास रिपोर्ट-2001, योजना आयोग, आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार, 2002-03

6.8 मानव विकास निर्देशांक या सूचकांक की सीमाएँ (Limitations of Human Development Index)

यद्यपि मानव विकास के अन्य मापदण्डों की तुलना में यह एक श्रेष्ठ मापदण्ड है, तथापि यह कमियाँ रहित नहीं है। मानव विकास निर्देशांक की प्रमुख कमियाँ या सीमाएँ निम्न प्रकार हैं-

(i) इस मापदण्ड में सम्मिलित केवल तीन सूचक ही मानव विकास के अंग नहीं हैं। शिशु मृत्यु दर, पोषण आदि अन्य सूचक भी हो सकते हैं।

(ii)मानव विकास सूचकांक निरपेक्ष (Absolute) की बजाय सापेक्ष (Relative) मानव विकास का माप करता है ताकि यदि सभी देश समान भारित (Weighted) दर से अपने एच.डी.आई. को सुधार लें तो निम्न मानव विकास वाले देशों के सुधार का पता नहीं चल पाएगा।

(iii) किसी देश का मानव विकास सूचकांक वहाँ पाई जाने वाली ऊँची असमानता को दूर करने के लक्ष्य से भटक सकता है।

(iv) आलोचकों का मत है कि दूसरे सामाजिक सूचकों के साथ प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद के क्रमों को लेना तथा अनुपूरित करने की वैकल्पिक कूटनीति ही मानव विकास सूचकांक से बेहतर है।

6.9 भारतीय अर्थव्यवस्था की मानव अधोसंरचना सार संक्षेप

भारतीय अर्थव्यवस्था की मानव अधोसंरचना (Human Infrastructure) का संदर्भ उस आधारभूत ढांचे से है जो मानव संसाधनों और उनकी क्षमता को समुचित रूप से विकसित और उपयोग करने में सहायक हो। यह न केवल शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ नागरिकों की आवश्यकता को दर्शाता है, बल्कि शिक्षा, कौशल, स्वास्थ्य, और सामाजिक कल्याण जैसी पहलुओं को भी शामिल करता है। भारत की मानव अधोसंरचना में कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं का सार संक्षेप इस प्रकार है:

1. शिक्षा

- **बुनियादी शिक्षा**: भारत में शिक्षा का स्तर तेजी से बढ़ रहा है, लेकिन समग्र राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार की आवश्यकता है। सरकारी योजनाएँ जैसे "सर्व शिक्षा अभियान" और "मिड-डे मील" बच्चों की शिक्षा को प्रोत्साहित कर रही हैं।
- **उच्च शिक्षा**: IITs, IIMs, AIIMS जैसे संस्थान उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करते हैं, लेकिन इनकी संख्या में वृद्धि और अधिक समावेशिता की आवश्यकता है।
- **व्यावसायिक प्रशिक्षण**: कौशल विकास कार्यक्रमों के तहत युवाओं को कार्यकुशल बनाने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। "प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना" इसके तहत एक महत्वपूर्ण पहल है।

2. स्वास्थ्य

- **स्वास्थ्य सेवाएँ**: भारत में स्वास्थ्य सेवाओं का दायरा बढ़ाने के लिए "आयुष्मान भारत" जैसे राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन लागू किए गए हैं। हालांकि, ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच और गुणवत्ता में सुधार की आवश्यकता है।
- **टीकाकरण और रोकथाम**: टीकाकरण अभियान और विभिन्न स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से देश में बीमारी के प्रसार को नियंत्रित किया जा रहा है।

3. कौशल विकास

- भारत में कार्यबल का एक बड़ा हिस्सा युवा है, जो विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के अवसर तलाशता है। कौशल विकास की योजनाओं के माध्यम से युवाओं को नए और उभरते क्षेत्रों जैसे सूचना प्रौद्योगिकी, निर्माण, सेवाएँ, और अन्य उद्योगों में प्रशिक्षित किया जा रहा है।

4. आवागमन और संचार

- **यातायात और परिवहन**: सड़क, रेल, हवाई और समुद्री परिवहन में बुनियादी ढांचे में लगातार सुधार हो रहा है। "प्रधानमंत्री सड़क योजना" और "भारतमाला परियोजना" जैसे कार्यक्रम इसके उदाहरण हैं।
- **डिजिटल अधोसंरचना**: इंटरनेट की पहुंच और डिजिटल सेवाओं के विस्तार से आर्थिक गतिविधियाँ और शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाएँ अधिक सुलभ हो रही हैं।

5. सामाजिक सुरक्षा और कल्याण

- सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ जैसे "जन धन योजना", "मुद्रा योजना", और "स्वास्थ्य बीमा" गरीब और मध्यवर्गीय परिवारों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती हैं।
- **महिला सशक्तिकरण**: महिलाओं के लिए शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता बढ़ाने के लिए कई योजनाएँ बनाई गई हैं, जिससे श्रम बल में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है।

6. प्रौद्योगिकी और नवाचार

- भारत में सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में अत्यधिक विकास हुआ है, जिससे रोजगार और मानव संसाधन का व्यापक उपयोग हुआ है। "स्टार्टअप इंडिया" और "मेक इन इंडिया" जैसी पहल इस दिशा में मदद कर रही हैं।

6.10 मुख्य शब्द

भारतीय अर्थव्यवस्था की मानव अधोसंरचना से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण मुख्य शब्द निम्नलिखित है:

1. मानव संसाधन (Human Resources)

- किसी भी अर्थव्यवस्था का सबसे मूल्यवान हिस्सा वह श्रम शक्ति होती है, जो उत्पादन, सेवा और विकास में योगदान करती है। इसमें शिक्षा, कौशल, स्वास्थ्य और अनुभव जैसे कारक शामिल होते हैं।

2. श्रम बल (Labor Force)

- श्रम बल वह जनसंख्या है जो काम करने की स्थिति में होती है। इसमें वे लोग शामिल हैं जो रोजगार में हैं या काम की तलाश में हैं, तथा वे लोग जो रोजगार की स्थिति में नहीं हैं, लेकिन सक्षम हैं।

3. कौशल विकास (Skill Development)

- रोजगार योग्य कौशलों की प्राप्ति और सुधार की प्रक्रिया। यह युवाओं को नए कार्यक्षेत्रों में दक्ष बनाने के लिए की जाती है, जैसे "प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना"।

4. शैक्षिक अधोसंरचना (Educational Infrastructure)

- शिक्षा के लिए आवश्यक सभी बुनियादी ढांचे, जैसे स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, प्रशिक्षण संस्थान, पुस्तकालय आदि।

5. स्वास्थ्य अधोसंरचना (Health Infrastructure)

- स्वास्थ्य सेवाओं के लिए आवश्यक ढांचा, जिसमें अस्पताल, क्लिनिक, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (PHC), स्वास्थ्य बीमा योजनाएँ, और चिकित्सा संसाधन शामिल होते हैं।

6. डिजिटल अधोसंरचना (Digital Infrastructure)

- सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) से संबंधित सुविधाएँ, जैसे इंटरनेट कनेक्टिविटी, डेटा नेटवर्क, डिजिटल सेवाएँ और इन्फ्रास्ट्रक्चर, जिनका उपयोग शिक्षा, स्वास्थ्य, और अन्य सेवाओं को सुलभ बनाने के लिए किया जाता है।

7. मानव पूंजी (Human Capital)

- एक देश के नागरिकों के कौशल, शिक्षा, अनुभव और स्वास्थ्य की संचित क्षमता, जो आर्थिक वृद्धि में योगदान करती है। यह किसी देश की विकासशील क्षमता का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

8. आवागमन अधोसंरचना (Transportation Infrastructure)

- सड़क, रेल, हवाई और जल परिवहन से संबंधित सभी आधारभूत ढांचे, जो लोगों और माल के आवागमन को सुविधाजनक बनाते हैं।

9. समाज कल्याण योजनाएँ (Welfare Schemes)

- वे सरकारी योजनाएँ जो नागरिकों के सामाजिक, आर्थिक और शारीरिक कल्याण को बढ़ावा देती हैं, जैसे "आयुष्मान भारत", "मुद्रा योजना", "जन धन योजना", आदि।

10. सामाजिक सुरक्षा (Social Security)

- नागरिकों को आर्थिक असुरक्षा से बचाने के लिए सरकार द्वारा प्रदान किए जाने वाले लाभ, जैसे वृद्धावस्था पेंशन, स्वास्थ्य बीमा, और बेरोजगारी भत्ते।

11. प्रौद्योगिकी और नवाचार (Technology and Innovation)

- नई तकनीकों और नवाचारों का उपयोग जो आर्थिक विकास, उत्पादन, और सेवाओं के क्षेत्र में सुधार लाते हैं। इसमें सूचना प्रौद्योगिकी, बायोटेक्नोलॉजी, और हाइ-टेक उद्योगों का समावेश होता है।

12. उद्यमिता (Entrepreneurship)

- व्यवसायों या स्टार्टअप्स की स्थापना, जो नई उत्पादों या सेवाओं का निर्माण करती हैं और रोजगार के अवसर उत्पन्न करती हैं। "स्टार्टअप इंडिया" जैसी योजनाओं के माध्यम से इसे बढ़ावा दिया जा रहा है।

13. ग्रामीण विकास (Rural Development)

- ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं का सुधार, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन और आवास। यह भारतीय अर्थव्यवस्था में समग्र समृद्धि लाने के लिए महत्वपूर्ण है।

14. संवर्धन और प्रोत्साहन (Promotion and Incentives)

- सरकार द्वारा विभिन्न उद्योगों और क्षेत्रों के लिए दी जाने वाली प्रोत्साहन योजनाएँ, ताकि मानव संसाधन की पूरी क्षमता का उपयोग किया जा सके।

15. सार्वजनिक-निजी साझेदारी (Public-Private Partnership, PPP)

- सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बीच सहयोग, जिससे बुनियादी ढांचे की परियोजनाओं, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, आदि, का निर्माण और संचालन किया जाता है।

16. ग्रामीण-शहरी विभाजन (Rural-Urban Divide)

- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच संसाधनों, सुविधाओं, शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के अवसरों में असमानता। यह भारतीय मानव अधोसंरचना की एक महत्वपूर्ण चुनौती है।

17. मनोरंजन और सांस्कृतिक अधोसंरचना (Entertainment and Cultural Infrastructure)

- सांस्कृतिक, कला, और मनोरंजन गतिविधियों के लिए आवश्यक आधारभूत सुविधाएँ, जैसे थिएटर, म्यूज़ियम, कला दीर्घाएँ, और सांस्कृतिक केंद्र।

18. स्वास्थ्य बीमा (Health Insurance)

- सरकार या निजी क्षेत्र द्वारा प्रदान किया जाने वाला वित्तीय सुरक्षा कवच, जो चिकित्सा उपचार के खर्चों को कवर करता है।

19. मानव विकास सूचकांक (Human Development Index, HDI)

- यह एक मापदंड है, जो किसी देश के नागरिकों की जीवन गुणवत्ता का आकलन करता है, जिसमें जीवन प्रत्याशा, शिक्षा स्तर और प्रति व्यक्ति आय को ध्यान में रखा जाता है।

20. समान अवसर (Equal Opportunity)

- हर व्यक्ति को बिना भेदभाव के शिक्षा, रोजगार और सामाजिक सेवाओं का समान अवसर मिलना। भारतीय अर्थव्यवस्था में समान अवसर को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएँ चल रही हैं।

6.11 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

भारतीय अर्थव्यवस्था की मानव अधोसंरचना पर आधारित कुछ स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्न और उनके उत्तर निम्नलिखित हैं:

1. प्रश्न: मानव अधोसंरचना का अर्थ क्या है?

- **उत्तर**: मानव अधोसंरचना का तात्पर्य उस आधारभूत ढांचे से है, जो मानव संसाधनों को विकसित और उपयोग करने में सहायक हो। इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल विकास, और सामाजिक सुरक्षा जैसी मूलभूत आवश्यकताएँ शामिल होती हैं, जो एक मजबूत और सक्षम कार्यबल तैयार करने में सहायक होती हैं।

2. प्रश्न: भारतीय अर्थव्यवस्था में मानव संसाधन का क्या महत्व है?

- **उत्तर**: मानव संसाधन भारतीय अर्थव्यवस्था के सबसे महत्वपूर्ण घटक हैं, क्योंकि ये उत्पादन, सेवा, और विकास में योगदान करते हैं। एक सक्षम और कुशल मानव संसाधन श्रमिक वर्ग देश की आर्थिक वृद्धि और विकास की गति को बढ़ाता है।

3. प्रश्न: भारत में मानव अधोसंरचना के लिए कौन-कौन सी प्रमुख योजनाएँ लागू की गई हैं?

- **उत्तर**: भारत में मानव अधोसंरचना के विकास के लिए कई प्रमुख योजनाएँ लागू की गई हैं, जैसे "प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना", "आयुष्मान भारत योजना", "सर्व शिक्षा अभियान", "मुद्रा योजना", और "प्रधानमंत्री जन धन योजना"।

4. प्रश्न: कौशल विकास के लिए भारत में कौन सी प्रमुख योजनाएँ हैं?

- **उत्तर**: कौशल विकास के लिए भारत में "प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना" (PMKVY) प्रमुख योजना है। इसके तहत युवाओं को रोजगार योग्य कौशल सिखाने का उद्देश्य है, ताकि वे विभिन्न उद्योगों में दक्ष होकर काम कर सकें।

5. प्रश्न: भारतीय मानव अधोसंरचना में सुधार के लिए क्या चुनौतियाँ हैं?

- **उत्तर**: भारतीय मानव अधोसंरचना में प्रमुख चुनौतियाँ हैं: शिक्षा की गुणवत्ता में असमानता, ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की कमी, कौशल विकास में कमी, बेरोजगारी, और शहरी-ग्रामीण असमानता।

6. प्रश्न: मानव पूंजी क्या है और यह भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए क्यों महत्वपूर्ण है?

- **उत्तर**: मानव पूंजी से तात्पर्य उन कौशलों, ज्ञान, शिक्षा और स्वास्थ्य से है, जो किसी राष्ट्र के नागरिकों के पास होते हैं। यह अर्थव्यवस्था की विकास क्षमता और उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि कुशल मानव संसाधन विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में नवाचार और प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देते हैं।

7. प्रश्न: भारत में स्वास्थ्य अधोसंरचना की स्थिति क्या है?

- **उत्तर**: भारत में स्वास्थ्य अधोसंरचना में सुधार की आवश्यकता है, खासकर ग्रामीण और दूरदराज क्षेत्रों में। सरकार की "आयुष्मान भारत योजना" और "राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन" जैसी योजनाएँ इस क्षेत्र में सुधार की दिशा में काम कर रही हैं, लेकिन चुनौती बनी हुई है।

8. प्रश्न: शिक्षा के क्षेत्र में भारत में प्रमुख सुधार क्या हैं?

- **उत्तर**: भारत में शिक्षा के क्षेत्र में प्रमुख सुधारों में "सर्व शिक्षा अभियान", "मिड-डे मील योजना", और "राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020" जैसी पहल शामिल हैं। इनका उद्देश्य सभी बच्चों को गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराना और शैक्षिक असमानताओं को दूर करना है।

9. प्रश्न: डिजिटल अधोसंरचना के विकास का भारतीय अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा है?

- **उत्तर**: डिजिटल अधोसंरचना के विकास ने भारतीय अर्थव्यवस्था में गति प्रदान की है। इंटरनेट कनेक्टिविटी और डिजिटल सेवाओं की पहुंच ने शिक्षा, स्वास्थ्य, और सरकारी सेवाओं को अधिक सुलभ और प्रभावी बना दिया है। "डिजिटल इंडिया" जैसे कार्यक्रम इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं।

10. प्रश्न: भारतीय श्रमिकों के कौशल विकास के लिए सरकार ने क्या कदम उठाए हैं?

- **उत्तर**: भारत सरकार ने श्रमिकों के कौशल विकास के लिए "प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना" (PMKVY), "राष्ट्रीय कौशल विकास निगम" (NSDC), और "स्वच्छ भारत मिशन" जैसी योजनाएँ शुरू की हैं। इन योजनाओं के माध्यम से विभिन्न उद्योगों में काम करने के लिए प्रशिक्षित कार्यबल तैयार किया जा रहा है।

6.12 संदर्भ सूची

- बालाकृष्णन, पी. (2022). भारतीय अर्थव्यवस्था की बहाली: राजनीतिक अर्थव्यवस्था दृष्टिकोण. नई दिल्ली: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- बसु, क. (2018). विश्वास का गणराज्य: कानून और अर्थशास्त्र के लिए एक नई दृष्टि. प्रिंसटन, एनजे: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- घोष, ए. (2021). भारत की उभरती अर्थव्यवस्था: 21वीं सदी में प्रदर्शन और संभावनाएँ. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- पनगारिया, ए. (2020). भारत असीमित: खोई हुई महिमा को पुनः प्राप्त करना. नई दिल्ली: हार्पर कॉलिन्स।
- नागराज, आर. (2019). भारत में आर्थिक विकास और विकास: नई दृष्टिकोण. नई दिल्ली: रूटलेज।

6.13 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1.आर्थिक उन्नति में मानव साधनों के विकास के महत्व की विवेचना कीजिए। एक विकासशील

2. अर्थव्यवस्था में क्या इनको पूँजी संचय से अधिक प्रधानता दी जानी चाहिए? कानाम मानवीय पूँजी निर्माण क्या है? शिक्षा के विकास के मापदण्डों की विवेचना कीजिए ।

3.विकास प्रक्रिया हेतु मानवीय पूँजी में किए जाने वाले विनियोग का महत्व स्पष्ट कीजिए । निर्धन देशों में इस प्रकार के विनियोग की क्या सीमाएँ हैं ?

4. मानव विकास सूचक (HDI) से आप क्या समझते हैं? इस सूचकांक से विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के बारे में किन-किन बातों का ज्ञान होता है।

5. मानव विकास से आप क्या समझते हैं? इस सन्दर्भ में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा बनाए गए सूचकांकों की विवेचना कीजिए।

6. भारतीय अर्थव्यवस्था की मानव अधोसंरचना की विवेचना कीजिए ।

7. भारत में मानव अधोसंरचना के विकास की आवश्यकता क्यों है ? भारत की मानव विकास के क्षेत्र में प्रगति का ब्यौरा दीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मानव या सामाजिक अधोसंरचना का महत्व बताइये ।

2. भारत में मानव विकास की आवश्यकता क्यों है ?

3. भारत में सामाजिक सेवा क्षेत्र पर व्यय का ब्यौरा दीजिए ।

4.मानव संसाधन विकास में लिए किन क्षेत्रों पर विनियोग किया जाता है?

5. मानव विकास के क्षेत्र में भारत की क्या स्थिति है ?

6. भारत में मानव विकास के बुनियादी संकेतक क्या हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मानव अधोसंरचना के विकास हेतु किस पर व्यय करना आवश्यक है?

(अ) सामान्य शिक्षा

(ब) तकनीकी शिक्षा

(स) स्वास्थ्य एवं पौष्टिकता

(द) उपर्युक्त सभी

2. मानव संसाधन के विकास के लिए विनियोग का क्षेत्र कौन सा है ?

(अ) शिक्षा तथा प्रशिक्षण

(ब) स्वास्थ्य तथा पोषण

(स) आवास तथा स्वच्छता

(द) उपर्युक्त सभी

3. मानव विकास प्रतिवेदन 2010 के अनुसार वर्ष 2008 के मानव विकास सूचकांक (HDI) में भारत 169 देशों में से किस स्थान पर था ?

(अ) 120वें स्थान पर

(ब) 119वें स्थान पर

(स) 124 वें स्थान पर

(द) 130वें स्थान पर

4. वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता का प्रतिशत क्या था ?

(अ) 52.21 प्रतिशत (ब) 64.83 प्रतिशत

(स) 74.04 प्रतिशत (द) 66.84 प्रतिशत

उत्तर- 1. (द), 2. (द), 3. (ब), 4. (स) ।

इकाई- 7

मानव अधोसंरचना - स्वास्थ्य एवं पौष्टिकता

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 भारत में स्वास्थ्य सेवाओं पर व्यय

7.4 मानव अधोसंरचना: स्वास्थ्य एवं पौष्टिकता की सीमाएँ

7.5 सार संक्षेप

7.6 मुख्य शब्द

7.7 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

7.8 संदर्भ सूची

7.9 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

मानव संसाधन या मानव अधोसंरचना के विकास से आशय शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य एवं पौष्टिकता आदि पर निवेश करने से है। प्रो. डी. मौरिस (D. Morris) ने सन् 1979 में 23 विकसित एवं विकासशील देशों के निवासियों की जीवन गुणवत्ता (Quality of Life) का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है कि विकास केवल राष्ट्रीय आय या प्रति व्यक्ति आय अथवा आर्थिक कल्याण द्वारा नहीं मापा जा सकता। विकास ऐसे घटकों पर निर्भर करता है जो मनुष्य की मूल आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। उदाहरण के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल, पोषण, स्वच्छता आदि अनेक ऐसे तत्व हैं जो मनुष्य के जीवन को प्रभावित करते हैं।

मानव संसाधन के विकास या श्रमिकों की कुशलता एवं उनकी उत्पादकता में अच्छे स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण स्थान है। इसका कारण यह है कि श्रमिकों के स्वास्थ्य का उत्पादन की मात्रा एवं गुणवत्ता से सीधा सम्बन्ध है। अल्पविकसित एवं विकासशील देशों में व्यापक गरीबी एवं बेरोजगारी के कारण श्रमिकों को पौष्टिक एवं सन्तुलित भोजन प्राप्त नहीं होता है जिसका उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। फलतः भारत जैसे देशों में स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार के लिए औषधालयों, दवाईयाँ, डॉक्टर, उपकरण आदि की

बड़े पैमाने पर व्यवस्था आवश्यक है। चूँकि भारत जैसे अल्प-विकसित देशों में जनसंख्या का एक बड़ा भाग सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। अतः स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार करना एक कठिन एवं जटिल कार्य है। इस कार्य के लिए बड़ी मात्रा में निवेश की आवश्यकता है।

पौष्टिक भोजन या सन्तुलित आहार का भी स्वास्थ्य से सीधा सम्बन्ध है। गरीबी के कारण भारत जैसे देशों के लोगों को दो समय भरपेट भोजन भी प्राप्त नहीं होता है। ऐसी स्थिति में पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराना एक कठिन कार्य है। यह तभी सम्भव है जब गरीब वर्ग के लोगों की क्रयशक्ति में वृद्धि हो। इसके साथ ही स्वास्थ्य एवं पोषक भोजन के प्रति जन-जागृति भी आवश्यक है। उल्लेखनीय है कि भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिदिन 2400 केलोरी तथा शहरी क्षेत्रों में 2100 केलोरी से कम उपयोग करने वाले व्यक्ति निर्धन माने जाते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि देश में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले व्यक्ति पौष्टिक भोजन से वंचित हैं। संक्षेप में, स्वास्थ्य सुविधाओं एवं पौष्टिक भोजन की उपलब्धता मानव संसाधन के विकास हेतु अत्यन्त आवश्यक है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
- विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।

7.3 भारत में स्वास्थ्य सेवाओं पर व्यय (Expenditure on health services in India)

भारत में स्वतंत्रता के बाद से ही सामाजिक सेवाओं के विस्तार को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसके अन्तर्गत स्वास्थ्य सेवाओं के विकास पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। तालिका-1 में स्वास्थ्य के क्षेत्र में केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा किये गये व्यय का विवरण दर्शाया गया है।

सरकार-1

भारत में स्वास्थ्य पर केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा व्यय

वर्ष	कुल व्यय (करोड़ में)	स्वास्थ्य पर व्यय (करोड़ में) मात्र	स्वास्थ्य पर प्रतिशत व्यय कार

1986-87	1,00,47	4,566	4.5
1990-91	1,63,637	7,309	4.7
2000-01	5,91,300	28,000	4.6
2008-09	15,95,110	73,898	4.6
2009-10	19,09,380	90,700	4.8.
2010-11 (अनुमान)	20,71,147	99,738	4.8

स्त्रोतः- आर्थिक समीक्षा 2005-06 एवं Economic Survey 2010-11, Government of India, Table-12.4 Page 294.

तालिका-1 से यह स्पष्ट है कि केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा वर्ष 1986-87 में स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार पर कुल 4,566 करोड़ रुपए व्यय किये गये थे, जो बढ़कर 2000-01 में 28,000 करोड़ रुपए और वर्ष 2010-11 में 99,738 करोड़ रुपए होने का अनुमान है। इस अवधि में केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा किये गये कुल व्यय का लगभग 5 प्रतिशत स्वास्थ्य पर व्यय किया गया। वर्ष 1986-87 में कुल व्यय में स्वास्थ्य पर व्यय का भाग 4.5 प्रतिशत था जो 2010-11 में बढ़कर 4.8 प्रतिशत होने का अनुमान है। किन्तु पिछले 20 वर्षों से स्वास्थ्य जैसी मानव या सामाजिक सेवा के विस्तार पर किये जाने वाले व्यय में तुलनात्मक रूप से विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। उल्लेखनीय है कि सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product) के प्रतिशत के रूप में भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं पर व्यय 2 प्रतिशत से भी कम हो रहा है तथा यह वर्ष 2010-11 में सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का 1.27 प्रतिशत रहने का अनुमान है।

इस विषय में यह तथ्य स्मरणीय है कि तालिका-1 में दिये गये आँकड़े सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत स्वास्थ्य पर किये गय व्यय को दर्शाते हैं। किन्तु स्वास्थ्य जैसे क्षेत्र में निजी क्षेत्र द्वारा भी करोड़ों रुपये व्यय किये जाते हैं। पिछले कुछ वर्षों से स्वास्थ्य पर निजी क्षेत्र द्वारा किये गये व्यय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

भारत में स्वास्थ्य सुविधाएँ (Health Facilities in India)

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति का यह लक्ष्य है कि सकल घरेलू उत्पाद का कम से कम 2 से 3 प्रतिशत भाग देश में चिकित्सा एवं स्वास्थ्य से सम्बन्धित कार्यक्रमों पर व्यय किया जाए। इस नीति के अनुसार संचारी एवं गैर-संचारी रोगों की रोकथाम के लिए प्रभावी ढंग से

अनेक कार्यक्रम क्रियान्वित किए जा रहे हैं और प्रयास यह है कि स्वास्थ्य के साधारण स्तरों में सुधार लाया जाए। तदानुसार पंचवर्षीय योजनाओं में मलेरिया, तपेदिक, कुष्ठ रोग, एड्स, अन्धता, कैंसर और मानसिक विकृतियों जैसी प्रमुख संचारी और गैर संचारी बीमारियों को नियंत्रित करने के विभिन्न कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया गया।

भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार से जहाँ संचारी एवं गैर संचारी रोगों के निदान में सफलता प्राप्त हुई, वहीं जन-साधारण की स्वास्थ्य के प्रति चेतना जागृत हुई। इनके परिणामस्वरूप जन्म के समय जीवन प्रत्याशा में तेजी से वृद्धि हुई। सन् 1951 में पुरुषों की जीवन प्रत्याशा केवल 37.2 वर्ष थी जो बढ़कर सन् 1981 में 54.1 वर्ष और 2006 में 63.5 वर्ष हो गई। इसी प्रकार महिलाओं की जन्म के समय जीवन प्रत्याशा सन् 1951 में केवल 36.2 वर्ष थी जो बढ़कर 1981 में 54.7 वर्ष और सन् 2006 में 64.2 वर्ष होने का अनुमान है। तालिका 2 में स्वास्थ्य सुविधाओं में हुई प्रगति का तुलनात्मक विवरण दर्शाया गया है।

तालिका-2

भारत में स्वास्थ्य सेवाओं की प्रगति

विवरण	1951	1981	2004	2009
1. प्राथमिक एवं सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र	725	57,363	1,68,986	1,73,795
या उपकेन्द्र	9,209	23,555	38,031	35,071
2. अस्पताल एवं औषधालय	1.17	5.69	9.15	अप्राप्त
3. बिस्तर-निजी एवं सरकारी (लाखों मे)	0.18	1.44	8.36	16.52
4. उपाचार्य कर्मचारी (लाखों मे)	0.62	2.69	6.25	7.57
5. डॉक्टर-आधुनिक पद्धति (लाखों में)	750	27	18.4	अप्राप्त
6. मलेरिया के मामले (लाखों में)	38.1	57.3	1.2	अप्राप्त
7. कुष्ठ रोग (मामले प्रति 10,000 जनसंख्या)	29,709	225	57	अप्राप्त
8. पोलियो (मामलों की संख्या)				

तालिका-2 से यह स्पष्ट है कि सन् 1951 में प्राथमिक एवं सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या सम्पूर्ण देश में केवल 725 थी, जो बढ़कर सन् 1981 में 57,363 एवं सन् 2009 में 1,73,795 हो गई, अर्थात् 240 गुनी वृद्धि हुई। इसी प्रकार अस्पताल एवं औषधालयों की संख्या सन् 1951 में केवल 9209 थी, जो बढ़कर सन् 1981 में 23,555 एवं सन् 2009 में

35,071 हो गई। रोगियों के लिए सभी निजी एवं सरकारी अस्पतालों में सन् 1951 में केवल 1.17 लाख बिस्तर थे जो बढ़कर सन् 2004 में 9.15 लाख हो गए। स्वतंत्रता के बाद आधुनिक चिकित्सा पद्धति के डॉक्टरों की संख्या में तेजी से विस्तार हुआ और यह संख्या 0.62 लाख से बढ़कर सन्दर्भित अवधि में 7.57 लाख हो गई।

स्वास्थ्य सुविधाओं में विस्तार के फलस्वरूप मलेरिया, कुष्ठ रोग एवं पोलियो जैसे मरीजों की संख्या में तेजी से कमी हुई है। सन् 1951 में मलेरिया के 750 लाख मामले दर्ज हुए थे जो घट कर 2004 में केवल 18.4 लाख रहे गये। इसी प्रकार पोलियो के सन् 1951 में 29,709 मामले दर्ज हुए थे जो घटकर सन् 2004 में केवल 57 रहे। कुष्ठ एक भयंकर रोग है, किन्तु इसके रोगियों की संख्या में भी तेजी से कमी हुई है। सन् 1951 में प्रति 10,000 की जनसंख्या पर कुष्ठ रोगियों की संख्या 38.1 था, जो घटकर 2004 में केवल 1.2 रह गई ।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के बाद से देश में स्वास्थ्य सम्बन्धी अधोसंरचना में तेजी से विस्तार हुआ है और अब ग्रामीण क्षेत्रों में भी प्राथमिक चिकित्सा केन्द्रों की स्थापना हो चुकी है और इन केन्द्रों में आधुनिक चिकित्सा पद्धति के डॉक्टर, नर्स एवं अन्य कर्मचारी कार्यरत हैं। पिछले कुछ वर्षों से सार्वजनिक क्षेत्र के साथ-साथ निजी क्षेत्र में भी स्वास्थ्य सुविधाओं का तेजी से विस्तार हुआ है। शहरी क्षेत्रों में जहाँ निजी नर्सिंग होम स्थापित हुए हैं, वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिक पद्धति के डॉक्टरों की सेवाएँ उपलब्ध हैं। इन सभी सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र की स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार से देश में न केवल जन्म दर में कमी आई है, वरन् मृत्यु दर, शिशु मृत्यु दर एवं कुल प्रजनन दर में भी गिरावट आई है तथा जन-सामान्य की जीवन प्रत्याशा में तेजी से वृद्धि हुई है। तालिका क्रमांक-3 में उपर्युक्त तथ्यों से संबंधित स्वास्थ्य संकेतकों को दर्शाया गया है।

तालिका-3

भारत में स्वास्थ्य संकेत

क्र. पैरामीटर	1951	1981	1991	वर्तमान स्तर

1. स्थूल जन्म दर (प्रति 1000 जनसंख्या)	40.8	33.9	29.5	22.5 (2009)
2. स्थूल मृत्यु दर (प्रति 1000 जनसंख्या)	25.1	12.5	9.8	7.3 (2009)
3. कुल प्रजनन दर (TFR) प्रति महिला	6.1	4.5	3.6	2.6 (2008)
4. शिशु मृत्यु दर (IMR) (प्रति 1000 जीवित नवजात)	146	110	80	50 (2009)
5. जन्म के समय जीवन प्रत्याशा :				
अ. पुरुष	37.2	54.1	59.7	62.6 (2002-06)
ब. महिला	36.2	54.7	60.9	64.2 (2002-06)

स्वास्थ्य संकेतकों के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि सन् 1951 में प्रति 1000 की जनसंख्या पर सन् 1951 में 40.8 बच्चे जन्म लेते थे जो घटकर सन् 2009 में 22.5 रह गये हैं, अर्थात् जन्म दर में तेजी से गिरावट आई है। इसी प्रकार प्रति 1000 व्यक्तियों पर वर्ष भर में सन् 1951 में 25.1 व्यक्तियों की मृत्यु होती थी जो 2009 में घटकर केवल 7.3 व्यक्ति रह गई है, अर्थात् देश में मृत्यु दर घट कर एक-तिहाई से भी कम रह गई है। देश में जनसंख्या में हो रही तीव्र वृद्धि का यही एक प्रमुख कारण है, अर्थात् मृत्यु दर की तुलना में जन्म दर का बहुत अधिक होना। शिशु मृत्यु दर में कमी के कारण अब महिलाओं की प्रजनन दर में भी तेजी से कमी आई है। सन् 1951 में प्रजनन दर 6.1 प्रति महिला थी, जो घढा कर सन् 1981 में 4.5 और सन् 2008 में 2.6 रह गई। शिशु मृत्यु दर भी 146 प्रति 1000 जीवित नवजात से घटकर अब केवल 50 रह गई है।

दसवीं पंचवर्षीय योजना में निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार शिशु मृत्यु दर को वर्ष 2007 तक कम करके उसे 45 प्रति हजार तक और 2012 तक 28 प्रति हजार तक कम करना है । इसी प्रकार मातृ मृत्यु दर को कम करके उसे वर्ष 2007 तक 2 प्रति हजार और 2012 तक 1 प्रति हजार जीवित जन्म तक लाना है। संक्षेप में वर्ष 2001 से 2011 के मध्य जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर में कमी करके उसे 16.2 प्रतिशत तक लाने का लक्ष्य रखा गया है। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए दसवीं पंचवर्षीय योजना में परिवार कल्याण के लिए 27,125 करोड़ रु. का आवंटन किया गया। जनसंख्या नीति का दीर्घकालीन उद्देश्य वर्ष 2045 तक जनसंख्या के उस स्तर को प्राप्त करना है जो आर्थिक विकास, सामाजिक कल्याण और पर्यावरणीय संरक्षण की आवश्यकताओं के अनुकूल है।

भारत में लोक स्वास्थ्य के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण कार्यक्रम कार्यान्वित किये जा रहे हैं, जिनमें से प्रमुख कार्यक्रम निम्न प्रकार हैं :-

(1) वैश्विक प्रतिरक्षण कार्यक्रम यह कार्यक्रम 1985 में सर्वप्रथम शहरी क्षेत्रों में प्रारम्भ किये गये थे तथा इस कार्यक्रम को 1990 तक सम्पूर्ण देश में लागू किया गया। इस कार्यक्रम के फलस्वरूप 1988 से 2006 के बीच डिप्थेरिया में 83 प्रतिशत, कुकुर खाँसी में 83 प्रतिशत, खसरे में 59 प्रतिशत, नियोनेटल टेटनेस में 94 प्रतिशत तथा पोलियो/माइलिटिस में 97 प्रतिशत की गिरावट आई है। इसके अतिरिक्त हेपेटाइटिस-बी टीकाकरण कार्यक्रम वर्ष 2002 में देश के 33 जिलों और 15 शहरों में प्रयोग के तौर पर प्रारम्भ किया गया था। इसके अच्छा निष्पादन करने वाले राज्यों के सभी जिलों तक बढ़ाया गया है।

(2) पल्स पोलियो प्रतिरक्षण कार्यक्रम इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अधिक जोखिम वाले क्षेत्रों में पूरक प्रतिरक्षण गतिविधियों को तेज किया गया है। पोलियो वायरस का मुकाबला करने के लिए प्रतिरक्षण को बढ़ाने हेतु अधिक जोखिम वाले जिलों और राज्यों में पोलियो वैक्सीन का उपयोग किया जा रहा है। यह कार्यक्रम सम्पूर्ण देश में काफी सफल रहा है।

(3) राष्ट्रीय वायुजनित रोग नियंत्रण कार्यक्रम यह कार्यक्रम देश में मलेरिया, फिलोरियासित, काला-जार, जापानी इनसेफेलाइटिस, डेंगू और चिकनगुनिया जैसे वायुजनित रोगों के नियंत्रण एवं उनकी रोकथाम के लिए कार्यान्वित किया जा रहा है। इन रोगों में से अधिकांश महामारी का रूप लेने वाले होते हैं तथा मौसम के अनुसार इनमें उतार-चढ़ाव होता रहता है।

(4) काला-जार उन्मूलन कार्यक्रम काला जार मुख्यतः देश के चार राज्यों- बिहार, पश्चिम बंगाल, झारखण्ड और उत्तरप्रदेश में स्थानीय बीमारी है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति (2002) में काला-ज्वर को वर्ष 2010 तक समाप्त कर देने का लक्ष्य है। इस बीमारी को समाप्त करने हेतु केन्द्र सरकार काला-जार रोधी दवाईयों, औषधियों और कृमिनाशियों के अतिरिक्त राज्य सरकारों को शत-प्रतिशत प्रचालन लागत उपलब्ध कराती है।

(5) राष्ट्रीय क्षय रोग नियंत्रण कार्यक्रम देश में क्षय रोग नियंत्रण कार्यक्रम काफी सफल रहा है। वर्तमान में संशोधित राष्ट्रीय क्षय रोग नियंत्रण कार्यक्रम को उपचार हेतु चयनित मरीजों में से कम से कम 85 प्रतिशत मरीजों का उपचार करने तथा ऐसे मामलों में 70 प्रतिशत का पता लगाने के उद्देश्य से कार्यान्वित किया जा रहा है। इस कार्यक्रम के द्वारा 84 लाख से अधिक क्षय रोग के मरीजों का उपचार किया गया है जिससे 14 लाख से अधिक अतिरिक्त व्यक्तियों का जीवन बचा है। इस कार्यक्रम के प्रारम्भ होने पर क्षय

रोग से मृत्यु की संख्या प्रतिवर्ष 5 लाख से भी अधिक थी जो कि कम होकर वर्तमान में 3.7 लाख से भी कम रह गयी है। FRES

(6) राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम इस कार्यक्रम के अन्तर्गत देश में एड्स का संक्रमण रोकने के लिए व्यापक स्तर पर प्रयास किये जा रहे है। भारत सरकार ने राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम के तृतीय चरण को एड्स की रोकथान, देखभाल, सहायता और उपचार के लिए कार्यक्रमों का एकीकरण करते हुए वर्ष 2012 तक इस महामारी पर रोक लगाने और इसे समाप्त करने के लक्ष्य से प्रारम्भ किया हैं। इसके लिए 2007-2012 की अवधि हेतु 11,585 करोड़ रुपए का परिव्यय अनुमोदित किया गया है।

(7) राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन देश में ग्रामीण जनसंख्या विशेषकर महिलाओं और बच्चों के लिए प्रभावी स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराने के उद्देश्य से राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (NRHM) का प्रारम्भ सरकार द्वारा 12 अप्रैल, 2005 से किया गया है। इस मिशन के अन्तर्गत गाँव से जिला तक के सभी स्तरों पर एक कार्यात्मक स्वास्थ्य प्रणाली पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। मिशन के अन्तर्गत राज्यों में मार्च, 2007 तक 5.43 लाख 'आशाओं/लिंक वर्कर्स का चयन किया गया है तथा 1.87 लाख 'आशाओं/लिंक वर्कर्स के पास औषध किट्स हैं। इस मिशन के अन्तर्गत देश के 30 राज्यों के 506 जिलों और 2432 ब्लॉकों में परियोजना प्रबंध इकाईयाँ स्थापित की गई हैं।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अन्तर्गत 2012 तक के लिए निर्धारित लक्ष्य का ब्यौरा तालिका-4 में दिया गया है-

तालिका-4

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के लक्ष्य

	मानक	**वर्तमान स्थिति**	**2012 के लिए लक्ष्य**
1	शिशु मृत्यु दर (IMR)	63 प्रति हजार	30 प्रति हजार
2	मातृत्व मृत्यु दर (MMR)	540 प्रति लाख जन्म	100 प्रति लाख जन्म
3	कुल प्रजनन दर (TFR)	2.1	
4	काला-जार के मामले	6 लाख	2015 तक उन्मूलन का लक्ष्य
5	क्षय रोग (TB) के मामले	287 प्रति लाख	85 प्रतिशत मामलों का पूर्व निदान
6	कुष्ठ रोग के मामले	1.8 प्रति दस हजार	1 प्रति दस हजार
7	मलेरिया	-	60 प्रतिशत तक कमी लाना
8	मोतिया बिन्दु आपरेशन	4.4 लाख	46 लाख प्रतिवर्ष

7.4 मानव अधोसंरचना: स्वास्थ्य एवं पौष्टिकता की सीमाएँ

मानव अधोसंरचना के तहत स्वास्थ्य और पौष्टिकता का सुधार आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिए आवश्यक है, लेकिन इसके साथ कुछ सीमाएँ और चुनौतियाँ भी जुड़ी हुई हैं। इन सीमाओं का प्रभाव पूरे समाज और अर्थव्यवस्था पर पड़ता है, और इन समस्याओं का समाधान करने के लिए प्रभावी रणनीतियाँ अपनाने की आवश्यकता है।

1. स्वास्थ्य क्षेत्र की सीमाएँ

a. स्वास्थ्य सेवाओं की असमानता

- **विवरण**: भारत में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता और गुणवत्ता में भिन्नता है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच स्वास्थ्य सेवाओं की असमानता एक बड़ी समस्या है। विशेष रूप से दूर-दराज और ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाएँ सीमित और खराब होती हैं।

- **प्रभाव**: इस असमानता के कारण, गरीब और ग्रामीण इलाकों में रहने वाले लोग स्वास्थ्य देखभाल से वंचित रहते हैं, जिससे उनकी जीवन प्रत्याशा पर नकारात्मक असर पड़ता है।

b. आवश्यक चिकित्सा सुविधाओं की कमी

- **विवरण**: भारत में अस्पतालों और चिकित्सा संस्थानों की संख्या, विशेष रूप से प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों और विशेषज्ञ डॉक्टरों की कमी है। उच्च गुणवत्ता वाली चिकित्सा सुविधाओं की पहुँच कुछ बड़े शहरों तक सीमित रहती है।
- **प्रभाव**: यह स्थिति ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों के लोगों को आवश्यक स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित कर देती है, जिससे उनका स्वास्थ्य प्रभावित होता है।

c. बीमारी और स्वास्थ्य संकटों का बढ़ना

- **विवरण**: भारत में विभिन्न बीमारियाँ, जैसे संक्रामक रोग, गैर-संक्रामक रोग (जैसे हृदय रोग, मधुमेह) और मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ लगातार बढ़ रही हैं। इसके अलावा, प्राकृतिक आपदाएँ और महामारी (जैसे कोविड-19) भी स्वास्थ्य क्षेत्र पर दबाव डालती हैं।
- **प्रभाव**: ये चुनौतियाँ स्वास्थ्य सेवाओं पर भारी बोझ डालती हैं, जिससे संसाधनों की कमी और स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता पर असर पड़ता है।

d. स्वास्थ्य बीमा का अपर्याप्त कवरेज

- **विवरण**: भारत में स्वास्थ्य बीमा का कवरेज सीमित है और केवल कुछ वर्गों तक ही सीमित है। कई लोग जो गरीबी रेखा से नीचे हैं या नॉन-फॉर्मल सेक्टर में काम करते हैं, वे स्वास्थ्य बीमा सुविधाओं से बाहर रहते हैं।
- **प्रभाव**: इससे स्वास्थ्य देखभाल की लागत अधिक हो जाती है, और लोग इलाज से वंचित रहते हैं या इलाज की गुणवत्ता में कमी आती है।

---

2. पौष्टिकता क्षेत्र की सीमाएँ

a. कुपोषण और एनीमिया की समस्या

- **विवरण**: भारत में कुपोषण और एनीमिया की दर विशेष रूप से बच्चों, गर्भवती महिलाओं और किशोर लड़कियों में बहुत अधिक है। पोषण की कमी, विशेष

रूप से प्रोटीन, विटामिन, और खनिजों की कमी, समाज के बड़े हिस्से को प्रभावित करती है।

- **प्रभाव**: कुपोषण और एनीमिया से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर होती है, जो स्वास्थ्य समस्याओं और विकासात्मक बाधाओं का कारण बनती है।

b. आहार की असमानता

- **विवरण**: विभिन्न सामाजिक और आर्थिक वर्गों में पौष्टिक आहार तक पहुँच में असमानता है। उच्च वर्ग के लोग स्वस्थ और संतुलित आहार प्राप्त कर सकते हैं, जबकि निम्न वर्ग के लोग अक्सर सस्ता और पोषक तत्वों से रहित भोजन खाते हैं।
- **प्रभाव**: आहार में असमानता से कुपोषण की समस्या बढ़ती है, जो विशेष रूप से बच्चों और गर्भवती महिलाओं के लिए खतरनाक है।

c. संवेदनशील समूहों को पर्याप्त पोषण की कमी

- **विवरण**: भारत में महिलाओं, बच्चों और वृद्धों के लिए पौष्टिकता की समस्या अधिक गंभीर है। गर्भवती महिलाओं और शिशुओं को आवश्यक पोषक तत्वों की कमी का सामना करना पड़ता है।
- **प्रभाव**: यह उनकी शारीरिक और मानसिक विकास में बाधा डालता है और भविष्य में स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बनता है।

d. सार्वभौमिक पोषण कार्यक्रमों की कमी

- **विवरण**: जबकि सरकार ने कुछ पोषण योजनाएँ शुरू की हैं (जैसे मिड-डे मील योजना, पोषण अभियान), लेकिन ये योजनाएँ देश के सभी हिस्सों में समान रूप से लागू नहीं होतीं। इसके अलावा, कार्यक्रमों में संसाधनों और प्रभावी निगरानी की कमी है।
- **प्रभाव**: इससे योजनाओं का प्रभाव सीमित रहता है और कई जरूरतमंद वर्गों तक पोषण सहायता नहीं पहुँच पाती।

---

3. स्वास्थ्य और पौष्टिकता की सीमाओं से संबंधित अन्य समस्याएँ

a. जागरूकता की कमी

- **विवरण**: भारत में स्वास्थ्य और पौष्टिकता के बारे में जागरूकता की कमी है। ग्रामीण क्षेत्रों और समाज के निचले वर्गों में पोषण और स्वास्थ्य संबंधी जानकारी का अभाव है।
- **प्रभाव**: इस कमी के कारण लोग सही आहार और स्वास्थ्य आदतों को अपनाने में असफल रहते हैं, जिससे स्वास्थ्य समस्याएँ और कुपोषण की समस्या बढ़ती है।

b. संस्कृतिक और सामाजिक बाधाएँ

- **विवरण**: कई बार सामाजिक और सांस्कृतिक परंपराएँ स्वास्थ्य और पोषण से संबंधित निर्णयों को प्रभावित करती हैं। जैसे कुछ समुदायों में विशेष प्रकार के आहार को लेकर पूर्वाग्रह हो सकते हैं, या महिलाओं को पोषण संबंधी प्राथमिकता नहीं दी जाती।
- **प्रभाव**: यह सामाजिक संरचनाएँ स्वास्थ्य और पोषण संबंधी निर्णयों में बाधा डालती हैं, जिससे समग्र रूप से लोगों की सेहत पर नकारात्मक असर पड़ता है।

c. संसाधनों की कमी

- **विवरण**: स्वास्थ्य और पौष्टिकता से जुड़े कार्यक्रमों के लिए आवश्यक संसाधन (जैसे धन, मानव संसाधन, बुनियादी ढांचा) पर्याप्त नहीं हैं। यह विशेष रूप से ग्रामीण और दूरदराज क्षेत्रों में एक बड़ी चुनौती है।
- **प्रभाव**: संसाधनों की कमी के कारण योजनाएँ और कार्यक्रम प्रभावी तरीके से लागू नहीं हो पाते और उनके लक्षित उद्देश्य प्राप्त नहीं हो पाते।

7.5 सार संक्षेप

मानव अधोसंरचना का अर्थ उस बुनियादी ढांचे से है जो मानव जीवन के विकास और कल्याण के लिए आवश्यक होता है, जिसमें स्वास्थ्य और पौष्टिकता महत्वपूर्ण घटक होते हैं। स्वस्थ और पोषित जनसंख्या ही देश के सामाजिक और आर्थिक विकास में योगदान दे सकती है। स्वास्थ्य और पौष्टिकता न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं, बल्कि मानसिक और भावनात्मक विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

1. स्वास्थ्य का महत्व

स्वास्थ्य एक मजबूत मानव अधोसंरचना का आधार है। एक स्वस्थ जनसंख्या अधिक उत्पादक और कार्यकुशल होती है। भारत में स्वास्थ्य सुधार के लिए कई पहलें की गई हैं, जैसे **आयुष्मान भारत योजना**, **राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन**, और **स्वच्छ भारत मिशन**। इन

योजनाओं का उद्देश्य सभी नागरिकों को सस्ती और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करना है, विशेष रूप से ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में।

2. पौष्टिकता का महत्व

पौष्टिकता का सीधा संबंध शारीरिक विकास, मानसिक क्षमता और कार्यक्षमता से है। सही पोषण से लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है। भारत में, विशेष रूप से **कुपोषण** और **एनीमिया** की समस्या गंभीर है, जो बच्चों, गर्भवती महिलाओं और किशोरों में प्रचलित हैं। सरकार ने **मिड-डे मील योजना**, **पोषण अभियान** जैसी योजनाएँ शुरू की हैं, ताकि सभी वर्गों को उचित आहार मिल सके।

3. स्वास्थ्य और पौष्टिकता की चुनौतियाँ

भारत में स्वास्थ्य और पौष्टिकता क्षेत्र में कुछ प्रमुख सीमाएँ हैं:

- **स्वास्थ्य सेवाओं की असमानता**: शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं के बीच अंतर।
- **कुपोषण**: बच्चों, गर्भवती महिलाओं और अन्य संवेदनशील समूहों में पोषण की कमी।
- **स्वास्थ्य बीमा का अपर्याप्त कवरेज**: गरीब और ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँचने में कठिनाई।
- **आहार की असमानता**: समाज के विभिन्न वर्गों के बीच पौष्टिक आहार की पहुँच में अंतर।

4. सरकारी प्रयास और योजनाएँ

भारत सरकार ने **स्वास्थ्य** और **पौष्टिकता** में सुधार के लिए विभिन्न योजनाएँ लागू की हैं, जैसे:

- **आयुष्मान भारत योजना** (स्वास्थ्य कवरेज के लिए)
- **प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना** (गर्भवती महिलाओं के लिए पोषण सहायता)
- **पोषण अभियान** (कुपोषण की समस्या को हल करने के लिए)
- **मिड-डे मील योजना** (विद्यालयों में बच्चों के लिए पौष्टिक भोजन)

7.6 मुख्य शब्द

यहां कुछ महत्वपूर्ण शब्द दिए गए हैं जो मानव अधोसंरचना, स्वास्थ्य और पौष्टिकता से संबंधित हैं:

1. **मानव अधोसंरचना (Human Infrastructure)**: वह बुनियादी ढांचा जो मानव संसाधनों के विकास और कल्याण के लिए आवश्यक होता है, जिसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, पोषण, और अन्य जीवनस्तरीय सेवाएँ शामिल हैं।
2. **स्वास्थ्य (Health)**: शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कल्याण की स्थिति, जिसमें किसी भी बीमारी या विकार की अनुपस्थिति होती है।
3. **पौष्टिकता (Nutrition)**: शरीर को आवश्यक पोषक तत्वों (जैसे प्रोटीन, विटामिन, खनिज, और ऊर्जा) की आपूर्ति, ताकि शरीर की विकासात्मक और कार्यात्मक प्रक्रिया सही ढंग से चल सके।
4. **कुपोषण (Malnutrition)**: पोषण की कमी या असंतुलन की स्थिति, जिसमें शरीर को आवश्यक पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा नहीं मिलती, जिससे स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।
5. **एनीमिया (Anemia)**: रक्त में हिमोग्लोबिन की कमी होने की स्थिति, जो शरीर में ऑक्सीजन की आपूर्ति को प्रभावित करती है। यह आमतौर पर आयरन की कमी के कारण होता है।
6. **स्वास्थ्य बीमा (Health Insurance)**: एक वित्तीय योजना, जो स्वास्थ्य देखभाल खर्चों को कवर करने के लिए प्रदान की जाती है, ताकि व्यक्ति को इलाज के समय आर्थिक बोझ का सामना न करना पड़े।
7. **आयुष्मान भारत योजना (Ayushman Bharat Scheme)**: भारत सरकार द्वारा शुरू की गई योजना, जिसका उद्देश्य गरीब और ग्रामीण परिवारों को स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं की सुलभता और वित्तीय सहायता प्रदान करना है।
8. **मिड-डे मील योजना (Mid-Day Meal Scheme)**: भारत सरकार द्वारा स्कूलों में छात्रों को मुफ्त और पौष्टिक भोजन देने की योजना, ताकि बच्चों में कुपोषण की समस्या को कम किया जा सके।
9. **पोषण अभियान (Poshan Abhiyaan)**: एक राष्ट्रीय योजना जिसका उद्देश्य कुपोषण को कम करना और विशेष रूप से महिलाओं, बच्चों और किशोरों के बीच पोषण की स्थिति में सुधार करना है।
10. **स्वच्छता मिशन (Swachh Bharat Mission)**: भारत सरकार द्वारा स्वच्छता और स्वास्थ्य सुधार को बढ़ावा देने के लिए शुरू की गई एक पहल, जिसका उद्देश्य भारत को स्वच्छ और हाइजीनिक बनाना है।

11. **संक्रामक रोग** (Infectious Diseases): वह रोग जो बैक्टीरिया, वायरस, या अन्य रोगजनकों के संपर्क में आने से फैलते हैं, जैसे फ्लू, ट्यूबरकुलोसिस, मलेरिया आदि।
12. **गर्भवती महिला पोषण** (Maternal Nutrition): गर्भवती महिलाओं को सही पोषक तत्व प्रदान करना, ताकि गर्भस्थ शिशु का सही विकास हो सके और माँ की सेहत भी ठीक रहे।
13. **उच्च रक्तचाप** (Hypertension): एक स्थिति जिसमें रक्तचाप सामान्य से अधिक होता है, जो हृदय रोग और स्ट्रोक जैसी गंभीर समस्याओं का कारण बन सकता है।
14. **टीकाकरण** (Immunization): संक्रामक रोगों से बचाव के लिए शरीर में एंटीबॉडी उत्पन्न करने के लिए दी जाने वाली वैक्सीनेशन प्रक्रिया।
15. **जीवन प्रत्याशा** (Life Expectancy): औसतन एक व्यक्ति के जीवनकाल की उम्मीद, जो स्वास्थ्य और जीवनस्तरीय सेवाओं की गुणवत्ता पर निर्भर करती है।
16. **स्वास्थ्य सेवा** (Health Care): स्वास्थ्य से संबंधित सेवाएँ, जिनमें चिकित्सा देखभाल, इलाज, मानसिक स्वास्थ्य देखभाल, और उपचार शामिल हैं।
17. **विटामिन** (Vitamins): शरीर के सामान्य कार्यों के लिए आवश्यक पोषक तत्व जो भोजन के माध्यम से प्राप्त होते हैं और शरीर में विभिन्न जैविक प्रक्रियाओं में सहायक होते हैं।
18. **प्रारंभिक बाल्यावस्था** (Early Childhood): बच्चों की प्रारंभिक अवस्था (0-5 वर्ष) जब शारीरिक और मानसिक विकास महत्वपूर्ण होता है और सही पोषण का असर जीवनभर रहता है।
19. **आहार** (Diet): वह खाद्य पदार्थ जो किसी व्यक्ति या समुदाय के दैनिक आहार में शामिल होते हैं और जिनसे पोषण प्राप्त होता है।
20. **सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज** (Universal Health Coverage): यह एक प्रणाली है जिसमें सभी नागरिकों को, बिना किसी भेदभाव के, स्वास्थ्य देखभाल की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।

7.7 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

यहां कुछ महत्वपूर्ण स्व-प्रगति परिक्षण (self-assessment) प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं जो मानव अधोसंरचना, स्वास्थ्य और पौष्टिकता से संबंधित हैं:

1. मानव अधोसंरचना क्या है?

उत्तर: मानव अधोसंरचना उस बुनियादी ढांचे को कहते हैं जो मानव संसाधनों के समुचित विकास और कल्याण के लिए आवश्यक होता है। इसमें स्वास्थ्य सेवाएँ, शिक्षा, पोषण, सुरक्षा, और जीवनस्तरीय सुविधाएँ शामिल होती हैं। यह समाज के विकास और उत्पादकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

2. स्वास्थ्य और पौष्टिकता के बीच क्या संबंध है?

उत्तर: स्वास्थ्य और पौष्टिकता एक-दूसरे से गहरे रूप से जुड़े होते हैं। अच्छा स्वास्थ्य सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त और संतुलित पोषण की आवश्यकता होती है। पौष्टिक आहार शरीर के समग्र विकास, रोग प्रतिकारक क्षमता और मानसिक स्थिति के लिए आवश्यक है। यदि किसी व्यक्ति को उचित पोषण नहीं मिलता, तो वह बीमारी और स्वास्थ्य समस्याओं का सामना कर सकता है।

3. भारत में स्वास्थ्य सेवाओं में असमानता के कारण क्या हैं?

उत्तर: भारत में स्वास्थ्य सेवाओं में असमानता के कई कारण हैं:

- **आर्थिक असमानता:** गरीब वर्ग के लोग महंगी स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ नहीं उठा पाते।
- **भौगोलिक असमानता:** शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं की पहुँच में बड़ा अंतर है।
- **शिक्षा और जागरूकता की कमी:** कई लोग स्वास्थ्य के अधिकारों और सेवाओं के बारे में अनजान होते हैं।
- **स्वास्थ्य सेवा केंद्रों की कमी:** ग्रामीण इलाकों में स्वास्थ्य केंद्रों और विशेषज्ञ चिकित्सकों की कमी है।

4. कुपोषण से क्या दुष्प्रभाव होते हैं?

उत्तर: कुपोषण के कई दुष्प्रभाव होते हैं, जो शारीरिक और मानसिक विकास को प्रभावित कर सकते हैं:

- **शारीरिक विकास में रुकावट:** बच्चों में शारीरिक विकास धीमा हो जाता है, जिससे कद और वजन में कमी होती है।
- **मानसिक विकास पर असर:** कुपोषण बच्चों के मानसिक विकास और संज्ञानात्मक क्षमताओं को प्रभावित करता है।

- **इम्यून सिस्टम कमजोर होना:** कुपोषण के कारण शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो जाती है, जिससे संक्रमण और अन्य बीमारियाँ होती हैं।
- **उत्पादकता में कमी:** कुपोषित व्यक्ति की कार्य क्षमता घट जाती है, जिससे समाज और अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक असर पड़ता है।

5. आयुष्मान भारत योजना का उद्देश्य क्या है?

उत्तर: आयुष्मान भारत योजना का उद्देश्य भारत के गरीब और ग्रामीण परिवारों को गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाएँ सुलभ और सस्ती बनाना है। इस योजना के तहत 10 करोड़ परिवारों को स्वास्थ्य कवर प्रदान किया गया है, जिससे उन्हें अस्पताल में भर्ती होने पर खर्च की चिंता नहीं करनी पड़ती। इस योजना का मुख्य लक्ष्य सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज प्राप्त करना है।

6. भारत में बच्चों में कुपोषण की स्थिति क्या है?

उत्तर: भारत में बच्चों में कुपोषण की समस्या बहुत गंभीर है। **एनएसएसओ (NSSO)** और **एनएफएचएस (NFHS)** की रिपोर्टों के अनुसार, देश में बच्चों में वज़न की कमी, अत्यधिक पतलापन और एनीमिया जैसी समस्याएँ आम हैं। कुपोषण के कारण बच्चों में शारीरिक विकास में रुकावट, मानसिक स्वास्थ्य पर असर, और रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी आती है।

7. पोषण अभियान (Poshan Abhiyaan) क्या है और इसका उद्देश्य क्या है?

उत्तर: पोषण अभियान भारत सरकार द्वारा शुरू किया गया एक राष्ट्रीय अभियान है, जिसका उद्देश्य कुपोषण को कम करना है। इस अभियान के माध्यम से महिलाओं, बच्चों और किशोरों में पोषण की स्थिति सुधारने के प्रयास किए जाते हैं। यह अभियान आहार, स्वच्छता, और स्वास्थ्य के महत्व के बारे में जागरूकता फैलाने और आहार में सुधार करने का काम करता है।

8. स्वच्छ भारत मिशन का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर: स्वच्छ भारत मिशन का स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इस मिशन के तहत स्वच्छता और साफ-सफाई के महत्व पर जोर दिया जाता है, जिससे:

- **संक्रामक रोगों में कमी:** बेहतर स्वच्छता के कारण पानी से होने वाली बीमारियों और संक्रामक रोगों में कमी आती है।
- **स्वस्थ पर्यावरण:** स्वच्छता से पर्यावरण में सुधार होता है, जिससे हवा और जल की गुणवत्ता बेहतर होती है।

- **सामाजिक जागरूकता:** इस मिशन के तहत लोगों में स्वच्छता के प्रति जागरूकता बढ़ी है, जो व्यक्तिगत और सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार लाती है।

9. भारत में स्वास्थ्य और पौष्टिकता सुधारने के लिए सरकार द्वारा क्या कदम उठाए गए हैं?

उत्तर: भारत में सरकार ने स्वास्थ्य और पौष्टिकता सुधारने के लिए कई योजनाएँ और पहलें शुरू की हैं, जैसे:

- **आयुष्मान भारत योजना:** गरीबों के लिए स्वास्थ्य बीमा कवर।
- **मिड-डे मील योजना:** बच्चों को स्कूलों में पौष्टिक भोजन प्रदान करना।
- **पोषण अभियान (Poshan Abhiyaan):** कुपोषण को कम करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर अभियान चलाना।
- **प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना:** गर्भवती महिलाओं को पोषण संबंधी सहायता देना।
- **स्वच्छ भारत मिशन:** स्वच्छता और स्वास्थ्य को बढ़ावा देना।

10. पौष्टिक आहार के क्या लाभ हैं?

उत्तर: पौष्टिक आहार के कई लाभ हैं:

- **शारीरिक और मानसिक विकास में मदद:** सही आहार से शारीरिक विकास और मानसिक क्षमता में सुधार होता है।
- **रोग प्रतिरोधक क्षमता का निर्माण:** पोषण से शरीर की इम्यूनिटी मजबूत होती है, जिससे बीमारी से बचाव होता है।
- **ऊर्जा और कार्य क्षमता:** संतुलित आहार से शरीर को आवश्यक ऊर्जा मिलती है, जो दिनभर की गतिविधियों के लिए आवश्यक है।
- **स्वस्थ शरीर:** सही पोषण से शरीर स्वस्थ और सक्रिय रहता है, जिससे जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है।

7.8 संदर्भ सूची

- पांडे, एस. (2018). भारतीय अर्थव्यवस्था: संरचना और विकास (2nd ed.). नई दिल्ली: रूटलेज प्रकाशन।
- शर्मा, आर. (2021). भारतीय अर्थव्यवस्था में मानव संसाधन का योगदान. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- चौधरी, ए. (2020). स्वास्थ्य और पौष्टिकता: भारतीय संदर्भ (1st ed.). मुंबई: फीनिक्स पब्लिशर्स।
- वर्मा, पी. (2019). आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था और विकास. जयपुर: जयपुर प्रेस।
- सिंह, जी. (2023). भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए स्वास्थ्य नीति. दिल्ली: वाणी प्रकाशन।

7.9 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1.मानव अधोसंरचना के विकास का क्या आशय है? भारत जैसे विकासशील देश में स्वास्थ्य सुविधाओं के महत्व की विवेचना कीजिए।

2. भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं के महत्व की विवेचना कीजिए। नियोजन काल में स्वास्थ्य के क्षेत्र में हुई प्रगति की समीक्षा कीजिए ।

3. भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं की प्रगति का मूल्यांकन कीजिए। मानव संसाधन विकास किस सीमा तक स्वास्थ्य एवं पौष्टिकता पर निर्भर करता है ? (letige

4. भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास की समीक्षा कीजिए। देश में संचालित प्रमुख लोक स्वास्थ्य कार्यक्रमों को संक्षेप में लिखिए। जिले प्रेगने जोगी कि

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मानव अधोसंरचना से आप क्या समझते हैं?

2. सामाजिक अधोसंरचना का क्या आशय हैं?

3. भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं के महत्व को समझाइये ।

4. भारत में स्वास्थ्य के क्षेत्र में हुई प्रगति का ब्यौरा दीजिए ।

5. भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास को समझाइये ।

6 स्वास्थ्य एवं पौष्टिकता मानव विकास में क्या भूमिका निभाते हैं ?

7 भारत में संचालित किये जा रहे स्वास्थ्य कार्यक्रमों का वर्णन कीजिए ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मानव अधोसंरचना विकास की दृष्टि से किस क्षेत्र पर निवेश करना आवश्यक होता है-

(अ) स्वास्थ्य

(ब) शिक्षा

(स) पौष्टिकता

(द) उपर्युक्त सभी

2. भारत में शिशु मृत्यु दर वर्ष 2009 में घटकर कितनी रह गई है-

(अ) 63 प्रति हजार

(ब) 50 प्रति हजार

(स) 48 प्रति हजार

(द) 45 प्रति हजार की

3. भारत में स्थूल मृत्यु दर वर्ष 2009 में कितनी रह गई-

(अ) 7.3 प्रति हजार

(ब) 8.1 प्रति हजार

(स) 8.5 प्रति हजार

(द) 9.1

4. प्रति हजार भारत में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन का प्रारम्भ कब हुआ- 4.

(अ) 12 अप्रैल, 2000

(ब) 12 अप्रैल, 2002

(स) 12 अप्रैल, 2005

(द) 12 अप्रैल, 2007

उत्तरः- 1. (द), 2. (ब), 3. (अ), 4. (स) ।

8
शिक्षा, ज्ञान एवं कौशल

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 मानव संसाधन विकास में शिक्षा का महत्व
8.4 भारत में शिक्षा पर व्यय (Expenditure on education in India)
8.5 सार संक्षेप
8.6 मुख्य शब्द
8.7 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
8.8 संदर्भ सूची
8.9 अभ्यास प्र्श्न

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी देश के आर्थिक विकास में भौतिक पूँजी के साथ-साथ मानवीय पूँजी (Human Capital) का भी विशेष स्थान है। अब यह माना जाने लगा है कि व्यवहार में पूँजी-स्टॉक की वृद्धि पर्याप्त सीमा तक मानव पूँजी निर्माण पर निर्भर करती है, जो कि देश के सभी व्यक्तियों का ज्ञान (Knowledge), कुशलता एवं क्षमताएँ (Skills) बढ़ाने की प्रक्रिया है। मानवीय साधनों का विकास ज्ञान, योग्यता व समाज के व्यक्तियों की कार्यक्षमता में वृद्धि होने वाली एक प्रक्रिया है। यह मानवीय पूँजी का संचय है जिसका अर्थव्यवस्था के विकास में प्रभावशाली विनियोग किया जाता है। एडम स्मिथ तथा वैबलन जैसे प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री भी उत्पादन में मानव पूँजी के महत्व को स्वीकार करते हैं। मानवीय संसाधनों के विकास पर आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने बहुत अधिक महत्व दिया है। इन अर्थशास्त्रियों में प्रो. शुल्ज, प्रो. हार्बिन्सन, प्रो. डेनिसन, प्रो. बैकर, प्रो. कुजनेट्स आदि के नाम विशेष उललेखनीय हैं। इन अर्थशास्त्रियों ने शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य आदि में निवेश पर जोर दिया है जिससे भौतिक पूँजी के समान मानवीय पूँजी का निर्माण हो सके। मानवीय संसाधनों का विकास भारत जैसे विकासशील देशों में अति आवश्यक है क्योंकि मानवीय पूँजी के द्वारा ही प्राकृतिक संसाधनों एवं भौतिक पूँजी का उपयोग तीव्र गति से विकास कार्यों में करना सम्भव होता है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
- विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।

8.3 मानव संसाधन विकास में शिक्षा का महत्व

मानव संसाधन के विकास से आशय शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य आदि पर निवेश करने से है। मानव संसाधन की कार्यकुशलता बढ़ाने में शिक्षा एवं प्रशिक्षण (Education and Training) का विशेष महत्व है। शिक्षा के द्वारा ही तकनीकी का उपयोग सम्भव होता है जिससे उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि होती है। संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) के एक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक प्रगति उन देशों में हुई है जहाँ पर शिक्षा का व्यापक विस्तार हुआ है।

प्रो. गैलब्रेथ (J.K. Galbraith) का मत है कि "शिक्षा आर्थिक विकास की कुंजी है।" अतः यह आवश्यक है कि शिक्षा के विकास के लिए विद्यालयों, प्रयोगशालाओं, उपकरणों, पुस्तकों आदि की सुविधाओं में विस्तार करने के लिए बड़ी मात्रा में निवेश (Investment) किया जाए।

अर्द्धविकसित एवं अल्पविकसित देशों के संदर्भ में प्रो. सिंगर (H.W. Singer) ने यह अनुमान कि इनर कि लीमर लगाया है कि आर्थिक प्रगति को ठीक प्रकार से चलाने के लिए एक देश को अपनी राष्ट्रीय आय का कम से कम 7 से 8 प्रतिशत तक शिक्षा पर विनियोग करना चाहिए। इसमें 1.5 से 2 प्रतिशत तक अनुसंधान और विकास तथा 0.5 प्रतिशत वैज्ञानिकों के प्रशिक्षण पर निवेश अवश्य होना चाहिए। इसी प्रकार प्रो. हार्बिन्सन (Harbinson) ने यह अनुमान लगाया है कि अर्द्धविकसित एवं अल्पविकसित देशों में प्रथम अवस्था में जनसंख्या का केवल 2.6 प्रतिशत माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इन राष्ट्रों को चाहिए कि दूसरी अवस्था प्राप्त करने के लिए माध्यमिक शिक्षा की सुविधाओं का तीव्र गति से विस्तार करें तथा कम से कम 5 गुना विस्तार तो अति आवश्यक है। उच्च शिक्षा का विकास भी आर्थिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

तकनीकी प्रशिक्षण एवं प्रौढ़ शिक्षा मानवीय साधनों के विकास कार्यक्रम का दूसरा महत्वपूर्ण भाग है। लोगों को व्यावसायिक कला कौशल में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। इसके साथ ही दुर्लभ कौशल के विकास के लिए विशेष महत्व देना चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र

के साथ-साथ कृषि विस्तार, औद्योगिक कुशलता बढ़ाने तथा प्रशासकीय एवं प्रबन्धकीय शिक्षा के विस्तार का आयोजन किया जाना चाहिए।

उत्पादन प्रक्रिया में ज्ञान एवं कौशल की भूमिका

प्राचीन युग में प्राकृतिक साधन सभी देशों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे जबकि जनसंख्या और आवश्यकताएँ अपेक्षाकृत कम थीं। किन्तु कालान्तर में जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई और इसके साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताओं में भी वृद्धि हुई जिसके परिणामस्वरूप सीमित प्राकृतिक संसाधनों पर प्रयोगकर्ताओं का दबाव निरन्तर बढ़ता गया। इसके फलस्वरूप यह अनुमान किया जाने लगा कि ऐसे ज्ञान का विकास किया जाये जिससे न्यूनतम साधनों के प्रयोग से अधिकतम मानवीय आवश्यकताओं को संतुष्ट किया जा सके। समय के साथ-साथ यह ज्ञान विकसित होता गया और वर्तमान उत्पादन प्रक्रिया में 'ज्ञान एवं कौशल तत्व' की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं लाभप्रद हो गई है। 10-0000

इस संबंध में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का मत है कि "वर्तमान समय में एक ऐसे नये समाज का उदय हो रहा है जिसमें भूमि और पूँजी के स्थान पर ज्ञान उत्पादन का प्रमुख साधन बन गया है। "इस प्रकार जिस देश में ज्ञान एवं कौशल का अधिक विकास हुआ उसे अन्य देशों की अपेक्षा उत्पादन में अधिक कुशलता एवं लाभ की प्राप्ति हुई। इसी ज्ञान को 'बौद्धिक सम्पदा' (Intellectual Property) कहते हैं। आधुनिक अर्थशास्त्रियों हार्बिन्सन, डैनिसन, बैकर, कुजनेट्स आदि का मत है कि अमेरिकन अर्थव्यवस्था के विकास का मुख्य कारण शिक्षा एवं कौशल विकास पर अपेक्षाकृत अधिक धन व्यय करना है। ε ς 11-0160

प्रो. हार्बिन्सन के अनुसार- "पूँजी, प्राकृतिक संसाधन, विदेशी सहायता और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सामान्यतः आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं, किन्तु मानव संसाधन इन सबमें सर्वोपरि है।"

प्रो. रिचार्ड टी. गिल के अनुसार आर्थिक विकास कोई यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है, यह तो एक मानवीय उपक्रम है। जिसकी प्रगति उन लोगों की कुशलता, गुणों, दृष्टिकोणों एवं अभिरुचियों पर निर्भर करती है जो इसे साकार रूप देते हैं।

प्रो. शुल्ज (T.W. Schultz) का मत है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से कौशल निर्माण हेतु अथवा मानवीय क्षमताओं में सुधार हेतु विनियोग ही सही अर्थों में मानव-निवेश है। प्रो. राबर्ट सोलो (Solow) ने भी शुल्ज के समान ही अमेरिका का अध्ययन करके यह निष्कर्ष

निकाला है कि तकनीकी परिवर्तन शिक्षा के विकास के कारण होता है। अमेरिकी अर्थव्यवस्था के विकास में तकनीकी परिवर्तन का योगदान 2/3 है। लेकिन तकनीकी परिवर्तन स्वयं शिक्षा के विकास के कारण होता है। पश्चिमी देशों के समान ही सोवियत रूस ने भी विकास के लिए मानव संसाधन में विकास पर बल दिया तथा अपनी योजनाओं में शिक्षा के स्तर में सुधार तथा तकनीकी प्रशिक्षण पर ध्यान दिया। फलस्वरूप रूस ने सभी स्तरों पर आर्थिक विकास किया। किन्तु भारत एवं अन्य अल्पविकसित देशों ने मानवीय पूँजी निर्माण पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया ।

संक्षेप में, यह स्पष्ट है कि मानव संसाधन और आर्थिक विकास में घनिष्ठ सम्बन्ध है। शिक्षा और प्रशिक्षण से मानवीय ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि होती है जो कि मानव संसाधन की गुणवत्ता को निर्धारित करते हैं। इस सम्बन्ध में प्रो. गैलब्रेथ का यह कथन बिल्कुल सही है कि शिक्षा आर्थिक विकास की कुंजी है।

8.4 भारत में शिक्षा पर व्यय (Expenditure on education in India)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत में सामाजिक क्षेत्र के विस्तार को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। सामाजिक सेवा क्षेत्र के अन्तर्गत शिक्षा एवं प्रशिक्षण सुविधाओं के विकास पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। तालिका-1 में शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा किये गये व्यय का विवरण दर्शाया गया है।

भारत में शिक्षा पर केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा व्यय

वर्ष	कुल व्यय (करोड़ रु.)	शिक्षा पर व्यय (करोड़ रु.)	शिक्षा पर प्रतिशत व्यय
1986-87	1,00,470	8,651	8.6
1990-91	1,63,637	17,094	10.4
2000-01	5,91,300	67,000	11.3
2005-06	9,59,855	96,365	10
2006-07	11,09,174	1,14,744	10.3
2007-08	13,16,246	1,29,366	9.8
2008-09	15,95,110	1,61,360	10.1

2009-10	19,09,380	2,04,986	10.7
2010-11 (अनुमान)	20,71,147	2,35,035	11.3
स्रोतः-आर्थिक समीक्षा 2005-06 एवं Economic Survey 2010-11, Table-12.4 Page 294.			

तालिका-1 से यह स्पष्ट है कि केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा वर्ष 1986-87 में शिक्षा के विस्तार पर कुल 8,651 करोड़ रुपये व्यय किये गये थे, जो बढ़कर 2000-01 में 67,000 करोड़ रुपये और वर्ष 2010-11 में 2,35,035 करोड़ रुपये होने का अनुमान है। केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा किये गये कुल व्यय का औसतन लगभग 10 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय किया गया। स्पष्ट है कि पिछले 20 वर्षों में शिक्षा जैसी मानव अधोसंरचना के विस्तार पर किये जाने वाले व्यय में तुलनात्मक रूप से कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ। उल्लेखनीय है कि सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में भारत में शिक्षा पर व्यय 3 प्रतिशत से भी कम हो रहा है तथा यह वर्ष 2010-11 में सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का 2.98 प्रतिशत रहने का अनुमान है।

इस संबंध में यह तथ्य भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि तालिका-1 में दिये गये आँकड़े सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत शिक्षा पर किये गये व्यय को दर्शाते हैं। किन्तु शिक्षा पर निजी क्षेत्र द्वारा भी करोड़ों रुपये व्यय किये जाते हैं। पिछले कुछ वर्षों से शिक्षा पर निजी क्षेत्र द्वारा किये गये व्यय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

भारत में साक्षरता दर

भारत में स्वतंत्रता के बाद शिक्षा पर हुए व्यय के परिणामस्वरूप देश के सभी क्षेत्रों में साक्षरता में तेज गति से विस्तार हुआ। सन् 1951 की जनगणना के अनुसार देश में केवल 18.33 प्रतिशत लोग ही साक्षर थे जो शिक्षा सुविधाओं में विस्तार के फलस्वरूप बढ़कर 1971 में 34.45 प्रतिशत, 1991 में 52.21 प्रतिशत, 2001 में 64.84 प्रतिशत और 2011 में 74.04 प्रतिशत हो गये। किन्तु साक्षरता में हुई यह वृद्धि देश में विभिन्न क्षेत्रों/राज्यों में समान नहीं हैं। अर्थात् कुछ राज्यों में साक्षर व्यक्ति अधिक तो कुछ राज्यों में कम हैं। साक्षरता दर का राज्यवार तुलनात्मक विवरण तालिका-2 में दर्शाया गया है।

तालिका-2

भारत में साक्षरता दर का तुलनात्मक विवरण (1951-2011)

क्रम	राज्य	1951	1991	2001	2011
1	आंध्रप्रदेश	-	44.08	60.47	67.66
2	असम	18.53	52.89	63.25	73.18
3	बिहार	13.49	37.49	47	63.82
4	छत्तीसगढ़	-	42.91	64.66	71.04
5	गुजरात	21.82	61.29	69.14	79.31
6	हरियाणा	-	55.85	67.91	76.64
7	हिमाचल प्रदेश	-	63.86	76.48	83.78
8	जम्मू-कश्मीर	-	उ.न.	55.52	68.74
9.	झारखण्ड	12.93	41.39	53.56	67.63
10	कर्नाटक	-	56.04	66.64	75.6
11	केरल	47.18	89.81	890.86	93.91
12	मध्यप्रदेश	13.16	44.67	63.74	70.63
13	महाराष्ट्र	27.91	64.87	76.88	82.91
14	उड़ीसा	15.8	49.09	63.08	73.45
15	पंजाब	-	58.51	69.65	76.68
16	राजस्थान	-	38.55	60.41	67.06
17	तमिलनाडु	-	62.66	73.45	80.33
18	उत्तरप्रदेश	12.02	40.71	56.27	69.72
19	पश्चिम बंगाल	24.61	57.7	68.64	77.08
	भारत	**18.33**	**52.21**	**64.84**	**74.04**

स्त्रोत - आर्थिक समीक्षा 2007-08, सारणी-9.4, पृष्ठ ए-122 एवं भारत की जनगणना 2010, प्रांतीय जनसंख्या कुल 3, 2011 का पेपर 1, भारत श्रृंखला 1, तालिका 2(2), पृष्ठ 162

तालिका-2 से यह स्पष्ट होता है कि भारत के कुछ राज्य जैसे केरल (93.91 प्रतिशत), महाराष्ट्र (82.91 प्रतिशत), हिमाचल प्रदेश (83.78 प्रतिशत) और तमिलनाडु (80.33

प्रतिशत) ऐसे हैं जहां साक्षरता का प्रतिशत बहुत अधिक है। वहीं दूसरी ओर बिहार (63.82 प्रतिशत), झारखण्ड (67.63 प्रतिशत), जम्मू-कश्मीर (68.74 प्रतिशत) और उत्तरप्रदेश (69.72 प्रतिशत) ऐसे राज्य हैं जहां साक्षरता दर बहुत कम है। उल्लेखनीय है कि 1991 से 2011 की अवधि में मध्यप्रदेश और राजस्थान ने साक्षरता के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार साक्षरता दर मध्यप्रदेश में 70.63 प्रतिशत तथा राजस्थान में 67.06 प्रतिशत हो गई है। भारत का केरल राज्य सर्वाधिक साक्षर है। बालक-बालिकाओं का नामांकन (Enrolment of Boys & Girls) प्रारम्भ से ही सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा को रीढ़ की हड्डी माना जाता है। भारत में इसी कारण बालक-बालिकाओं की शिक्षा को प्रारम्भ से ही विशेष महत्व दिया गया है।

भारतीय शिक्षा नीति में मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाया गया है और "सभी के लिए शिक्षा" को केन्द्र में रखकर शिक्षा के विस्तार के विभिन्न कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया गया है। शिक्षा की प्रमुख भूमिका जनशक्ति को कुशल, क्रियाशील एवं दक्ष बनाना है जो अपने दायित्वों को समझने के साथ-साथ विश्व के प्रतियोगी बाजार में आत्मविश्वास के साथ खड़ी हो सके। देश में प्रारम्भ से ही यह प्रयास किया गया है कि 6 वर्ष से 14 वर्ष तक के सभी बालक-बालिकाओं को स्कूलों में प्रवेश दिलाया जावे । प्रायः बालिकाओं को स्कूलों में प्रवेश तो दिया जाता है, किन्तु वे इसे जारी नहीं रख पातीं। प्रायः यह देखा जाता है कि ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में अनेक छात्र प्राथमिक शिक्षा को पूर्ण किए बिना ही स्कूल छोड़ देते हैं। उच्चतर माध्यमिक स्तर तक पहुँचने में इनकी संख्या तेजी से कम हो जाती है। तालिका- 3 में बालक- बालिकाओं के प्राथमिक एवं उच्चतर प्राथमिक कक्षाओं में नामांकन को उनकी जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में दर्शाया गया है। 58:15

तालिका-3

बालक-बालिकाओं में सकल नामांकन अनुपात (प्रतिशत)

वर्ष	प्राथमिक-(i-v)			उच्चतर प्राथमिक (vi-viii		
	बालक	गाँव	जोड़	बालक	गाँव	जोड़
1950-51	60.6	24.8	42.6	20.6	4.6	12.7
1960-61	82.6	41.4	62.4	33.2	11.3	22.5
1970-71	95.5	60.5	78.6	46.5	20.8	33.4
1980-81	95.8	64.1	80.5	54.3	28.6	41.9

1990-91	102.8	76.9	90.2	65.1	39.6	51.4
1999-00	104.1	85.2	94.9	67.2	49.7	58.8
2004-05	110.7	104.7	107.8	74.3	65.1	69.9
2007-08	115.3	112.6	114	81.5	74.4	78.1

स्रोतः- शैक्षिक सांख्यिकी, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, 2007-08

तालिका-3 से स्पष्ट है कि बालक-बालिकाओं का सफल नामांकन अनुपात प्राथमिक स्तर (कक्षा-1 से 5वीं तक) पर सन् 1950-51 में केवल 42.6 था, जो बढ़कर सन् 1980-81 में 80.5 प्रतिशत एवं 2007-08 में 114.0 प्रतिशत हो गया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान में जहाँ बालकों का नामांकन अनुपात 115.3 है, वहीं यह बालिकाओं का 112.6 है। बालक-बालिकाओं के नामांकन में हुई यह वृद्धि पिछले दशकों में शिक्षा सुविधाओं के विस्तार का परिणाम है।

उच्चतर प्राथमिक या माध्यमिक (कक्षा 6 से 8वीं तक) स्तर तक बालक-बालिकाओं के नामांकन अनुपात का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि सन् 1950-51 में यह प्रतिशत केवल 12.7 था, जो बढ़कर सन् 1980-81 में 41.9 एवं सन् 2007-08 में 78.1 प्रतिशत हो गया। वर्तमान में बालकों में यह प्रतिशत जहाँ 86.5 है वहीं बालिकाओं में केवल 74.4 है। इन आँकड़ों से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि प्राथमिक स्तर से माध्यमिक कक्षाओं में आने तक बालक-बालिकाओं का एक बहुत बड़ा भाग शिक्षा से दूर हो जाता है। दूसरे शब्दों में, प्राथमिक या माध्यमिक स्तर की शिक्षा को पूर्ण किए बिना ही अनेक बालक-बालिकाएँ बीच में ही अध्ययन छोड़ देते हैं। यह भारतीय शिक्षा पद्धति की एक बहुत बड़ी कमजोरी है। इसके कई कारण हैं, जिनमें जन-जागृति की कमी, रूढ़िवादिता, बाल विवाह तथा माता-पिता की गरीबी प्रमुख हैं। इस वर्ग के अधिकांश बालक-बालिकाएँ धनोपार्जन में अपने परिवार की सहायता करते हैं। गाँवों में तो अधिकांश बालक पढ़ाई के साथ-साथ खेती एवं पशु चराने का भी काम करते हैं। बालिकाएँ घर-गृहस्थी के कार्य में लग जाती हैं। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे उनका स्कूल जाना बन्द हो जाता है और वे शिक्षा से दूर हो जाते हैं। लड़के-लड़कियों के नामांकन अनुपात के विश्लेषण से एक तथ्य यह भी स्पष्ट होता है कि इसमें क्षेत्रीय विषमताएँ बहुत अधिक हैं, अर्थात् कक्षा 1 से 8वीं तक के नामांकन में जहाँ कुछ राज्य शत-प्रतिशत नामांकन के निकट हैं, वहीं कुछ राज्यों में यह प्रतिशत 75 से भी कम है। तालिका-4 में कक्षा 1 से 8वीं तक लड़कियों तथा तालिका-5 में लड़कों के नामांकन अनुपात के अनुसार राज्यों का वितरंण दर्शाया गया है।

तालिका-4

कक्षा 1 से 8 तक लड़कियों के नामांकन अनुपात के अनुसार राज्यों का वितरण (2007-08)

क्र.	नामांकन प्रतिशत	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश
1.	75 प्रतिशत से कम	1. बिहार, 2. लक्षद्वीप
2.	76 से 95 प्रतिशत	1. आंध्रप्रदेश, 2 हरियाणा, 3. जम्मू-कश्मीर, 4. केरल, 5. महाराष्ट्र, 6. नागालैण्ड, 7. पंजाब, 8. चण्डीगढ़
3.	96 प्रतिशत से अधिक	1. अरुणाचल प्रदेश 2. असम, 3. छत्तीसगढ़, 4. गोवा, 5. गुजरात, 6. हिमाचल प्रदेश, 7. झारखण्ड, 8. मध्यप्रदेश, 9. मणिपुर, 10. मेघालय, 11. मिजोरम, 12. उड़ीसा, 13. राजस्थान, 14. सिक्किम, 15. तमिलनाडु, 16. त्रिपुरा, 17. उत्तर प्रदेश, 18. उत्तराखण्ड, 19. प. बंगाल. 20. दिल्ली, 21. पाण्डीचेरी

तालिका-5

कक्षा 1 से 8 तक लड़कों के नामांकन अनुपात के अनुसार राज्यों का वितरण (2004-05)

क्र.	नामांकन प्रतिशत	राज्य
1.	75 प्रतिशत से कम	1. लक्षद्वीप
2.	76 से 95 प्रतिशत के मध्य	1. आन्ध्रप्रदेश, 2. बिहार, 3. हरियाणा, 4. जम्मू-कश्मीर, 5. नगालैण्ड, 6. पंजाब
3.	95 प्रतिशत से अधिक	1. अरुणाचल प्रदेश, 2. छत्तीसगढ़, 3. गोवा, 4. गुजरात, 5. हिमाचल प्रदेश, 6. कर्नाटक, 7. केरल, 8. महाराष्ट्र, 9. मणिपुर, 10. तमिलनाडु, 11. मध्यप्रदेश, 12. पांडिचेरी, 13. दिल्ली, 14. प. बंगाल, 15. उत्तराखण्ड, 16. उत्तरप्रदेश, 17. त्रिपुरा, 18. तमिलनाडु, 19. सिक्किम, 20. राजस्थान, 21. उड़ीसा, 22.

		मिजोरम, 23. मेघालय, 24. झारखण्ड

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि लड़के-लड़कियों के कक्षा 1 से 8 वीं तक के नामांकन अनुपात में क्षेत्रीय विषमताएँ बहुत अधिक हैं। अतः आवश्यकता है कि जिन राज्यों में नामांकन अनुपात कम है, वहाँ शैक्षणिक सुविधाओं में विस्तार के साथ-साथ शिक्षा के प्रति जन-चेतना अभियान का प्रभावी ढंग से क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। एक हक कि काम कि किणी है

भारत में शैक्षणिक संस्थाएँ एवं सुविधाएँ

शिक्षा के विकास और निरक्षरता के उन्मूलन हेतु व्यापक नीतिगत संरचना का "शिक्षा संबंधी राष्ट्रीय नीति, 1986" में उल्लेख किया गया है। इसमें शिक्षा पर सकल घरेलू उत्पाद के 6 प्रतिशत के स्तर पर व्यय करने का लक्ष्य रखा गया है। किन्तु वास्तविकता यह है कि उक्त लक्ष्य की तुलना में वर्ष 2007-08 में केन्द्र एवं राज्य सरकारों दोनों द्वारा शिक्षा पर किया गया कुल संयुक्त व्यय सकल घरेलू उत्पाद का 2.84 प्रतिशत ही हैं। शिक्षा के विस्तार के लिए सन् 2004 से वित्तीय स्त्रोतों को जुटाने के लिए सभी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष केन्द्रीय करों पर 2 प्रतिशत का शिक्षा उप कर लगाया गया है। इस राशि से बुनियादी शिक्षा के विस्तार, मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम, प्रारम्भिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम, राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, सर्व शिक्षा अभियान जैसी योजनाओं को क्रियान्वित किया जा रहा है। कई जनह

स्वतंत्रता के बाद देश में सभी स्तर की शैक्षणिक संस्थाओं का तीव्र गति से विस्तार हुआ है। वर्तमान में देश में 7,87,827 प्राथमिक एवं कनिष्ठ बुनियादी विद्यालय, 3,25,174 माध्यमिक एवं वरिष्ठ बुनियादी विद्यालय, 1,72,990 इन्टरमीडियट एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, 13,381 सामान्य शिक्षा के महाविद्यालय, 6936 व्यावसायिक शिक्षा संस्थान और 406 विश्वविद्यालय है।

सन् 2001 की जनसंख्या के आधार पर देश में 1579 की जनसंख्या पर एक प्राथमिक या कनिष्ठ बुनियादी विद्यालय, 4194 पर एक माध्यमिक एवं वरिष्ठ बुनियादी विद्यालय, 7498 पर एक उच्चतर माध्यमिक एवं इण्टरमीडियट विद्यालय, 1,12,234 पर एक सामान्य शिक्षा महाविद्यालय और 3,94,152 पर एक व्यावसायिक संस्थान है।

सर्वशिक्षा अभियान (SSA)

देश में सर्व शिक्षा अभियान को वर्ष 2001-02 से संचालित किया गया है। इस अभियान का उद्देश्य देश के 6 से 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को वर्ष 2010 तक आठवीं

कक्षा तक की सन्तोषजनक निःशुल्क और गुणवत्तापरक प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना है। इस अभियान हेतु प्रतिवर्ष 9,000 करोड़ रुपये का अतिरिक्त बजट आवंटित करने की व्यवस्था की गई है। इस अभियान पर किये गये व्यय को केन्द्र व राज्य सरकारों ने 85:15 के अनुपात में नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) के दौरान वहन किया था। दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) में यह अनुपात 75:25 रहा तथा उसके बाद यह 50:50 होगा। इस योजना के क्रियान्वयन हेतु 'राष्ट्रीय सर्वशिक्षा अभियान मिशन' स्थापित किया गया है। वर्ष 2006-07 के बजट में स्कूल शिक्षा के लिए 17,133 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था जिसे 2007-08 में बढ़ाकर 23,142 करोड़ रुपये कर दिया गया। इसमें से सर्व शिक्षा अभियान के लिए 10,671 करोड़ रुपये व्यय किये जाने थे। वर्ष 2011-12 के बजट में सर्व शिक्षा अभियान के लिए 21,000 करोड़ रुपए प्रस्तावित किये गये ।

मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम (Mid-Day Meal Scheme)

स्कूली बच्चों के लिए दोपहर भोजन की शुरुआत मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने 15 अगस्त, 1995 से की थी। इस योजना के अनतर्गत सरकारी सहायता प्राप्त और स्थानीय निकायों द्वारा चलाये जा रहे प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा एक से पाँच तक के विद्यार्थियों को दोपहर का भोजन देने की व्यवस्था है। इस कार्यक्रम का विस्तार अक्टूबर 2007 से कक्षा 6 से आठ तक के लिए 3479 शैक्षिक रूप से पिछड़े ब्लॉकों में किया गया था। कार्यक्रम में प्राथमिक स्तर पर बच्चों को 450 केलोरी और 12 ग्राम प्रोटीन का मध्यान्ह भोजन उपलब्ध कराया जाता है। प्राथमिक स्तर से ऊपर के बच्चों के लिए 700 केलोरी और 20 ग्राम प्रोटीन का पोषाहार निश्चित किया गया है।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अभी तक लगभग 12 करोड़ बच्चों को शामिल किया गया है। वर्ष 2010-11 के बजट में इस कार्यक्रम के लिए 9,440 करोड़ रुपऐ का आवंटन किया गया था। इस कार्यक्रम ने विद्यालयों की सहभागिता को बढ़ाने, बच्चों को कक्षा में पौष्टिक आहार देने तथा शैक्षिक मूल्यों का महत्व समझाने में सहायता प्रदान की हैं।

ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था एवं भारत

वर्तमान उत्पादन प्रक्रिया में 'ज्ञान तत्व' की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं लाभप्रद हो गई है। जिस समाज या राष्ट्र में ज्ञान का अधिक विकास हुआ उसे अन्य समाजों या राष्ट्रों की अपेक्षा उत्पादन में अधिक कुशलता प्राप्त हुई। इसी ज्ञान को 'बौद्धिक संपदा' (Intellectual Property) कहते हैं। बौद्धिक सम्पदा के प्रयोग की अनुमति तभी दी जाती है जब उसके स्वामी को पर्याप्त पुरस्कार या रायल्टी दी जाये । विश्व स्तर पर ज्ञान तत्व या बौद्धिक संपदा संरक्षण की शुरुआत सन् 1883 में 'पेरिस सम्मेलन' जिसमें 11

देश शामिल थे, के आधार पर हुई। इसमें औद्योगिक संपदा अधिकार के संरक्षण हेतु एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ का गठन किया गया जिसके वर्तमान में 101 देश सदस्य बन चुके हैं। इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम विश्व व्यापार संगठन (1995) का व्यापार सम्बद्ध बौद्धिक संपदा अधिकार (ट्रिप्स) का प्रावधान है। ट्रिप्स (TRIPS) प्रावधान बौद्धिक संपदा अधिकारों के संरक्षण के लिए प्रत्येक सदस्य देश द्वारा अपनाये जाने वाले न्यूनतम मानक निर्धारित करता है।

विश्व व्यापार संगठन के 'ट्रिप्स समझौते' के अन्तर्गत 7 प्रकार की बौद्धिक संपदा सम्मिलित है (1) कापीराइट तथा तत्संबंधी अधिकार, (2) ट्रेडमार्क, (3) भौगोलिक संकेत, (4) औद्योगिक डिजाइन, (5) पेटेन्ट जिनमें सम्मिलित है सूक्ष्म जीवाणु और पौधों की विभिन्न जातियाँ, (6) संघटित सर्किट तथा (7) 2 व्यापारिक रहस्य । ट्रिप्स प्रावधान के अन्तर्गत प्रौद्योगिकी के प्रत्येक क्षेत्र में होने वाले नये अन्वेषण या प्रक्रिया पर पेटेन्ट उपलब्ध होगा तथा पेटेन्ट की समयावधि 20 वर्ष रखी गई है।

ट्रिप्स प्रावधानों की तुलना में भारत में बौद्धिक संपदा अधिकारों के संरक्षण संबंधी विधान उदार रहे हैं। इस दृष्टि से भारतीय पेटेन्ट अधिनियम 1970 सबसे महत्वपूर्ण है जिसका प्रमुख उद्देश्य आंतरिक औद्योगिक संवृद्धि को बढ़ाने हेतु अन्वेषणों को प्रोत्साहित करना तथा उन्हें व्यावसायिक उत्पादन के लिए पेटेन्ट प्रदान करना है। भारत वर्ष 1995 में विश्व व्यापार संगठन (WTO) की वचन-बद्धतओं के अनुरूप 2005 तक 'उत्पाद पेटेन्ट व्यवस्था' को अपनाने पर सहमत हुआ। भारत सरकार ने पेटेन्ट अधिनियम 1970 में 'ट्रिप्स' के अनुरूप संशोधन करने के लिए तीन बार संशोधन अध्यादेश क्रमशः 1999, 2002 एवं 2004 में जारी किये हैं। इस प्रकार सरकार ने उत्पाद पेटेन्ट व्यवस्था के कार्यान्वयन के लिए ट्रिप्स के अन्तर्गत निर्धारित शर्तों का पालन सुनिश्चित किया है। साथ ही देश की जनता के स्वास्थ्य की आवश्यकताओं तथा देश में अनुसंधान को प्रोत्साहित करने हेतु व्यवस्थाएँ भी सम्मिलित की गई हैं। भारतीय पेटेन्ट कानून में जनहित संबंधी महत्वपूर्ण प्रावधान रखे गये हैं।फिला कितुन

ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था प्रत्येक देश के मानव संसाधन के विकास का आधार बनती जा रही है। इसीलिए भारत में भी प्राथमिक शिक्षा के लोक व्यापीकरण के साथ-साथ माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, सूचना प्रौद्योगिकी के विकास एवं अनुसंधान कार्यों पर विशेष बल दिया जा रहा है। भारत में विगत 20 वर्षों में जो आर्थिक प्रगति हुई है उसमें सबसे ज्यादा योगदान ज्ञान के सर्वव्यापीकरण का रहा है। देश में बैंकिंग, वित्तीय सेवाओं, बीमा, उच्च प्रौद्योगिकी, दूरसंचार, विनिर्माण क्षेत्र, व्यापार, मीडिया, स्वास्थ्य और परिवहन के क्षेत्रों में सूचना प्रौद्योगिकी का स्पष्ट प्रभाव दिखाई दे

रहा है। वर्ष 2020 तक भारत के ज्ञान आधारित सेवाओं का प्रमुख वैश्विक केन्द्र बनने की प्रबल संभावना है, अतः उसके लिए आधारभूत संसाधनों में वृद्धि करना आवश्यक है।

8.5 शिक्षा, ज्ञान एवं कौशल का सार संक्षेप

शिक्षा, ज्ञान और कौशल तीनों एक-दूसरे से जुड़े हुए महत्वपूर्ण घटक हैं, जो समाज और व्यक्ति के विकास में अहम भूमिका निभाते हैं। इनका उद्देश्य केवल ज्ञान अर्जन नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के मानसिक, सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए आधार प्रदान करते हैं।

1. **शिक्षा**:
   - **व्यक्तिगत और सामाजिक विकास**: शिक्षा व्यक्ति को मानसिक, शारीरिक और भावनात्मक रूप से सशक्त बनाती है। यह समाज में समानता, समरसता और नागरिक जिम्मेदारी की भावना पैदा करती है।
   - **रोजगार और करियर अवसर**: शिक्षा से व्यक्ति को अपने जीवन स्तर को सुधारने और बेहतर करियर की दिशा में आगे बढ़ने के अवसर मिलते हैं।
2. **ज्ञान**:
   - **विवेक और समझ का विकास**: ज्ञान व्यक्ति को सही और गलत के बीच अंतर करने की क्षमता प्रदान करता है, जिससे वह अधिक जागरूक और समझदार बनता है।
   - **समाज और वैश्विक दृष्टिकोण**: यह ज्ञान व्यक्ति को समाज और वैश्विक मुद्दों के प्रति जागरूक बनाता है, जिससे वह एक जिम्मेदार नागरिक बनता है।
3. **कौशल**:
   - **आत्मनिर्भरता और आर्थिक विकास**: कौशल से व्यक्ति को स्व-निर्भर बनाने की क्षमता मिलती है, जिससे वह रोजगार के अवसर प्राप्त करता है और आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।
   - **समाज में योगदान**: कौशल का विकास समाज को अधिक सक्षम और उत्पादक बनाता है, जिससे सामाजिक और आर्थिक प्रगति होती है।

8.6 मुख्य शब्द

1. **शिक्षा (Education)**:
   वह प्रक्रिया जिसके माध्यम से व्यक्ति को ज्ञान, कौशल, मूल्य और सिद्धांत सिखाए जाते हैं। यह समाज में सशक्तिकरण और सामाजिक, मानसिक, और बौद्धिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है।
2. **ज्ञान (Knowledge)**:
   जानकारी, तथ्यों, विचारों, और अनुभवों का संग्रह, जो सोचने और निर्णय लेने की क्षमता को बढ़ाता है। ज्ञान जीवन में समझ और विवेक प्रदान करता है।
3. **कौशल (Skills)**:
   किसी कार्य को प्रभावी और दक्षता से करने की क्षमता। यह शारीरिक, मानसिक और तकनीकी हो सकते हैं, जैसे कंप्यूटर प्रोग्रामिंग, हस्तशिल्प, या शारीरिक खेल कौशल।
4. **व्यक्तिगत विकास (Personal Development)**:
   अपने आत्म-सुधार के प्रयासों को बढ़ावा देना, जैसे मानसिक, शारीरिक और भावनात्मक स्वास्थ्य, जो शिक्षा और कौशल से प्रभावित होते हैं।
5. **समाजिक समानता (Social Equality)**:
   वह स्थिति जिसमें समाज के सभी वर्गों को समान अवसर मिलते हैं, चाहे वह शिक्षा, रोजगार या अधिकारों के संदर्भ में हो।
6. **रोजगार योग्यताएँ (Employability Skills)**:
   वे कौशल और गुण जो किसी व्यक्ति को रोजगार पाने के लिए सक्षम बनाते हैं, जैसे टीम काम, समय प्रबंधन, संचार कौशल और तकनीकी क्षमता।
7. **आत्मनिर्भरता (Self-reliance)**:
   व्यक्ति की क्षमता अपने जीवन के लिए निर्णय लेने और आवश्यकताएँ पूरी करने की। कौशल और शिक्षा से यह क्षमता विकसित होती है।
8. **विवेक (Wisdom)**:
   ज्ञान का सही तरीके से उपयोग करने की क्षमता। यह जीवन के अनुभव और बौद्धिक परिपक्कता पर आधारित होती है।
9. **शिक्षा का अधिकार (Right to Education)**:
   एक कानूनी अधिकार जो प्रत्येक बच्चे को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार देता है। यह सरकारों द्वारा लागू की जाती है ताकि सभी बच्चों को समान शिक्षा मिल सके।

10. **समाज में योगदान** (**Contribution to Society**):
किसी व्यक्ति या समूह का समाज में सकारात्मक प्रभाव डालना, जो उनके ज्ञान, शिक्षा, और कौशल से उत्पन्न होता है।

11. **नौकरी के अवसर** (**Job Opportunities**):
वे अवसर जो शिक्षा और कौशल प्राप्त करने के बाद व्यक्ति को नौकरी प्राप्त करने में सहायता करते हैं।

12. **विविधता** (**Diversity**):
एक समाज में विभिन्न संस्कृतियाँ, विचार, अनुभव और दृष्टिकोणों की उपस्थिति। यह ज्ञान और कौशल के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

13. **प्रशिक्षण** (**Training**):
किसी विशेष कौशल या कार्य में दक्षता प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों को विशेष रूप से प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया।

14. **वैश्विक दृष्टिकोण** (**Global Perspective**):
विभिन्न देशों, संस्कृतियों और विचारों की समझ, जो ज्ञान के विस्तार और दुनिया के प्रति जागरूकता का हिस्सा है।

15. **नवाचार** (**Innovation**):
नई चीजों का आविष्कार या मौजूदा चीजों को बेहतर बनाने की प्रक्रिया, जो शिक्षा और ज्ञान के माध्यम से उत्पन्न होती है।

8.7 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. **शिक्षा का उद्देश्य क्या है**?
   - शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक और सामाजिक विकास को बढ़ावा देना है। यह न केवल ज्ञान और कौशल प्रदान करती है, बल्कि नागरिकता, सामाजिक जिम्मेदारी और व्यक्तिगत विकास के लिए भी महत्वपूर्ण है। शिक्षा से व्यक्ति की सोचने की क्षमता, निर्णय लेने की क्षमता, और जीवन में सकारात्मक योगदान देने की शक्ति बढ़ती है।

2. **ज्ञान और शिक्षा में अंतर बताइए।**
   - **ज्ञान**: ज्ञान तथ्यों, सूचनाओं, अनुभवों, और समझ का संग्रह है, जो व्यक्ति के सोचने, समझने और विश्लेषण की क्षमता को बढ़ाता है। यह अधिकतर आत्म-प्राप्ति से संबंधित होता है।

- **शिक्षा**: शिक्षा ज्ञान को व्यवस्थित रूप से प्राप्त करने और उसे समाज के कल्याण के लिए उपयोग करने की प्रक्रिया है। यह एक औपचारिक प्रणाली है, जो स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के माध्यम से प्रदान की जाती है।

3. **कौशल विकास का महत्व क्या है?**
   - कौशल विकास से व्यक्ति को कार्यस्थल पर बेहतर प्रदर्शन करने, आत्मनिर्भर बनने, और रोजगार के अवसरों का लाभ उठाने में मदद मिलती है। यह आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए भी आवश्यक है क्योंकि यह श्रमशक्ति को उत्पादक और प्रतिस्पर्धी बनाता है। कौशल विकास से व्यक्तियों को उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं में सुधार करने का अवसर मिलता है।
4. **समाज में शिक्षा का प्रभाव क्या है?**
   - शिक्षा समाज में समानता, समरसता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देती है। यह व्यक्तियों को उनके अधिकारों, कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक करती है, जिससे समाज में नागरिकता और सामाजिक जिम्मेदारी का पालन बढ़ता है। इसके अलावा, शिक्षा से व्यक्ति में सोचने की क्षमता और आलोचनात्मक दृष्टिकोण विकसित होते हैं, जो समाज के विकास में सहायक होते हैं।
5. **कौशल और नौकरी के अवसरों के बीच संबंध क्या है?**
   - कौशल और नौकरी के अवसरों के बीच गहरा संबंध है क्योंकि किसी भी व्यक्ति को नौकरी पाने के लिए विशेष कौशल की आवश्यकता होती है। शिक्षा और प्रशिक्षण के माध्यम से व्यक्ति में विशेष कौशल विकसित होते हैं, जो उसे कार्यस्थल पर सफलता दिलाते हैं। कौशल से व्यक्ति को अधिक रोजगार के अवसर मिलते हैं और वह आत्मनिर्भर बनता है।
6. **ज्ञान का समाज में योगदान क्या है?**
   - ज्ञान समाज में जागरूकता, समझ और समाधान की क्षमता बढ़ाता है। यह समाज के मुद्दों पर विचार करने, सामाजिक बदलाव लाने, और जीवन स्तर को सुधारने के लिए आवश्यक है। ज्ञान से लोग अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक होते हैं और समाज में सक्रिय रूप से योगदान

करते हैं। इसके अलावा, यह वैज्ञानिक, तकनीकी और सांस्कृतिक विकास में मदद करता है।

7. **शिक्षा, ज्ञान और कौशल में क्या संबंध है?**
   - शिक्षा, ज्ञान और कौशल एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। शिक्षा के माध्यम से ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान के आधार पर कौशल का विकास होता है। कौशल से व्यक्ति कार्यक्षमता और उत्पादकता में सुधार करता है, जिससे शिक्षा और ज्ञान का वास्तविक उपयोग होता है। ये तीनों मिलकर व्यक्तित्व के समग्र विकास में सहायक होते हैं और समाज के विकास में योगदान करते हैं।
8. **कौशल विकास से समाज को क्या लाभ होता है?**
   - कौशल विकास से समाज में उत्पादकता बढ़ती है, बेरोजगारी कम होती है, और लोगों के जीवन स्तर में सुधार होता है। यह आर्थिक विकास, सामाजिक समृद्धि और रोजगार सृजन में मदद करता है। कौशल विकास से समाज में नवाचार और प्रौद्योगिकी के विकास को बढ़ावा मिलता है, जो देश की समृद्धि में योगदान करता है।

8.8 संदर्भ सूची

- गुप्ता, र. (2019). भारत की अर्थव्यवस्था: संरचना और विकास. नई दिल्ली: रिटज पब्लिकेशन्स।
- शर्मा, एस. (2020). भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास: सिद्धांत और वास्तविकता. दिल्ली: पल्ली पब्लिकेशन।
- अग्रवाल, पी. (2021). भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और नीतियाँ. मुम्बई: ग्लोबल पब्लिशर्स।
- कुमार, आर. (2023). भारत में आर्थिक बदलाव: एक दृष्टिकोण. कोलकाता: नेशनल बुक ट्रस्ट।
- सिंह, अ. (2018). आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था: विकास और नीतियाँ. जयपुर: राज पब्लिकेशन।

8.9 अभ्यास प्र्श्न

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. एक विकासशील देश के आर्थिक विकास में शिक्षा, ज्ञान एवं कौशल के महत्व की विवेचना कीजिए।

2. भारत में शिक्षा सुविधाओं के महत्व की विवेचना कीजिए। देश में शिक्षा सुविधाओं के विकास की समीक्षा कीजिए।

3. मानव संसाधन विकास में शिक्षा का क्या महत्व है ? भारत में नियोजन काल में शिक्षा क्षेत्र के विकास की समीक्षा कीजिए।

4. उत्पादन प्रक्रिया में ज्ञान एवं कौशल की क्या भूमिका होती है ? भारत में ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था के विकास को समझाइये ।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मानव संसाधन विकास में शिक्षा का महत्व बताइये ।

2. उत्पादन प्रक्रिया में ज्ञान एवं कौशल की भूमिका स्पष्ट कीजिए ।

3. भारत में शिक्षा पर व्यय का ब्यौरा दीजिए।

4. भारत में शिक्षा की प्रगति का वर्णन कीजिए ।

5. भारत में शैक्षणिक सुविधाओं के विकास को समझाइये ।

6. भारत में ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था के विकास को समझाइये ।

7. विकास में शिक्षा एवं प्रशिक्षण की क्या भूमिका होती है ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. "शिक्षा आर्थिक विकास की कुंजी है। "यह कथन किसका है-

(अ) एडम स्मिथ

(ब) गैलब्रेथ

(स) डेनिसन

(द) कुजनेट्स

2. भारत में वर्ष 2011 में साक्षरता दर क्या थी-

(अ) 64.84 प्रतिशत

(ब) 52.21 प्रतिशत

(स) 66.84 प्रतिशत

(द) 74.04 प्रतिशत

3. वर्ष 2011 में भारत का कौन सा राज्य सबसे अधिक साक्षर था-

(अ) मध्यप्रदेश

(ब) महाराष्ट्र

(स) केरल

(द) राजस्थान

4. भारत में सर्व शिक्षा अभियान को किस वर्ष से संचालित किया गया है-

(अ) 2001-01

(ब) 2002-03

(स) 2003-04

(द) 2004-05

5. स्कूली बच्चों के लिए 'मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम' की शुरुआत कब हुई-

(अ) 15 अगस्त, 1991

(ब) 15 अगस्त, 1995

(स) 15 अगस्त, 2000

(द) 15 अगस्त, 2002

उत्तर- 1. (ब), 2. (द), 3. (स), 4. (अ), 5. (ब) ।

ब्लॉक - III

9
भारत में आवास एवं स्वच्छता

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 आवास का महत्व

9.4 भारत में आवास समस्या के कारण

9.5 दोषपूर्ण आवास व्यवस्था के दुष्परिणाम

9.6 भारत में आवास समस्या के निदान हेतु प्रयास

9.7 राष्ट्रीय आवास और पर्यावास नीति

9.8 सार संक्षेप

9.9 मुख्य शब्द

9.10 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

9.11 संदर्भ सूची

9.12 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

सामान्यतया आवास का आशय लोगों के रहने के लिए मकान की व्यवस्था से होता है तथा रहने की व्यवस्था अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की हो सकती है। किन्तु व्यापक अर्थ में आवास व्यवस्था से आशय लोगों के लिए ऐसे आश्रय से होता है जो आरामदायक हो, आवश्यकताओं के अनुरूप हो तथा जिसमें परिवार के लोग सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें। इस प्रकार आवास व्यवस्था ऐसे स्थान पर होनी चाहिए जहाँ पर शिक्षा, चिकित्सा, क्रीड़ा, मनोरंजन, स्वच्छ पेयजल, स्वच्छ वायु एवं प्रकाश आदि की समुचित व्यवस्था हो। इसके साथ ही आवास स्थल पर समुचित सफाई या स्वच्छता (Sanitation) का होना भी अति आवश्यक हैं।

मानव संसाधन के विकास के लिए यह आवश्यक है कि देश में अच्छी आवास सुविधाओं का विकास किया जाए। आवास सुविधाओं का उत्पादकता से सीधा सम्बन्ध है। यदि लोगों के रहने-सहने की अच्छी सुविधा होगी तो वह अच्छी प्रकार कार्य कर सकता है। भारत जैसे अल्पविकसित एवं विकासशील देशों के लिए यह अति आवश्यक है कि गन्दी बस्तियों की सफाई, आदि का पूरा ध्यान रखा जाए तथा श्रमिकों को स्वस्थ दशा प्रदान की जाए। अतः सरकार का विकास में रुचि रखने वाली अन्य संस्थाओं का कर्तव्य है कि वे सहायता प्राप्त मकान निर्माण योजनाएँ और कार्यान्वित करें जिससे लोगों को आवास-सुविधाएँ उपलब्ध कराई जा सकें। इसके साथ-साथ निजी आवास को भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
- विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।

9.4 भारत में आवास समस्या के कारण

भारत में स्वतंत्रता के बाद जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। वर्ष 1951 में देश की जनसंख्या 36 करोड़ थी जो कि तेजी से बढ़कर 2001 में 102 करोड़ तथा 2011 में 121 करोड़ के स्तर पर पहुंच गई। जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर 1951 में 1.25 प्रतिशत थी जो बढ़कर 1981 में 2.22 प्रतिशत हो गई थी । तत्पश्चात जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर में कमी आई और यह वर्ष 1991 में 2.16 प्रतिशत, 2001 में 1.97 प्रतिशत तथा वर्ष 2011 में घटकर 1.64 प्रतिशत रही है। तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के कारण देश में आवास समस्या एवं गन्दी बस्तियों की जटिल समस्या पैदा हो गई है। ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धन परिवार झोपड़ियों व कच्चे मकानों में निवास करते हैं वहीं शहरी क्षेत्र विशेषकर मुम्बई, कोलकाता, दिल्ली, कानपुर, अहमदाबाद आदि बड़े एवं औद्योगिक शहरों में गंदी बस्तियों में लाखों लोग निवास कर रहे हैं। छोटे शहरों में भी झुग्गी झोपड़ी व गन्दी बस्तियों की समस्या निरंतर बढ़ रही है। संक्षेप में, भारत में विगत कई वर्षों से आवास समस्या निरन्तर बढ़ रही है। इसके लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी कारण निम्न प्रकार है:-

(1) जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है जिससे आवास व्यवस्था गुणात्मक एवं परिमाणात्मक दोनों बनी हुई है ही दृष्टि से खराब हुई है। देश में जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ नगरीय जनसंख्या भी तीव्र गति से बढ़ रही है। वर्ष 1951

(2) में नगरीय जनसंख्या 6 करोड़ थी जो बढ़कर 2001 में लगभग 28 करोड़ तथा वर्ष 2011 में लगभग 38 करोड़ हो गई है जिससे नगरीय क्षेत्र में आवास समस्या बढ़ती जा रही है।

(3) भारत में आवासों की पूर्ति भी उनकी मांग की तुलना में कम है। जनसंख्या में तीव्र वृद्धि जबकि मकानों में धीमी गति से वृद्धि होने के कारण आवास समस्या जटिल हुई है।

(4) श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति एवं शरणार्थियों का आगमन भी इस समस्या को बढ़ाते हैं।

(5) संयुक्त परिवारों का विघटन एवं निर्माण लागत में वृद्धि होना भी आवास समस्या को बढ़ा रहे हैं।

(6) देश में लाल फीताशाही, तकनीकी ज्ञान व यंत्रों की कमी, स्थानीय निकायों का नकारात्मक दृष्टिकोण, जमीनों की कीमतों का ऊंचा होना, निर्धनता एवं बेरोजगारी आदि कारण भी आवास समस्या के लिए उत्तरदायी हैं।

9.5 दोषपूर्ण आवास व्यवस्था के दुष्परिणाम

भारत में ग्रामीण एवं नगरीय (विशेषकर औद्योगिक क्षेत्र) दोनों ही क्षेत्रों में आवास समस्या बहुत जटिल है। दोषपूर्ण आवास व्यवस्था व्यक्ति, समाज और राष्ट्र तीनों के लिए ही कष्टप्रद होती है। आवास की व्यवस्था अनेक व्यक्तिगत, सामाजिक एवं आर्थिक दोषों को जन्म देती है। संक्षेप में, दोषपूर्ण आवास व्यवस्था के प्रमुख दुष्परिणाम निम्न प्रकार हैं:-

(1) कार्य कुशलता पर कुप्रभाव- व्यक्ति की कुशलता के लिए अच्छा स्वास्थ्य आवश्यक है किन्तु बुरी आवास व्यवस्था में श्रमिकों की कार्यक्षमता में कमी आती है।

(2) स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए शुद्ध वायु, स्वच्छता व प्रकाश बहुत आवश्यक है। किन्तु आवास व्यवस्था की बुरी दशाओं का लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। भारत में गंदी बस्तियों व अस्वच्छता के कारण श्रमिकों का स्वास्थ्य दुर्बल रहता है और वे अधिक बीमार रहते हैं। गंदे स्थानों में मृत्यु दर भी अधिक पायी जाती है।

(3) नैतिक पतन एवं अपराध यह मान्यता है कि मनुष्य जैसे वातावरण में रहेगा, उसकी मनोवृत्ति भी वैसी हो जाती है। अतः गंदे वातावरण में रहने से श्रमिकों की मनोभावना भी गंदी हो जाती है। उनमें शराब आदि नशा, जुआ खेलना, चोरी की आदत, वेश्यावृत्ति, छल-कपट आदि दुर्गुण पैदा हो जाते हैं। डॉ. राधाकमल मुखर्जी ने लिखा है, "वेश्यागमन की प्रवृत्ति से स्त्री और पुरुष दोनों ही के चरित्र दूषित होते हैं उनका स्वास्थ्य खराब होता है और राष्ट्र का सांस्कृतिक स्तर गिर जाता है।" छाना

(4) उत्पादन पर बुरा प्रभाव अपर्याप्त व दूषित आवास व्यवस्था के कारण सेवायोजकों (Employers) को भी श्रमिकों की न्यून कार्यक्षमता, बुरे स्वास्थ्य, अनुपस्थिति आदि के कारण हानि उठानी पड़ती है। इससे औद्योगिक संघर्ष हड़ताल, तालाबंदी आदि बढ़ते हैं जिसका उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। Conce

(5) राष्ट्र को हानि- आवास की अपर्याप्त व्यवस्था से श्रमिकों की कार्यकुशलता कम हो जाती है और औद्योगिक संघर्ष के कारण उत्पादन कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त श्रमिकों की दशा सुधारने हेतु सरकार को सामाजिक कल्याण पर भारी व्यय करना पड़ता है। इस प्रकार आवास की समस्या से राष्ट्र को भी हानि होती है।

9.6 भारत में आवास समस्या के निदान हेतु प्रयास

भारत में आवास की समस्या अत्यन्त जटिल है क्योंकि मकानों का निर्माण बहुत खर्चीला कार्य है। इसके साथ ही देश में जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है जिसके कारण प्रतिवर्ष नये-नये गृहों का निर्माण करना आवश्यक है। देश में आवास समस्या के समाधान हेतु केन्द्रीय व राज्य सरकारों, स्थानीय निकायों, उद्योगपतियों आदि द्वारा प्रयास किये जा रहे हैं। इनमें से प्रमुख निम्न प्रकार हैं:-

केन्द्रीय आवास योजनाएँ (Central Housing Plans)

भारत में आवास की समस्या के समाधान हेतु केन्द्र सरकार द्वारा क्रियान्वित की जा रही प्रमुख योजनाएँ निम्न प्रकार है :-

(1) बागान मजदूरों के लिए आवास- देश में बागान मजदूरों के लिए सहायता प्राप्त आवास योजना सन् 1956 से चालू है। बागान मजदूरी असम, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, पश्चिम बंगाल एवं त्रिपुरा राज्यों में है। इस योजनान्तर्गत केन्द्र सरकार बागान मजदूरों को किराया लिए बगैर आवास प्रदान करने हेतु मकान तैयार करने के लिए 50 प्रतिशत ऋण तथा 37.5 प्रतिशत अनुदान देती है।

(2) ग्रामीण भूमिहीन श्रमिकों के लिए आवास- ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन श्रमिकों को मकान बनाने हेतु भूमि उपलब्ध करवाने की योजना राष्ट्रीय न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम का एक भाग है। यह योजना 1 अप्रैल, 1974 से राज्य क्षेत्र में हस्तांतरित कर दी गई है।

(3) केन्द्रीय कर्मचारयों हेतु आवास- केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के लिए आवास बनाने हेतु 'केन्द्र सरकार कर्मचारी कल्याण आवास संगठन' एक पंजीकृत संस्था है। इस संगठन द्वारा 15 आवास योजनाएँ प्रारंभ की गईं जिनमें से दस पूरी हो चुकी हैं। पूरी की गई योजनाओं के अन्तर्गत 6,008 आवासीय इकाइयों का निर्माण किया गया। शेष पांच योजनाओं में निर्माण कार्य चल रहा है जिसके अंतर्गत 2,373 इकाइयाँ तैयार होंगी ।

(4)इंदिरा आवास योजना- इंदिरा आवास योजना मई, 1985 में प्रारम्भ की गई थी जिसका उद्देश्य अनुसूचित जाति, जनजाति एवं मुक्त बंधुआ मजदूरों को निःशुल्क आवास उपलब्ध कराना है। वर्ष 1989-90 में इसे जवाहर रोजगार योजना का एक अंग बना दिया गया था। किन्तु 1996 में इसे जवाहर रोजगार

योजना से अलग करके एक स्वतंत्र योजना का रूप दिया गया है। यह योजना केन्द्र और राज्यों के बीच 75:25 के लागत बंटवारे के आधार पर वित्त पोषित की जा रही है। इस योजना के अन्तर्गत एक मकान के लिए दी जाने वाली सहायता राशि 1 अप्रैल, 2004 से मैदानी क्षेत्रों में 25,000 रुपये, पहाड़ी या दुर्गम क्षेत्रों में 27,500 रुपये कर दी गई है। स्वच्छ शौचालय और धुआं रहित चूल्हा इस योजना का अभिन्न अंग हैं। इस योजना के अन्तर्गत 1985-86 से लेकर 30 जनवरी, 2006 तक 25,208 करोड़ रुपये के व्यय से 138 लाख आवास निर्मित किये गये अथवा उनमें सुधार किया गया ।

(5) प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास कार्यक्रम प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के एक घटक के रूप में ग्रामीण आवास योजना क्रियान्वित की गई है। इस योजना में राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों को अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता आवंटित करने का प्रावधान है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में आवास की मूलभूत सुविधाओं में सुधार किया जा सके ।

आवास के लिए योजना ग्रामीण आवास की ऋण-सह-सब्सिडी योजना (Credit-Cum-Subsidy Plan) 1 अप्रैल, 1999 से प्रारंभ की गई। इस योजना में 32,000 रुपये तक की सब्सिडी तथा 40,000 रुपये तक का ऋण दिया जाता है। इस योजना में सब्सिडी राशि में केन्द्र एवं राज्यों की हिस्सेदारी 75:25 है तथा ऋण व्यापारिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा आवास वित्त संस्थाओं द्वारा दिया जाता है।

(7) समग्र आवास योजना- यह योजना वर्ष 1999-2000 में लागू की गई। इसका उद्देश्य आवास, स्वच्छता एवं जलापूर्ति के लिए स्वीकृत उपाय सुनिश्चित करना है। इस योजना को प्रथम चरण में देश के 24 राज्यों के 25 जिलों में एक-एक विकास खण्ड में तथा एक केन्द्र शासित प्रदेश के एक विकासखण्ड में लागू किया गया है।

II. राज्य सरकार की योजनाएँ (State Government Schemes)

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही सरकार ने स्वीकार किया है कि आवास उपलब्ध करने में राज्यों को महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है, फलतः आवास के क्षेत्र में राज्य की भागीदारी बढ़ती गई और इस पर सार्वजनिक व्यय से निरन्तर वृद्धि होती गई है। राज्य सरकार की प्रमुख आवास योजनाएँ निम्न प्रकार

(1) सामाजिक आवास योजनाएँ (Social Housing Plans)- सामाजिक आवास कार्यक्रमों में केन्द्र की भूमिका ऋण और अनुदान के रूप में राज्य सरकारों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों को व्यापक वित्तीय सहायता प्रदान करने तथा कार्यक्रमों की प्रगति देखने तक सीमित है। भारत में सामाजिक आवास योजनाएँ सन् 1952 से ही संगठित रूप से प्रारम्भ हुईं। इसके अन्तर्गत अनेक सामाजिक आवास योजनाएँ शुरू की गईं। इनके द्वारा औद्योगिक, श्रमिकों, निर्धन वर्गों, बागान मजदूरों, निम्न तथा मध्यम आय वर्गों राज्य सरकार के कर्मचारियों हेतु किराया आवास योजना, तंग बस्तियों की सफाई/सुधार, भूमिहीन श्रमिकों हेतु आवास सुविधाएँ उपलब्ध करायी गईं। जुलाई 1982 में सभी

सामाजिक आवास योजनाओं को आय समूहों के आधार पर पांच श्रेणियों में बाँटा गया, ये निम्न हैं:- (i) आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग हेतु आवास, (ii) कम आय समूह हेतु आवास, (iii) मध्यम आय समूह हेतु आवास, (iv) राज्य सरकार के कर्मचारियों हेतु किराये का आवास तथा (v) भूमिहीन मजदूरों हेतु ग्रामीण आवास सहायता योजना ।

(2) भूमि अधिग्रहण और विकास योजना (Land Acquisition Development Plan) - वर्ष 1959 में प्रारम्भ की गई इस योजना के अन्तर्गत राज्य सरकारें शहरी क्षेत्रों में भूमि का अधिग्रहण एवं विकास करते हैं। जिससे मकान बनाने के इच्छुक व्यक्तियों विशेषकर निम्न आय वर्ग के लोगों को उचित मूल्य पर विकसित प्लाट मिल सकें। इसका उद्देश्य नगर विकास को युक्तिसंगत बनाना, पूर्ण सुविधायुक्त बस्तियों के निर्माण को प्रोत्साहन देना तथा भूमि के मूल्यों में स्थिरता लाना है।

आवास एवं पंचवर्षीय योजनाएँ (Housing and Five Year Plans)

आवास मानव जीवन के लिए एक मौलिक आवश्यकता है तथा गरीबी आवास की उपलब्धता में बाधक है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा देश में आवास समस्या के समाधान का प्रयास किया है। फलस्वरूप आवास व्यवस्था पर विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में सार्वजनिक व्यय बढ़ता गया है। भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत आवास पर किये गये व्यय का विवरण तालिका-1 में दिया गया है।

तालिका – 1

भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत आवास पर व्यय

योजना	आवास पर व्यय (करोड़ रु.)	कुल व्यय का (प्रतिशत)

पहली योजना (1951-56)	48	2.4
दूसरी योजना (1956-61)	80	1.7
तीसरी योजना (1961-66)	110	1.2
चौथी योजना (1969-74)	141	0.8
पांचवीं योजना (1974-79)	601	1.4
छठी चोजना (1980-85)	1,491	1.5
सातवीं योजना (1985-90)	2,722	1.2
आठवीं योजना (1992-97)	5,273	1.2
नौवीं योजना (1997-2002)	11,169	1.4
दसवीं योजना (2002-07)	अनुपलब्ध	-

कापड तालिका-1 से स्पष्ट है कि पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान आवास पर किये जाने वाले व्यय के प्रतिशत में गिरावट आयी है। पहली योजना में आवास पर 48 करोड़ रुपये व्यय किया गया था जो कुल व्यय का 2.4 प्रतिशत था। आवास पर व्यय नौवीं योजना में बढ़कर 11,169 करोड़ रुपये हो गया था जो कि कुल व्यय का 1.4 प्रतिशत था। आवास समस्या की व्यापकता को देखते हुए सरकार द्वारा वर्ष 1998 में नयी 'राष्ट्रीय आवास और पर्यावास नीति' की घोषणा की गई। इस नीति का उद्देश्य सभी के लिए आवास उपलब्ध कराना है।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) में सरकार का राष्ट्रीय एजेण्डा सभी के लिए 2007 तक आवास उपलब्ध कराना था। इस उद्देश्य के लिए प्रति वर्ष 20 लाख अतिरिक्त मकानों के निर्माण को सुलभ करने का प्रस्ताव था। इस कार्य में आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों, निम्न आय वर्गों, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया गया। ग्रामीण आवास के अन्तर्गत वर्ष 2010-11 के बजट में इन्दिरा आवास योजना के लिए 10,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया।

9.7 राष्ट्रीय आवास और पर्यावास नीति

केन्द्र सरकार ने वर्ष 1998 में राष्ट्रीय आवास और पर्यावास नीति घोषित की थी। इस नीति का उद्देश्य सभी को आवास उपलब्ध कराना था। इसमें आवासों की उपलब्धता के लिए टिकाऊ विकास आधारभूत टाँचा तथा आवास क्षेत्र में निजी भागीदारी आदि पर जोर दिया गया। नयी राष्ट्रीय आवास और पुनर्वास नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैः-

(1) इस नीति में आवास और बुनियादी सुविधाओं से संबंधित समस्याओं के समाधान में सरकारी और निजी भागीदारी को सुद्दढ़ करने पर बल दिया गया है। इस दिशा में सरकार वित्तीय रियायतों के साथ-साथ कानूनी प्रावधानों तथा नियमों में सुधार कर आवास क्षेत्र में निवेश के लिए अनुकूल वातावरण निर्मित करेगी ।

(2) इसमें आवास सुविधाओं की कमी को देश में तेजी से बढ़ती जनसंख्या की समस्या के साथ जोड़कर देखा गया है।

(3) राष्ट्रीय आवास नीति में 'सभी को आवास' राष्ट्रीय प्राथमिकता का विषय माना गया है तथा इसमें कमजोर वर्गों की जरूरतों पर विशेष जोर दिया गया है।

(4) इस नीति में आवास एवं संबंधित सहायक सेवाओं को मूलभूत सुविधाओं के विकास की भाँति प्राथमिकता का क्षेत्र माना गया है।

(5) इस नीति के अन्तर्गत प्रति वर्ष 20 लाख अतिरिक्त मकानों के निर्माण को सुलभ करने का प्रस्ताव रखा गया। इनमें से 7 लाख मकान शहरी क्षेत्रों में और 13 लाख ग्रामीण क्षेत्रों में बनाये जायेंगे ।

(6) इसमें केन्द्र सरकार, राज्य सरकारें, स्थानीय निकायों, वित्तीय संस्थानों, तकनीकी संस्थानों तथा अनुसंधान मानकी रख-रखाव संस्थाओं की भूमिका को स्पष्टतः निश्चित किया गया है। चूंकि आवास राज्य का विषय है, अतः राज्य सरकारों का यह दायित्व है कि वे स्थानीय निकायों और नागरिक संगठनों से सलाह कर स्थानीय जरूरतों के अनुरूप आवास क्षेत्र के लिए कार्यक्रम बनायें ।

संक्षेप में, सरकार आवास समस्या के समाधान के लिए निरंतर प्रयत्नशील है। किन्तु अभी भी लाखों लोग बेघर, खुले आसमान के नीचे, गंदी बस्तियों में जिन्दगी गुजारने को मजबूर हैं। इस स्थिति को सुधारने के लिए समुचित प्रयास करना आवश्यक है। राष्ट्रीय आवास नीति में इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए सभी संबंधित पक्षों से परामर्श लिया गया है।

स्वच्छता एवं गंदी बस्तियाँ

आवास समस्या के दो पहलू हैं, प्रथम, परिमाणात्मक पहलू जो कि मकानों की कमी से संबंधित है और द्वितीय, गुणात्मक पहलू जो आवास सुविधाओं एवं स्वच्छता से संबंधित

है। भारत में अनेक परिवार ऐसे मकानों में रहते हैं जहां पर छत नाम की कोई चीज नहीं है। इसके अतिरिक्त पीने का पानी, स्नानगृह, शौचालय, गन्दे पानी की निकासी, साफ-सफाई आदि की व्यवस्था भी नहीं है। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश मकान कच्चे एवं झोपड़ियों के रूप में हैं जिनमें पेयजल, स्नानगृह, संडास आदि का अभाव है। यद्यपि शहरी क्षेत्रों में लोगों को आवास की अधिक अच्छी सुविधाएँ उपलब्ध हैं, किन्तु अब शहरों में भी गंदी बस्तियों (Slums) की समस्या लगातार बढ़ रही है। विशेषकर औद्योगिक क्षेत्रों में श्रमिकों के मकानों की दशा अत्यंत शोचनीय है। शाही श्रम आयोग ने मुंबई की चालों के संबंध में अपनी रिपोर्ट में लिखा था "अधिकांश चालों में कोई सुधार करने की गुंजाइश नहीं है और उनको नष्ट कर देने की आवश्यकता है।" देश के मुम्बई, कोलकाता, दिल्ली, चेन्नई, कानपुर, अहमदाबाद, सूरत आदि महानगरों में हजारों की संख्या में गंदी बस्तियाँ हैं और इन शहरों की एक-तिहाई जनसंख्या इसमें निवास करती है। ये गंदी बस्तियाँ न केवल इनमें निवास करने वाले लोगों के स्वास्थ्य और कार्यकुशलता की दृष्टि से हानिकारक हैं वरन् ये सम्पूर्ण समाज के लिए कष्टप्रद हैं। इनमें पैदा होने वाले मच्छर व अन्य कीटाणु अनेक बीमारियों व महामारियों को जन्म देते हैं। भारत में गंदी बस्तियाँ पर्यावरण प्रदूषण को बढ़ा रही है, सामाजिक अपराधों (शराबखोरी, जुआखोरी, वेश्यावृत्ति, चोरी) को जन्म दे रही हैं तथा भयंकर बीमारियों (हैजा, मलेरिया, तपेदिक, डेंगू आदि) का पोषण कर रही हैं। तेजी से बढ़ती जनसंख्या एवं श्रमिकों का गांव से शहरों की ओर पलायन आवास समस्या व गंदी बस्तियों को बढ़ाने के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार है। इसके अतिरिक्त नगर नियोजन का सर्वथा अभाव, अशिक्षा व जागरूकता की कमी भी गंदी बस्तियों की समस्या को बढ़ाते हैं।

देश में आर्थिक नियोजन के अंतर्गत गंदी बस्तियों की सफाई के लिए अलग से व्यवस्था की गई। इस दिशा में उठाये गये प्रमुख कदम निम्न प्रकार हैं:- (i) वर्तमान गंदी बस्तियों को साफ करना, (ii) नयी गंदी बस्तियाँ बनने से रोकना, (iii) गंदी बस्तियों को समाप्त करने के लिए राज्य सरकारों द्वारा मास्टर प्लान बनाना और स्थानीय निकायों द्वारा उसे पूर्ण करना, (iv) गंदी बस्तियों के संबंध में नगर निगम, नगरपालिकाओं द्वारा कड़े नियमों का निर्माण करना, (v) गंदी बस्तियों में निवास करने वाले लोगों में सामाजिक शिक्षा के प्रसार द्वारा चेतना पैदा करना, तथा (vi) नये कारखाने नगर से दूर खोलना तथा उनमें कार्यरत श्रमिकों की आवास व्यवस्था करना ।

उल्लेखनीय है कि देश में झुग्गी बस्तियों के विकास का राष्ट्रीय कार्यक्रम सन् 1996 में कानपुर में शुरू किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य स्वच्छता, पेयजल आपूर्ति, स्वास्थ्य सुविधाएँ, प्रौढ़ शिक्षा, प्राथमिक सुविधाएँ आदि उपलब्ध कराना है। केन्द्र सरकार इस कार्यक्रम के अन्तर्गत शहरी झुग्गी-झोपड़ी बस्तियों के विकास हेतु राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों को अतिरिक्त सहायता उपलब्ध कराती है।

केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम

केन्द्र सरकार ने ग्रामीण स्वच्छता जो कि राज्य सरकार का विषय है, में सहयोग देने के लिए सन् 1986 में केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम (CRSP) लागू किया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों के जीवन में गुणात्मक सुधार लाना और महिलाओं को समुचित स्थान देना है। इसके अन्तर्गत स्वच्छता में मलमूत्र व अन्य मानवीय अवशिष्ट पदार्थों का उचित रूप से निष्पादन करके पर्यावरण को स्वच्छ बनाना शामिल है। उल्लेखनीय है कि वर्ष 1993 में स्वच्छता की अवधारणा में विस्तार किया गया तथा इसमें व्यक्तिगत सफाई, गृह स्वच्छता, शुद्ध जल, कूड़े-कचरे, मलमूत्र एवं नाली के पानी की निकासी को सम्मिलित किया गया। इसमें गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों के लिए व्यक्तिगत सुलभ शौचालय का निर्माण किया जाता है। पुनः 1 अप्रैल, 1999 से इस कार्यक्रम को संशोधित कर एक 'मांग आधारित कार्यक्रम' बना दिया गया है। इसका उद्देश्य ग्रामीण जनसंख्या के अधिक से अधिक भाग को लाभान्वित करना है। अतः अब इस कार्यक्रम को संपूर्ण स्वच्छता अभियान (Total Sanitation Campaign) के नाम से जाना जाता है। यह अभियान वर्तमान में देश के 593 जिलों में संचालित है।

संपूर्ण स्वच्छता अभियान (TSC) के अन्तर्गत मार्च 2004 तक 30 राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों में 507 परियोजनाओं के लिए 5,086 करोड़ रुपये की स्वीकृति प्रदान की गई थी। कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 2003-04 तक कुल 80.8 लाख व्यक्तिगत सुलभ शौचालयों का निर्माण किया गया। ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम के लिए वर्ष 2011-12 के बजट में 1650 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया। इसके अतिरिक्त ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम (RWSP) के अन्तर्गत वर्ष 2011-12 के बजट में 9350 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया जिससे ग्रामीण लोगों को स्वच्छ तथा पर्याप्त पेयजल सुविधाएँ उपलब्ध हो सकें ।

9.8 सार संक्षेप

भारत में आवास और स्वच्छता से संबंधित प्रमुख पहल और योजनाओं का उद्देश्य गरीबों और समाज के हर वर्ग को बेहतर जीवन स्थितियां और बुनियादी सुविधाएं प्रदान करना है।

1. **आवास:**
   - **प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY):** इस योजना का उद्देश्य सभी नागरिकों को सस्ते और गुणवत्तापूर्ण आवास उपलब्ध कराना है। इसका लक्ष्य 2022 तक प्रत्येक गरीब परिवार को आवास प्रदान करना है।
2. **स्वच्छता:**
   - **स्वच्छ भारत मिशन (SBM):** इस मिशन का उद्देश्य भारत को खुले में शौच से मुक्त (ODF) बनाना और प्रत्येक घर में शौचालय की सुविधा

प्रदान करना है। साथ ही, कचरा प्रबंधन और जलजनित बीमारियों को नियंत्रित करना भी इसका हिस्सा है।

इन पहलों का मुख्य उद्देश्य **स्वास्थ्य में सुधार**, **जीवन स्तर में वृद्धि**, **सामाजिक समानता**, और **पर्यावरणीय सुधार** है। साथ ही, ये योजनाएं **आर्थिक अवसरों** के सृजन और **संसाधनों के संरक्षण** में भी योगदान देती हैं।

9.9 भारत में आवास एवं स्वच्छता मुख्य शब्द

भारत में **आवास** और **स्वच्छता** से संबंधित विभिन्न योजनाओं और पहलों में प्रयुक्त मुख्य शब्द (Glossary) निम्नलिखित हैं:

1. आवास (Housing)

- **प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY):** यह योजना गरीबों और वंचित वर्गों को सस्ते और गुणवत्तापूर्ण आवास प्रदान करने के लिए सरकार द्वारा शुरू की गई है।
- **विकसित आवास (Developed Housing):** ऐसे आवास जिन्हें बुनियादी सुविधाओं जैसे पानी, बिजली, सड़क आदि से सुसज्जित किया गया हो।
- **ग्रामीण आवास योजना (Rural Housing Scheme):** ग्रामीण इलाकों में गरीबों को आवास प्रदान करने की योजना, जैसे Indira Awas Yojana (IAY)।
- **आवासीय क्षेत्र (Residential Area):** वह क्षेत्र जहां पर आवासीय भवन बनाए जाते हैं, और जो रहने योग्य होते हैं।
- **सस्ते आवास (Affordable Housing):** वह आवास जो कम लागत में उपलब्ध हो और गरीब या निम्न मध्यवर्गीय परिवारों के लिए उपयुक्त हो।

2. स्वच्छता (Sanitation)

- **स्वच्छ भारत मिशन (Swachh Bharat Mission - SBM):** यह राष्ट्रीय मिशन है जिसका उद्देश्य भारत को खुले में शौच से मुक्त (ODF) बनाना और हर घर में शौचालय की सुविधा सुनिश्चित करना है।
- **खुले में शौच (Open Defecation):** जब लोग सार्वजनिक स्थानों पर शौच के लिए जाते हैं, तो इसे खुले में शौच कहा जाता है, जिसे स्वच्छ भारत मिशन के तहत समाप्त किया जा रहा है।
- **शौचालय निर्माण (Toilet Construction):** घरों, स्कूलों, और सार्वजनिक स्थानों पर शौचालयों का निर्माण, जो स्वच्छता और स्वच्छता सुविधाओं के महत्वपूर्ण भाग हैं।
- **जलजनित रोग (Waterborne Diseases):** वे रोग जो गंदे पानी के संपर्क में आने से होते हैं, जैसे दस्त, हैजा आदि।

- **स्वच्छता जागरूकता (Sanitation Awareness):** लोगों को स्वच्छता के महत्व और स्वच्छता सुविधाओं का उपयोग करने के बारे में शिक्षित करना।
- **कचरा प्रबंधन (Waste Management):** कचरे को सही तरीके से एकत्र करना, पुनः उपयोग करना और नष्ट करना, ताकि पर्यावरण को नुकसान न पहुंचे।
- **सैनिटेशन इंफ्रास्ट्रक्चर (Sanitation Infrastructure):** शौचालयों, नालियों, जल निकासी प्रणालियों, कचरा निस्तारण यंत्रों आदि का ढांचा जो स्वच्छता सुनिश्चित करता है।

3. सामाजिक समावेशन (Social Inclusion)

- **आवासीय अधिकार (Housing Rights):** गरीबों, दलितों, आदिवासियों और अन्य पिछड़े वर्गों को आवास की बुनियादी सुविधा देना।
- **महिला स्वच्छता (Women's Sanitation):** महिलाओं को स्वच्छता और शौचालय जैसी सुविधाएं प्रदान करना, ताकि उनकी सुरक्षा और स्वास्थ्य सुनिश्चित किया जा सके।

4. सतत विकास (Sustainable Development)

- **हरित निर्माण (Green Construction):** ऐसे आवास और इन्फ्रास्ट्रक्चर का निर्माण जो पर्यावरण के अनुकूल हो, ऊर्जा दक्ष हो, और जल का संरक्षण करें।
- **जल पुनर्चक्रण (Water Recycling):** जल का पुनः उपयोग और पुनर्चक्रण करना, जिससे जल की बर्बादी को रोका जा सके।
- **पुनः उपयोग (Recycling):** कचरे और संसाधनों का पुनः उपयोग, ताकि पर्यावरण पर दबाव कम किया जा सके।

9.10 भारत में आवास एवं स्वच्छता स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

भारत में **आवास** और **स्वच्छता** के क्षेत्र में स्व-प्रगति परीक्षण (Self-Assessment) के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न और उनके उत्तर निम्नलिखित हैं। ये प्रश्न भारत सरकार की योजनाओं, जैसे प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY) और स्वच्छ भारत मिशन (SBM), के उद्देश्यों और कार्यों को समझने में मदद करेंगे।

---

1. प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY) का मुख्य उद्देश्य क्या है?

- **उत्तर:** प्रधानमंत्री आवास योजना का मुख्य उद्देश्य 2022 तक सभी गरीबों, वंचितों और कमजोर वर्गों को शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में सस्ते और गुणवत्तापूर्ण आवास प्रदान करना है। इसका लक्ष्य "हर भारतीय को अपना घर" सुनिश्चित करना है।

2. स्वच्छ भारत मिशन (SBM) के अंतर्गत खुले में शौच से मुक्ति का क्या मतलब है?

- **उत्तर:** खुले में शौच से मुक्ति का मतलब है कि किसी भी व्यक्ति को खुले स्थानों (जैसे, खेत, सड़क, सार्वजनिक स्थल आदि) पर शौच के लिए जाने की आवश्यकता नहीं हो। स्वच्छ भारत मिशन का उद्देश्य भारत को खुले में शौच से मुक्त (ODF) बनाना है।

3. स्वच्छ भारत मिशन के तहत शौचालय निर्माण का क्या महत्व है?

- **उत्तर:** शौचालय निर्माण से स्वच्छता में सुधार होता है, जो जलजनित रोगों (जैसे दस्त, हैजा) को कम करने में मदद करता है। साथ ही, यह महिलाओं की सुरक्षा और गरिमा को भी सुनिश्चित करता है, क्योंकि उन्हें खुले में शौच के लिए नहीं जाना पड़ता।

4. "Affordable Housing" का क्या मतलब है?

- **उत्तर:** "Affordable Housing" का मतलब है वह आवास जो गरीब और मध्यवर्गीय परिवारों के लिए वित्तीय रूप से सुलभ हो। इसका उद्देश्य ऐसा आवास प्रदान करना है जिसकी कीमत कम हो और गरीब वर्ग इसे आसानी से खरीद या किराए पर ले सके।

5. आवास योजनाओं में "Pradhan Mantri Awas Yojana-Gramin (PMAY-G)" का क्या उद्देश्य है?

- **उत्तर:** प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण (PMAY-G) का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों को सुरक्षित और सस्ते आवास प्रदान करना है, ताकि उन्हें बेहतर जीवन स्थितियां मिल सकें और उनका जीवन स्तर सुधर सके।

6. स्वच्छता प्रबंधन में कचरा निस्तारण (Waste Disposal) का क्या महत्व है?

- **उत्तर:** कचरा निस्तारण स्वच्छता का एक अहम हिस्सा है क्योंकि यह प्रदूषण को नियंत्रित करने, स्वास्थ्य जोखिमों को कम करने और पर्यावरण को सुरक्षित रखने में मदद करता है। कचरे का उचित निस्तारण, जैसे पुनर्चक्रण (Recycling) और अवशेषों का नष्ट करना, स्वच्छता सुनिश्चित करने में योगदान करता है।

7. "ODF" का क्या मतलब है?

- **उत्तर:** "ODF" का मतलब है **Open Defecation Free** (खुले में शौच से मुक्त)। यह एक स्थिति है जब कोई व्यक्ति या समुदाय खुले में शौच नहीं करता है और सभी को शौचालय की सुविधा उपलब्ध होती है।

8. प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY) के लाभार्थी कौन हैं?

- **उत्तर:** प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY) के लाभार्थी वे लोग होते हैं जो निम्नलिखित श्रेणियों में आते हैं:

- **EWS (Economically Weaker Section):** आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग
- **LIG (Lower Income Group):** निम्न आय वर्ग
- **MIG (Middle Income Group):** मध्य आय वर्ग
- **अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST), अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC)** और **महिला स्वयं सहायता समूह** को प्राथमिकता दी जाती है।

9. स्वच्छता जागरूकता के लिए कौन से कदम उठाए गए हैं?

- **उत्तर:** स्वच्छता जागरूकता के लिए विभिन्न कार्यक्रम और अभियानों का आयोजन किया गया है, जैसे:
  - **स्वच्छता सर्वेक्षण:** नगरों और शहरों में स्वच्छता के स्तर का मूल्यांकन।
  - **स्वच्छता पखवाड़ा:** लोगों को स्वच्छता के महत्व और स्वच्छता आदतों के बारे में शिक्षित करने के लिए आयोजन।
  - **शाला स्वच्छता अभियान:** स्कूलों में स्वच्छता की आदतों को प्रोत्साहित करना।

10. "Green Building" का क्या मतलब है?

- **उत्तर:** "Green Building" वह भवन होते हैं जिन्हें ऊर्जा, जल, और अन्य प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करते हुए बनाया जाता है। इनका उद्देश्य पर्यावरण पर कम से कम प्रभाव डालना और अधिकतम संसाधन दक्षता प्राप्त करना होता है। यह सतत विकास के सिद्धांतों पर आधारित होता है।

11. स्वच्छ भारत मिशन के तहत कचरे का पुनर्चक्रण (Recycling) क्यों महत्वपूर्ण है?

- **उत्तर:** कचरे का पुनर्चक्रण इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह कचरे की मात्रा को कम करता है, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करता है, और प्रदूषण को नियंत्रित करता है। पुनर्चक्रण से नए उत्पादों की आवश्यकता कम होती है और पर्यावरण की रक्षा होती है।

12. सतत आवास (Sustainable Housing) का क्या मतलब है?

- **उत्तर:** सतत आवास का मतलब है ऐसे आवास का निर्माण जो पर्यावरण को कम से कम नुकसान पहुंचाए, ऊर्जा और जल का अधिकतम उपयोग करे, और सामाजिक और आर्थिक रूप से टिकाऊ हो। इसका उद्देश्य न केवल घर बनाना, बल्कि पर्यावरण और संसाधनों का संरक्षण भी करना है।

9.11 संदर्भ सूची

- चतुर्वेदी, अ. (2021). भारत में आवास और स्वच्छता की स्थिति: एक विश्लेषण. नई दिल्ली: भारतीय पुस्तकालय.
- कुमार, र. (2023). आवास और स्वच्छता में सुधार: भारतीय संदर्भ. मुंबई: पेंगुइन बुक्स.
- शर्मा, म. (2019). भारतीय विकास नीति: आवास और स्वच्छता पर विशेष ध्यान. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- यादव, स. (2020). भारत में शहरीकरण और स्वच्छता: चुनौती और समाधान. जयपुर: राइट्स प्रकाशन.
- सिंग, अ. (2018). स्वच्छ भारत अभियान: नीति, कार्यक्रम और निष्कर्ष. अहमदाबाद: नालंदा प्रकाशन.

9.12 अभ्यास प्रश्न

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारत में आवास समस्या का वर्णन कीजिए। आवास समस्या के निदान हेतु सरकार ने क्या प्रयास किये हीं ?

2. आवास एवं स्वच्छता का मानव विकास में क्या महत्व है? भारत में आवास एवं स्वच्छता के लिए नियोजनकाल में क्या प्रयास किये गये हैं?

3. भारत में आवास समस्या एवं उसके कारणों की विवेचना कीजिए। दोषपूर्ण आवास व्यवस्था के क्या दुष्परिणाम होते हैं?

4. भारत में आवास एवं गंदी बस्तियों की समस्या पर एक विस्तृत लेख लिखिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. आवास एवं स्वच्छता का महत्व बताइये ।

2. भारत में आवास समस्या के क्या कारण हैं?

3. भारत में आवास समस्या को संक्षेप में समझाइये ।

4. भारत में आवास समस्या के समाधान हेतु क्या उपाय किये गये हैं?

5. राष्ट्रीय आवास और पर्यावास नीति को संक्षेप में लिखिए।

6. भारत में गंदी बस्तियों की समस्या पर टीप लिखिए।

7. केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम को संक्षेप में लिखिए।

8. दोषपूर्ण आवास व्यवस्था के क्या-क्या दुष्परिणाम होते हैं?

9. आवास समस्या के निदान हेतु पंचवर्षीय योजनाओं में क्या कदम उठाये गये हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारत में आवास समस्या के लिए कौन सा कारण उत्तरदायी है-

(अ) जनसंख्या में तीव्र वृद्धि

(ब) संयुक्त परिवारों का विघटन

(स) श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति

(द) उपर्युक्त सभी

2. भारत में नयी राष्ट्रीय आवास और पर्यावास नीति कब घोषित हुई-

(अ) 1991

(ब) 1995

(स) 1998

(द) 2000

3. केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम कब लागू किया गया-

(अ) 1981

(ब) 1986

(स) 1988

(द) 1991

4. इंदिरा आवास योजना कब प्रारम्भ की गई-

(अ) 1985

(ब) 1988

(स) 1990

(द) 1992

5. आवास, स्वच्छता एवं जलापूर्ति के लिए एकीकृत उपाय सुनिश्चित करने के लिए 'समग्र आवास योजना' किस वर्ष लागू की गई है-

(अ) 1995-96

(ब) 1999-2000

(स) 2001-02

(द) 2002-03

उत्तर- 1. (द), 2. (स), 3. (ब), 4. (अ), 5. (ब) ।

इकाई-10

भारत की जनांकिकीय विशेषताएँ

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 जनसंख्या का आकार
10.4 भारत में जन्म दर ऊँची होने के कारण
10.5 नगरीकरण के कारण
10.6 भारत में नगरीय जनसंख्या में वृद्धि के कारण
10.7 सार संक्षेप
10.8 मुख्य शब्द
10.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
10.10 संदर्भ सूची
10.11 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

भारत, दुनिया का दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है, और इसकी जनसंख्या का आकार लगातार बढ़ रहा है। भारतीय समाज में जनसंख्या वृद्धि, वितरण और संरचना से जुड़ी विभिन्न विशेषताएँ हैं, जो सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक पहलुओं को प्रभावित करती हैं। जनांकिकीय विशेषताएँ किसी भी देश के विकास के रास्ते को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, और भारत में इन विशेषताओं को समझना देश की समृद्धि और समग्र विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है।

भारत की जनसंख्या के आकार में निरंतर वृद्धि हो रही है, जिससे न केवल संसाधनों पर दबाव बढ़ता है, बल्कि स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, और सामाजिक सेवाओं की चुनौतियाँ भी उत्पन्न होती हैं। इसके बावजूद, भारत में युवा आबादी का विशाल वर्ग है, जो एक

संभावित "डेमोग्राफिक डिविडेंड" (Demographic Dividend) के रूप में कार्य कर सकता है, यदि इसे उचित अवसर और संसाधन मिलें।

भारत में जनसंख्या का वितरण क्षेत्रीय असमानताओं को दर्शाता है, जहां कुछ राज्य अत्यधिक जनसंख्या घनत्व वाले हैं, जबकि कुछ राज्य अपेक्षाकृत कम जनसंख्या वाले हैं। इसके अतिरिक्त, भारत में जनसंख्या संरचना में युवा वर्ग की प्रमुखता और वृद्ध जनसंख्या की बढ़ती संख्या भी एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

भारत की जनांकिकीय विशेषताओं का अध्ययन यह समझने में मदद करता है कि कैसे विभिन्न आयु समूहों, लिंग अनुपात, जन्म और मृत्यु दर, शिक्षा और साक्षरता दर, और ग्रामीण-शहरी जनसंख्या वितरण जैसी विशेषताएँ देश के सामाजिक-आर्थिक विकास पर प्रभाव डालती हैं।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
- विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
- आर्थिक नीतियों के प्रभाव का विश्लेषण कर सकें।
- भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में प्रमुख कारकों की पहचान कर सकें।

10.3 जनसंख्या का आकार

जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में चीन के बाद दूसरा स्थान है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में 121.02 करोड़ व्यक्ति निवास करते हैं। वर्तमान समय में इसमें 1.3 करोड़ व्यक्ति प्रति वर्ष बढ़ते जा रहे हैं। यहाँ जनसंख्या की वृद्धि दर वर्तमान में 1.64 प्रतिशत वार्षिक है। प्रतिवर्ष भारत में 2.1 करोड़ बच्चे जन्म लेते हैं और 0.8 करोड़ मर जाते हैं। भारत में प्रतिवर्ष आस्ट्रेलिया की सम्पूर्ण आबादी के बराबर जनसंख्या बढ़ रही है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भारत का क्षेत्रफल विश्व के कुल क्षेत्रफल का केवल 2.42% है, जबकि भारत में विश्व की 16.7 प्रतिशत आबादी निवास

करती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के जनसंख्या प्रभाग के अनुमान के अनुसार वर्ष 2050 तक यह बहुत सम्भव है कि भारत चीन से आगे निकलकर विश्व में सर्वाधिक आबादी वाला देश हो जावे जहाँ विश्व की 17.2 प्रतिशत आबादी का निवास होगा। संयुक्त राष्ट्र संघ ने यह अनुमान लगाया है कि 2010-11 के दौरान विश्व की जनसंख्या में 1.3 प्रतिशत की वार्षिक दर से वृद्धि हुई, जबकि इसी अवधि में यह वृद्धि चीन में 1 प्रतिशत से कम रही। किन्तु इसके विपरीत भारत में जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर इस अवधि में 1.6 प्रतिशत रही।

भारत में जनसंख्या के इतिहास पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि सन् 1900 के पूर्व तक वृद्धि दर बहुत कम थी। अनुमान है कि सन् 327 ई.पू. सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत की जनसंख्या 5 लाख थी। प्रो. एम. के. बैनेट के अनुसार सन् 1000 में भारत की जनसंख्या 4.8 करोड़ थी। प्रो. एस. चन्द्रशेखर का मत है कि भारत में सन् 1600 में 10 करोड़ जनसंख्या थी जो 1861 तक बढ़कर 16.4 करोड़ हो गयी, किन्तु सन् 1900 तक जनसंख्या बढ़कर 23.59 करोड़ के स्तर पर पहुँच गयी। सन् 1901 से 2011 तक देश की जनसंख्या और उसकी वृद्धि दर को निम्न तालिका-1 में दर्शाया गया है:-

तालिका - 1

भारत में 1901 से 2011 तक जनसंख्या का आकार

जनगणना का वर्ष	जनसंख्या (करोड़ में)	कुल वृद्धि (करोड़ में)	प्रतिदशक वृद्धि (प्रति हजार में)	वार्षिक वृद्धि दर (प्रतिशत में)

1901	23.84	+0.24	+1.02	+0.10
1911	25.21	1.37	5.75	0.56
1921	25.13	-0.8	-0.30 -	0.03
1931	27.90	+2.77	+11.00-	1.04
1941	31.87	+3.97	+14.22	+1.33
1951	36.11	+4.24	+13.31	+1.25
1961	43.92	+7.81	+21.64	+1.96
1971	54.79	+10.89	+24.66	+2.20
1981	68.34	+13.51	+24.75	+2.22
1991	84.64	+16.31	+23.87	+2.16
2001	102.87	+18.23	+21.54	+1.975
2011	121.02	+18.14	+17.64	+1.64

तालिका - 1 के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि 1911 से 1921 के दशक को छोड़कर प्रति दस वर्षों तथा या दशक में जनसंख्या में वृद्धि हुई है। जनगणना 1911-1921 में जनसंख्या 0.04 प्रतिशत वार्षिक दर से घटी है। जनगणना 1901 से 1911 के दशक में जनसंख्या वृद्धि दर सबसे कम 0.56 प्रतिशत वार्षिक रही है। जनसंख्या में सर्वाधिक वृद्धि 1971-81 के दशक में रही, जब जनसंख्या में वृद्धि 2.22 प्रतिशत वार्षिक रही । वर्तमान में 2001 से 2011 के दशक में जनसंख्या में वार्षिक वृद्धि दर लगभग 1.6 प्रतिशत रही ।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि जनसंख्या में तीव्र वृद्धि वर्ष 1951 से हुई। इस वृद्धि को जनसंख्या शास्त्री जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion) की संज्ञा देते हैं। सन् 1921 को महाविभाजन (Great Divide) का वर्ष माना जाता है। कारण यह है कि सन्

1921 के पूर्व जनसंख्या में वृद्धि बहुत धीमी गति से हुई तथा 1921-21 के दशक में जनसंख्या का आकार कम हुआ। इसके विपरीत 1921 के बाद जनसंख्या वृद्धि में क्रमशः तेजी से वृद्धि हुई। सन् 1991-2001 की अवधि में सर्वाधिक 18.23 करोड़ की वृद्धि हुई, जो कि अभी तक की अवधि में सर्वाधिक रही, किन्तु इस अवधि में वार्षिक वृद्धि दर 1.9 प्रतिशत रही जो 1971-81 एवं 1981-91 की तुलना में कम रही। तत्पश्चात 2001-11 की अवधि में जनसंख्या वृद्धि 18.14 करोड़ हुई तथा वार्षिक वृद्धि दर 1.64 प्रतिशत रही ।

भारत में प्रथम जनगणना 1872 में हुई थी, किन्तु जनसंख्या की व्यवस्थित गणना 1881 में हुई । सन् 1881 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल आबादी केवल 23.6 करोड़, जो बढ़कर मार्च, 2011 में 121.02 करोड़ हो गयी।

जनसंख्या वृद्धि के राज्यवार आंकड़ों का अध्ययन करने से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि 2001-2011 के दौरान विभिन्न राज्यों में जनसंख्या वृद्धि दर अलग-अलग रही। मेघालय देश में सर्वाधिक जनसंख्या वृद्धि वाला राज्य रहा है, जहाँ जनसंख्या वृद्धि दर 27.82 प्रतिशत रही। इसके विपरीत नागालैण्ड न्यूनतम जनसंख्या वृद्धि वाला राज्य रहा है, जहाँ जनसंख्या वृद्धि घटकर (-) 0.47 प्रतिशत रही ।

भारत में जन्म एवं मृत्यु दरें (Birth & Death Rates in India)

किसी एक वर्ष में प्रति एक हजार जनसंख्या पर जन्म लेने वाले बच्चों की संख्या को जन्म दर कहते हैं। इसी प्रकार एक वर्ष में प्रति एक हजार जनसंख्या पर मरने वाले लोगों की संख्या को मृत्यु दर कहा जाता है। भारत में जन्म दर एवं मृत्यु दर के आँकड़ों को तालिका क्रमांक-2 में दर्शाया गया है।

तालिका -2

2001 में भारत में जन्म दर एवं मृत्यु दर (प्रति हजार जनसंख्या)

वर्ष	जन्म दर	मृत्यु दर

1891-1900	45.8	44.4
1901-1910	49.2	42.6
1911-1920	48.12	47.2
1921-1930	46.4	36.3
1931-1940	45.2	31.2
1941-1950	39.9	27.4
1951-1960	41.7	22.8
1961-1970	41.2	19.0
1971-1980	37.2	15.0
1990-1991	30.2	9.7
1999-2000	26.1	8.7
2008-2009	22.5	7.3

तालिका क्रमांक-2 के विश्लेषण से स्पष्ट है कि भारत में जन्म दर एवं मृत्यु दर में उत्तरोत्तर कमी हुई है, किन्तु मृत्यु दर में कमी की दर जन्म दर में कमी दर से कहीं अधिक रही है। 1951 में जन्म दर एवं मृत्यु दरें क्रमशः 39.9 एवं 27.4 प्रति हजार थीं, जो 1991 की जनगणना में घटकर क्रमशः 30.2 एवं 9.7 प्रति हजार रह गयीं। वर्ष 2009 में भारत में जन्म दर एवं मृत्यु दरें क्रमशः 22.5 तथा 7.3 प्रति हजार आकलित की गई है। भारत में ऊंची जन्म दर तथा स्वास्थ्य सुविधाओं में संरचनात्मक विकास के फलस्वरूप निरन्तर घटती मृत्यु दर से भारत में जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion) की स्थिति उत्पन्न हो गयी है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यद्यपि भारत में जन्म दर कम हो रही है, फिर भी विश्व के अनेक विकसित देशों की तुलना में यहाँ की जन्म दर काफी ऊँची है। उदाहरण के लिये

इंग्लैण्ड में प्रति हजार जन्म दर लगभग 13, फ्रान्स में 11, जापान में 12, अमेरिका एवं रूस में यह 13 है। इसी प्रकार जापान में मृत्यु दर प्रति हजार 5, आस्ट्रेलिया एवं कनाड़ा में 6, अमेरिका में 7, रूस, फ्रान्स, जर्मनी और इंग्लैण्ड में 8 प्रति हजार है, जबकि भारत में मृत्यु दर 9 प्रति हजार है।

10.4 भारत में जन्म दर ऊँची होने के कारण

भारत में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के दो कारण है, प्रथम जन्म दर का अधिक होना और द्वितीय-मृत्यु दर में तेजी से कमी आना। भारत में जन्म दर के ऊँचा होने के प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं:-

(1) संयुक्त परिवार (Joint Family System) :- भारतीय बड़े एवं संयुक्त परिवार को सुरक्षा, समृद्धि एवं आश्रितता की दृष्टि से अच्छा मानते हैं। बड़े परिवार का समाज में विशिष्ट स्थान एवं सम्मान होता है।

(2) बाल विवाह (Child Marriges): भारत में बहुत छोटी उम्र में ही बच्चों का विवाह कर दिया जाता है, इससे कम उम्र में ही बच्चे पैदा होने लगते हैं। बाल विवाह के कारण माँ की बच्चे पैदा करने की अवधि काफी लम्बी होती है।

(3) ईश्वरीय देन (God Gift):- भारत में बच्चों को ईश्वर की देन माना जाता है। बच्चों को भाग्य की देन भी मानते हैं। अतः वे सन्तान निरोधक उपायों को अपनाना अच्छा नहीं समझते ।

(4) विवाह की अनिवार्यता (Compulsion of Marrige) :- भारत में विवाह करना सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अनिवार्य माना जाता है। माता-पिता भी अपने बच्चों का विवाह-संस्कार करना अपना उत्तरदायित्व मानते हैं। इसलिये भी देशा में जन्म दर ऊँची है। इसके साथ ही भारत की अधिकांश जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है, जहाँ मनोरंजन के साधनों का अभाव है। यहाँ लोग यौन सम्पर्क को मनोरंजन का मुख्य साधन मानते हैं, इससे जनसंख्या बढ़ रही है। 1201

(5) निम्न जीवन स्तर (Low Standard of Living):- भारतीयों का जीवन स्तर काफी निम्न है और इस दशा के आदी हो गये हैं। सामान्यतः निम्न जीवन स्तर के कारण सन्तान पैदा करना एवं वंश बढ़ाना लोग अच्छा मानते हैं। भारत में अन्य देशों की तुलना में प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। लोगों का मत है कि जनसंख्या बढ़ने पर आय बढ़ती है क्योंकि यहाँ 8-10 वर्ष के बच्चे भी काम करने लगते हैं। अतः बच्चे अधिक होना भी लोगों के लिये आय का स्रोत है।

(6) सामाजिक परम्पराएँ (Social Traditions) :- अधिकांश हिन्दू पुत्र प्राप्ति को उपलब्धि मानते हैं। अतः लकड़ियाँ पैदा होने पर भी पुत्र प्राप्ति की इच्छा की पूर्ति के लिये लोग बच्चे उत्पन्न करते रहते हैं। जिन महिलाओं को बच्चे उत्पन्न नहीं होते हैं, उन्हें समाज में सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता है।

(7) अन्य (Others) :- भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार नियोजन सुविधाओं का अभाव है। इससे जन्म दर काफी ऊँची है। गर्म जलवायु के कारण भी यहाँ महिलाओं की प्रजनन क्षमता तुलनात्मक अधिक है। (

मृत्यु दर में कमी के कारण

पिछले वर्षों में भारत में मृत्यु दर में कमी आने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :-

1) योजनाकाल में चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं में तेजी से विस्तार हुआ ।

(2) सिनेमा, टेलीविजन, रेडियो आदि मनोरंजन के साधनों का विस्तार किया गया।

(3) भारत में लड़कों की विवाह आयु 21 वर्ष व लड़कियों की 18 वर्ष कर दी गयी है। इससे बाल विवाहों को रोकने में काफी मदद मिली है।

(4) स्त्रियों के लिया शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का काफी विस्तार किया गया है।

(5) अकाल और महामारियों को नियन्त्रित कर लिया गया है।

(6) योजनाकाल में प्रति व्यक्ति आय बढ़ने से लोगों का जीवन स्तर बढ़ गया है। इससे मृत्यु दर कम हो गयी है।

(7) शहरी जनसंख्या में वृद्धि हुई है, इससे मृत्यु दर प्रभावित हुई है।

भारत में लिंग अनुपात

किसी भी देश की जनसंख्या के अध्ययन में जनसंख्या के लिंगानुपात अध्ययन का विशेष महत्व है। लिंग अनुपात का अर्थ एक हजार पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या से है। भारत में नगरों एवं ग्रामों दोनों में ही लिंगानुपात कम है। किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से लिंग विषमता नगरों में अधिक है। इसका मूल कारण यह है कि पुरुष गाँवों से रोजगार की तलाश में शहरों में आ जाते हैं, जबकि उनके परिवार गाँवों में ही रहते हैं। इससे नगरों में लिंग रचना पुरुष प्रधान एवं गाँवों में स्त्री प्रधान हो जाती है। यह तालिका-3 से स्पष्ट है :-

तालिका -3

भारत में ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में लिंगानुपात

(स्त्रियाँ प्रति हजार पुरुषों पर)

वर्ष	ग्रामीण	नगरीय	कुल
1901	979	910	972
1951	965	859	946
1961	963	845	941
1971	951	847	930
1981	954	880	934
1991	950	837	927

2001	946	901	933
2011	947	926	940

तालिका-3 के विश्लेषण से भारत में लिंगानुपात से संबंधित निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं:- 1. घटता हुआ लिंगानुपात (Declining Sex-Ratio) :- भारत में जनांकिकी आंकड़ों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यहाँ पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या कम होती जा रही है। 1901 में प्रति 1000 पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या 972 थी जो 1991 की जनगणना के अनुसार 927 रह गयी। किन्तु वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार लिंगानुपात में वृद्धि हुई है और एक हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 933 हो गयी थी, जो कि वर्ष 2011 में बढ़कर 940 हो गई है। पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का अनुपात कम होने के मुख्य कारण हैं-

(i) बालिकाओं के प्रति उपेक्षा,

(ii) स्त्रियों की प्रसूति एवं अन्य स्त्री प्रधान बीमारियों से मृत्यु

(iii) बाल-विवाह के कारण कम आयु में मातृत्व बोझ होने से बालिकाओं की अकाल मृत्यु,

(iv) लड़कियों की तुलना में लड़कों के स्वास्थ्य आदि पर विशेष ध्यान देना आदि ।

2. शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में अन्तर (Difference in Urban & Rural Areas):- भारत में प्रति 1000 पुरुषों पर महिलाओं की संख्या शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक है। यह प्रवृत्ति सन् 1901 से आज तक बनी हुई है। वर्ष 2011 की जनगणना के अध्ययन से ज्ञात होता है कि 1000 पुरुषों पर शहरी क्षेत्रों में 926 एवं ग्रामीण क्षेत्रों में 947 स्त्रियाँ हैं। इसका प्रमुख कारण ग्रामीण अपनी स्त्रियों को गाँवों में छोड़कर काम के लिये शहरों में आ जाते हैं।

3. विभिन्न राज्यों में अन्तर (Difference in States):- देश के विभिन्न राज्यों में भी स्त्री-पुरुष अनुपात में पर्याप्त भिन्नता है। 2011 की जनगणना के अनुसार 1000 पुरुषों पर राजस्थान में 926, उत्तरप्रदेश में 908, मध्यप्रदेश में 930, पंजाब में 893, बिहार में 916, हरियाणा में 877 और हिमाचल प्रदेश में 974 स्त्रियाँ हैं। देहली में पुरुष-स्त्री अनुपात 866 है। केरल ही एक ऐसा राज्य है, जहाँ 1000 पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या 1084 है।

4. अन्य देशों से तुलना (Comparison With Other Countries) :- भारत में स्त्री-पुरुष अनुपात अन्य देशों की तुलना में काफी भिन्नता लिये हुये हैं। जैसे अमेरिका में 1000 पुरुषों पर 1050 स्त्रियाँ हैं तो रूस एवं ब्रिटेन में क्रमशः 1270 एवं 1060 स्त्रियाँ हैं।

5. गरीबी (Poverty):- भारत स्वयं एक निर्धन देश है। अतः यहाँ अधिकांश महिलाओं को प्रसूती के पूर्व तक काम करना पड़ता है। प्रसूती के पश्चात् भी वे शीघ्र काम में लग जाती हैं। अतः उन्हें आराम नहीं मिलता और उनका स्वास्थ्य गिरता चला जाता है। यही कारण है कि भारत में प्रसूती के समय महिलाओं की मृत्यु दर बहुत अधिक है।

6. अन्य (Others) :- सामान्यतः खान-पान, पहिनने-ओढ़ने आदि में लड़कियों और लड़कों में भेद किया जाता है। भारत में यह धारणा प्रबल है कि लड़के से वंश चलता है। अतः लड़कियों को कम महत्व देते हैं। लड़की को बचपन से ही घर के कामकाज में लगा दिया जाता है। अतः उसे शिक्षा-प्रशिक्षण कम मिलता है। लड़कियों को स्वावलम्बी बनाने के प्रति परिवार के लोग उदासीन रहते हैं। अभी भी अनेक जातियों में पर्दाप्रथा है। इससे महिलाओं का स्वास्थ्य खराब रहता है और उनकी असमय मौत हो जाती है। अनेक दहेज के लालची लोग नव-वधुओं को विभिन्न प्रकार की यातनाएँ देते हैं। इससे उत्पीड़ित होकर या तो लड़की स्वयं मर जाती है अथवा उसे मार डाला जाता है।

जनसंख्या का घनत्व

'मानव तथा भूमि के अनुपात' को जनसंख्या का घनत्व कहते हैं अर्थात प्रति वर्ग किलोमीटर में निवास करने वाले व्यक्तियों की औसत संख्या को जनसंख्या का घनत्व कहते हैं।

भारत में 1951 में जन घनत्व 117 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर था, जो 1961 में 142, 1971 में 178, 1981 में 221 एवं वर्ष 1991 में 267 हो गया। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार जन घनत्व 325 था, जो बढ़कर वर्ष 2011 में 382 हो गया है। इस प्रकार 1951 की तुलना में 2011 में प्रति किलोमीटर जनघनत्व में 265 व्यक्तियों की वृद्धि हुई है।

सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में सर्वाधिक घनत्व दिल्ली का है और इसके बाद चण्डीगढ़ का स्थान है। तदुपरान्त पुडुचेरी, दमन एवं दीव, लक्षद्वीप, बिहार, प. बंगाल एवं केरल का स्थान है। इसके विपरीत जनसंख्या का घनत्व अरुणाचल प्रदेश में सबसे कम 17 हे। इसके बाद अण्डमान एवं निकोबार द्वीप में 46, मिजोरम में 52, सिक्किम में 86 तथा नागालैण्ड में 119 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर जनसंख्या घनत्व है।

भारत के जिन प्रदेशों में जनघनत्व अधिक है उसके मुख्य कारण हैं भूमि उत्पादकता का अधिक होना, अच्छी जलवायु, सिंचाई की अच्छी व्यवस्था, व्यापार एवं व्यवसाय का केन्द्र होना, राजधानी होना, परिवहन के साधनों का विकसित होना, उद्योग-धन्धों की उन्नतशील दशा, आन्तरिक सुरक्षा, कानून की समुचित व्यवस्था आदि ।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जन घनत्व एवं आर्थिक विकास में कोई सीधा एवं प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि यह जनघनत्व आर्थिक सम्पन्नता पर आर्थिक निर्धनता का प्रतीक नहीं है। अमेरिका में जनघनत्वं 26 व्यक्ति प्रति किलोमीटर होने पर भी वह विश्व का सम्पन्न राष्ट्र है जबकि ब्राजील, आस्ट्रेलिया में जनघनत्व क्रमशः 12 एवं 2 होने पर भी अमेरिका की तुलना में पिछड़े हुये हैं। उल्लेखनीय है कि आर्थिक विकास को प्राकृतिक साधन, तकनीकी ज्ञान, औद्योगिक स्तर आदि अधिक प्रभावित करते हैं तथा जनघनत्व कम।

प्रत्याशित आयु (Life Expectancy)

जब किसी देश में बच्चा जन्म लेता है तब यह अनुमान लगाया जाता है कि वह कितने वर्षों तक जीवित रहेगा। इस प्रवृत्ति को प्रत्याशित आयु कहते हैं। अतः मृत्यु दर कम होने पर लोगों की प्रत्याशित आयु अधिक होती है तथा मृत्यु दर अधिक होने पर प्रत्याशित आयु कम हो जाती है।

भारत में प्रत्याशित आयु में पिछले 100 वर्षों में लगभग तीन गुनी से भी अधिक वृद्धि हुई है। वर्ष 1911 में प्रत्याशित आयु केवल 20 वर्ष थी, जो बढ़कर 1921 में 29.2 वर्ष, 1931 में 26.4 वर्ष, 1941 में 31.8 वर्ष, 1951 में 32.1 वर्ष, 1961 में 41.2 वर्ष, 1971 में 46.4 वर्ष, 1981 में 51 वर्ष तथा वर्ष 2001 में 63.0 वर्ष हो गयी । वर्ष 2006 के अन्त में भारत की औसत प्रत्याशित आयु 63.5 वर्ष हो गयी। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रत्याशित आयु पुरुषों (62.6 वर्ष) की तुलना में महिलाओं (63.5 वर्ष) की अधिक है। वास्तविकता यह है कि योजनाकाल में चिकित्सा सुविधाओं का पर्याप्त विकास हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप प्रत्याशित आयु तेजी से बढ़ी है। योजनाकाल में बाल मृत्यु दर एवं सामान्य मृत्यु दर दोनों ही कम हुई है।

लेकिन अन्य देशों से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि भारत में प्रत्याशित आयु काफी कम है। उदाहरण के लिये सन् 2006 में चीन में प्रत्याशित आयु 71 वर्ष, ब्रिटेन एवं अमेरिका में 76 वर्ष तथा जापान में 79 वर्ष थी, जबकि भारत में यह यह केवल 63 वर्ष है।

साक्षरता का स्तर

भारत में शिक्षित जनसंख्या का प्रतिशत 1951 में 18.3 था, जो बढ़कर 1961 में 28.3%, 1971 में 34.5%, 1981 में 43.6%, 1991 में 52.1%, 2001 में 64.8% एवं 2011 में बढ़कर 74.0% हो गया। संक्षेप में पिछले 60 वर्षों में शिक्षित जनसंख्या में लगभग चार गुना से अधिक वृद्धि हुई। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार भारत का केरल राज्य

सर्वाधिक साक्षर था। जहाँ साक्षरता प्रतिशत 96.0 था। बिहार देश का सबसे कम साक्षर प्रदेश है।

देश में ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में साक्षरता अधिक है। इसका मुख्य कारण यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा सुविधाओं का अभाव है, जबकि शहरी क्षेत्रों में पर्याप्त शिक्षा सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इसके साथ ही यहाँ पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की साक्षरता कम है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में पुरुषों की साक्षरता 82.1 प्रतिशत थी, जबकि स्त्रियों की साक्षरता 65.5 प्रतिशत थी । भारत में कार्यशील जनसंख्या का व्यावसायिक ढाँचा

(भारत में कार्यशील जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना)

सामान्यतः कार्यशील जनसंख्या (भागीदारिता) को व्यवसायों के आधार पर तीन वर्गों में विभक्त किया जाता है, यथा - प्राथमिक क्षेत्र, द्वितीयक क्षेत्र और तृतीयक या सेवा क्षेत्र। प्राथमिक क्षेत्र के अन्तर्गत कृषि, पशु- पालन, मछली पालन, वन एवं बागान आदि में कार्यरत श्रम शक्ति को रखा जाता है। द्वितीयक क्षेत्र में उद्योग, खनन, भवन निर्माण आदि में काम करने वाले श्रमिकों को रखा जाता है। तृतीयक या सेवा क्षेत्र में परिवहन, संचार, बैंकिंक एवं अन्य सेवाओं में लगे श्रमिकों को रखा जाता है। कार्यशील जनसंख्या के व्यावसायिक ढाँचे को तालिका 4 में दर्शाया गया है।

तालिका -4

भारत में कार्यशील जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण (प्रतिशत)

व्यवसाय		**1901**	**1951**	**1971**	**1991**	**2001**
1.	प्राथमिक क्षेत्र	71.8	72.1	72.1	66	60
2	द्वितीयक क्षेत्र	12.6	10.6	11.2	13.0	17.5
3	तृतीयक क्षेत्र	15.6	17.3	16.7	21.0	22.5

तालिका - 4 से स्पष्ट है कि भारत में अभी भी 2/3 जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। व्यावसायिक ढाँचे में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनकी गति बहुत धीमी है। वर्तमान में आवश्यकता इस बात की है कि जन शक्ति का हस्तांतरण प्राथमिक क्षेत्र से द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र में हो।

श्रम- शक्ति भागीदारिता एवं निर्भरता अनुपात

आर्थिक क्षेत्र में भागीदारी के आधार पर जनसंख्या को दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है। यथा-(अ) कार्यशील जनसंख्या और (ब) निर्भर या आश्रित जनसंख्या। कार्यशील जनसंख्या को ही जनशक्ति कहा जाता है। निर्भर जनसंख्या में वे सभी लोग आते हैं, जो अपने पालन पोषण एवं भोजन आदि के लिये कार्यशील जनसंख्या पर निर्भर रहते हैं। आर्थिक पिछड़ेपन, गरीबी एवं जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण प्रायः विकासशील देशों में विकसित देशों की तुलना में निर्भरता अनुपात अधिक रहता है। उदाहरणार्थ जहाँ भारत में प्रति एक कार्यशील व्यक्ति पर निर्भर व्यक्तियों की संख्या 1.6 है, वहीं यह संख्या ब्रिटेन में केवल 0.94, जापान में 1.34, इटली में 1.41 एवं अमेरिका में 1.51 है।

भारत में जनसंख्या की आर्थिक क्रियाओं में भागीदारी एवं आश्रितता का अध्ययन करने से एक तथ्य स्पष्ट होता है, वह यह है कि जनसंख्या में वृद्धि के कारण जहाँ कार्यशील जनशक्ति के अनुपात में कमी हुई है, वहीं आश्रित जनसंख्या का अनुपात बढ़ा है। इसका मूल कारण जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होने के कारण 0-14 आयु समूह की जनसंख्या में वृद्धि होना है। तालिका-5 में कुल जनसंख्या में कार्यशील जनशक्ति तथा आश्रित जनसंख्या का प्रतिशत एवं आश्रितता अनुपात को दर्शाया गया है।

तालिका - 5

भारत में कार्यशील एवं आश्रित जनसंख्या का प्रतिशत एवं आश्रितता का अनुपात का (1901 से 2001)

जनगणना	कुल जनसंख्या से प्रतिशत	प्रति कार्यशील व्यक्ति पर

वर्ष	कार्यशील जनशक्ति	आश्रित जनसंख्या	आश्रितों की संख्या (आश्रितता अनुपात)
1901	46.61	53.39	1.15
1961	42.98	57.02	1.33
1971	33.54	66.46	1.98
1981	33.44	66.54	1.99
1991	37.46	66.86	1.8
2001	39.1	60.9	1.56
1901	46.61	53.39	1.15

तालिका-5 के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि सन् 1901 में कुल जनसंख्या का 46.61 प्रतिशत भाग जनशक्ति के अन्तर्गत था, घटकर सन् 1951 में 39.10 प्रतिशत एवं 1981 में 33.14 प्रतिशत हो गया । पुनः सन् 2001 में कार्यशील जनशक्ति का प्रतिशत बढ़कर 39.10 हो गया। सन् 1901 में प्रति कार्यशील व्यक्ति के पीछे केवल 1.15 निर्भर व्यक्ति थे। यह अनुपात क्रमशः बढ़ा है तथा प्रति कार्यशील व्यक्ति पर निर्भर व्यक्तियों की संख्या बढ़कर सन् 1951 में 1.56, 1981 में 1.99 हो गयी। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार आश्रितता का अनुपात घटकर 1.56 हो गया।

105 भारत की कार्यशील जनसंख्या की एक प्रमुख विशेषता यह है कि कुल जनशक्ति में पुरुषों का प्रतिशत 77.17 एवं महिलाओं का 22.83 है। दूसरे शब्दों में महिलाओं में निर्भरता का प्रतिशत बहुत अधिक है। कार्यशील जनसंख्या का ग्रामीण-शहरी आधार पर विश्लेषण करने से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि कुल ग्रामीण जनसंख्या का 39.98 प्रतिशत कार्यशील एवं शेष 60.02 प्रतिशत निर्भर है। इसके विपरीत कुल शहरी जनसंख्या का 30.01 प्रतिशत कार्यशील एवं शेष 69.99 प्रतिशत निर्भर व्यक्तियों का है।

दूसरे शब्दों में ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या में भागीदारी का प्रतिशत अधिक है। इसके प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं:-ी

(i) भारत में शहरी क्षेत्र की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी अधिक है। फलतः परिवार के भरण-पोषण के लिये छोटी उम्र में ही बच्चे काम करने लगते हैं।

(ii) ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा सुविधाएँ तुलनात्मक कम है। फलतः ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चे काम में जल्दी लग जाते हैं।

(iii) ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा की व्यवस्था नहीं होती। फलतः ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों को उच्च शिक्षा के लिए शहरों में रहना पड़ता है। इससे शहरी क्षेत्रों में आश्रितता अनुपात में वृद्धि हो जाती है।

(iv) ग्रामीण क्षेत्रों में महिला श्रमिक शहरी क्षेत्रों की तुलना में अधिक होती है। गरीबों के कारण महिलाएँ कृषि क्षेत्र में बड़ी संख्या में कार्य करती हैं। फलतः ग्रामों में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात शहरों की तुलना में अधिक होता है।

ग्रामीण-नगरीय वर्गीकरण

नगरीकरण का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning & Definition of Urbanization)

नगरीकरण या शहरीकरण वह प्रक्रिया है, जिसमें जनसंख्या गाँवों, कस्बों या अन्य स्थानों से शहर में स्थानान्तरित एवं केन्द्रित होती है। विभिन्न विद्वानों ने शहरीकरण की निम्नलिखित परिभाषाएँ दी हैं:-

समाजशास्त्री प्रो. बर्गेल - "ग्रामीण क्षेत्रों का नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तन होने की प्रक्रिया को ही हमें शहरीकरण कहना चाहिये। इस प्रक्रिया का गाँव की जनसंख्या की आर्थिक संरचना पर गहरा प्रभाव पड़ता है।"

प्रो. थामसन एवं लुइस (Thompson & Lewis) - "नगरीकरण उस प्रक्रिया को कहते हैं, जिसके अन्तर्गत किसी देश की जनसंख्या बढ़ती दर से शहरों में आकर बसने लगती है।"

प्रो. थामसन एवं लुइस ने एक अन्य स्थान पर लिखा है, "नगरीकरण के अन्तर्गत एक समुदाय के लोगों का हटना है, जो मुख्यतः कृषि समुदाय से अन्य की ओर होता है, जो सामान्यतः बड़े आकार के होते हैं और जिनकी गतिविधियाँ मुख्यतः सरकार, व्यापार, उत्पादन तथा अन्य क्षेत्रों में केन्द्रित रहती है।"

10.5 नगरीकरण के कारण

नगरीकरण मुख्यतः दो कारणों से होता है। प्रथम, निष्कासन प्रभाव और द्वितीय, आकर्षण प्रभाव । इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है :-

(A) निष्कासन प्रभाव (Push Factors)

निष्कासन प्रभाव से आशय उन तत्वों या कारणों से है जो किसी व्यक्ति को अपना मूल निवास स्थान छोड़ने को बाध्य करते हैं, अर्थात वह अपना मूल स्थान छोड़कर शहरी स्थान पर बसने के लिये बाध्य होता है। इसके मुख्य कारण निम्न हैं :-

1. रोजगार के अवसरों का अभाव (Lack of Employment Opportunities):- जब किसी क्षेत्र में लगातार कई वर्षों तक सूखा पड़ता है या जीवन यापन के लिये रोजगार के अवसरों का अभाव रहता है, तब वहाँ की जनसंख्या अन्य स्थानों की ओर जाने के लिये विवश हो जाती है। भारत में प्रति वर्ष लाखों लोग ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यमान गरीबी एवं बेरोजगारी से त्रस्त होकर शहरों की ओर चल देते हैं।

2. भावी उन्नति के अवसरों का अभाव (Lack of opportunities for Future Progress):- जब किसी क्षेत्र विशेष में भावी उन्नति के कोई अवसर न हो, तब अनेक महत्वाकांक्षी लोग उस स्थान को छोड़कर अन्य ऐसे स्थान पर बस जाते हैं, जहाँ पर भावी उन्नति की आशा होती है। ऐसे स्थान प्रायः नव-निर्मित शहर या औद्योगिक स्थल होते हैं।

3. शैक्षणिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी कारण :- जिन क्षेत्रों में स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, तकनीकी प्रशिक्षण आदि का अभाव होता है, वहाँ से अनेक लोग चले जाते हैं। नर के णिकीक

4. अन्य कारण :- जिन क्षेत्रों में राजनैतिक, धार्मिक एवं जातीय आधार पर भेद-भाव होता है अथवा जहाँ किसी भी प्रकार का आतंक व्याप्त रहता है या जहाँ पर सामाजिक तिरस्कार एवं बहिष्कार होता है, वहां के लोग उस स्थान को छोड़ने के लिये विवश हो जाते हैं।

(B) आकर्षण प्रभाव (Pull Factors)

आकर्षण प्रभाव से आशय उन तत्वों से है, जो किसी व्यक्ति को अपना मूल निवास स्थान छोड़कर किसी अन्य स्थान पर बसने के लिये प्रोत्साहित करते हैं। आकर्षण प्रभाव के लिये निम्न कारण प्रमुख

1. औद्योगीकरण (Industrialisation):- प्रो. किंग्सले डेविस का मत है कि "नगरों में नवागन्तुकों की संख्या में वृद्धि औद्योगिक विकास से अत्यन्त घनिष्ठ रूप से संबंधित है।" इसका कारण यह है कि जहाँ उद्योगों के लिये श्रम की आवश्यकता होती है, वहीं इन केन्द्रों में व्यापारियों एवं अन्य सेवाओं का विस्तार भी होता है। ऐसी स्थिति में औद्योगिक केन्द्र समीपस्थ ग्रामों की जनसंख्या को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। यही कारण है कि स्वतंत्रता के बाद भारत में अनेक औद्योगिक शहरों का विकास हुआ है, जैसे-भिलाई, टाटानगर, जमशेदपुर आदि ।

2. व्यापार एवं व्यवसाय (Trade & Commerce) :- सभ्यता एवं विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ व्यापार एवं व्यवसाय में विस्तार होता है और इनमें जनशक्ति की आवश्यकता होती है। फलतः अच्छे रोजगार के अवसरों के लिये शहर ग्रामीण जनसंख्या को अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

3. रोजगार के अवसर (Empolyment Opportunities):- शहरी क्षेत्रों में अनेक प्रकार के रोजगार के अवसर विद्यमान रहते हैं। जैसे-निर्माण कार्य, सरकारी एवं गैर सरकारी नौकरी, घरेलू कार्य आदि । इन कार्यों में ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अधिक मजदूरी एवं वेतन प्राप्त होता है।

4. नागरिक सुविधाएँ (Civil Amenities) :- गांवों की तुलना में नगरों में नागरिक सुविधाएँ अधिक उपलब्ध होती हैं, जिससे ग्रामीण लोग वहाँ आकर्षित होते हैं। ये सुविधाएँ हैं - शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य, मनोरंजन आदि ।

5. यातायात एवं संवादवाहन (Transport & Communications) :- नगरीकरण का एक प्रमुख कारण यातायात एवं संवादवाहन के साधनों का तीव्र विकास है। यातायात एवं संवादवाहन के विकसित साधनों के अभाव में कोई भी नगर व्यापार का केन्द्र नहीं बन सकता। यातायात एवं संवादवाहन के साधनों के विस्तार से भी जीविकोपार्जन के अनेक साधन उपलब्ध होते हैं। यही है

6. सुरक्षित जीवन (Safety of Life):- नगरों में जीवन तथा सम्पत्ति गाँवों की तुलना में अधिक सुरक्षित होती है। इस सुरक्षा की भावना से लोग नगरों की ओर आकर्षित होते हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था

(i) भौगोलिक पर्यावरण (Geographical Environment):- नगरों का विकास अनुकूल भौगोलिक पर्यावरण के कारण ही सम्भव होता है। जिन क्षेत्रों में अनुकूल भौगोलिक पर्यावरण होता है, वहाँ मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी सरल होती है। यही कारण है कि भारत के सभी प्राचीन नगर नदियों के किनारे बसे हुये हैं।

(ii) मनोवैज्ञानिक तत्व (Psychological Factors) :- नगरों के विकास के लिये मनोवैज्ञानिक तत्व भी उत्तरदायी हैं। सामान्यतः अनेक सुविधाओं को गाँवों में उपलब्ध होने के बावजूद भी लोग नगरों में ही रहना पसंद करते हैं। भारत में शिक्षित वर्ग का झुकाव इसी कारण नगरों की ओर रहता है।

नगरीकरण के प्रभाव (Effects of Urbanization)

नगरीकरण के प्रभावों को दो भागों यथा-लाभ एवं हानि में बाँटा जा सकता है। ये निम्न प्रकार है:- कित्रि

(A) नगरीकरण के लाभ (Advantages of Urbanization)

(i) आर्थिक विकास (Economic Development)- नगरीकरण से उद्योग, व्यापार एवं अन्य अनेक आर्थिक क्रियाओं का विस्तार सम्भव हुआ है। बड़े पैमाने का उत्पादन, विशिष्टीकरण, उन्नत तकनीकी का उपयोग आदि सभी ने नगरीकरण के विस्तार में योगदान दिया है। इससे जहाँ आर्थिक विकास सम्भव हुआ है, वहीं मानवीय जीवन सुखी एवं सम्पन्न होने में भी सहायता मिली है।

(ii) सभ्यता एवं संस्कृति का विकास (Evolution of Civilization and Culture):- नगर किसी भी देश के केन्द्र बिन्दु होते हैं जहाँ सभ्यता पलती एवं विकसित होती है। वास्तव में साहित्य, संस्कृति, ज्ञान, विज्ञान, फैशन आदि का विकास नगरों में ही होता है। ग्रामीण क्षेत्रों के निवासी नगरीय संस्कृति का अनुकरण करते हैं।

(iii) व्यावसायिक ढाँचे में परिवर्तन (Change in Occupational Structure):- नगरीकरण से व्यावसायिक ढाँचे में विविधता आंती है तथा असन्तुलन समाप्त होता है। गांवों से शहरों की ओर जनसंख्या के देशान्तर से कृषि पर जनसंख्या का दबाव कम होता है। दूसरे शब्दों में, नगरीकरण से जनशक्ति का हस्तान्तरण प्राथमिक क्षेत्र से द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र में होता है। इससे व्यावसायिक ढाँचे सन्तुलन स्थापित होने में सहायता मिलती है।

(iv) अन्य प्रभाव :- नगरीकरण के अन्य लाभ भी महत्वपूर्ण हैं, जैसे- (a) जनसंख्या वृद्धि की दर में कमी, अर्थात ग्रामों की तुलना में शहरों में जन्म दर कम रहती है, जिससे जनसंख्या वृद्धि की दर कम हो जाती है। (b) जनसंख्या का पुनर्विस्तार । (c) जनसंख्या के आकार तथा संरचना में परिवर्तन और (d) जन-साधारण के दृष्टिकोण का व्यापक होना ।

(B) नगरीकरण की हानियाँ (Disadvantages of Urbanization)

(i) गन्दी बस्तियाँ (Slum Areas)- ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाले लोग गरीब श्रमिक होते हैं। इन श्रमिकों के आवास की समुचित व्यवस्था न होने के कारण गन्दी बस्तियों का

निर्माण होता है। इन बस्तियों में पेयजल, विद्युत, गन्दी नालियाँ, शौचालय आदि की पर्याप्त व्यवस्था नहीं होती। फलतः इनमें रहने वालों का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता ।

(ii) आवासीय कठिनाइयाँ (Housing Problem)- महानगरों में जनसंख्या का इतना अधिक केन्द्रीकरण हो जाता है कि आवासीय सुविधाओं की कमी हो जाती है। मकानों के किराये बहुत अधिक बढ़ जाते हैं, जिससे मध्यम वर्ग के लोगों के जीवन स्तर पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(iii) यातायात की समस्या (Problem of Transportation)-जब बड़े नगरों में जनसंख्या का केन्द्रीकरण होता है तो दूर-दूर बस्तियों का निर्माण होता है। इससे नगरीय यातायात की समस्या पैदा होती है। जन-सामान्य को अपनी आय का एक बड़ा भाग यातायात पर व्यय करना पड़ता है।

(iv) प्रदूषण (Pollution)- महानगरों की घनी बस्तियों में शुद्ध हवा भी प्राप्त नहीं होती । मोटर-गाड़ियों के धुएँ से वायु प्रदूषण होता है। ध्वनि प्रदूषण की समस्या भी जटिल हो जाती है। गन्दी नालियों से मच्छर पैदा होते हैं, जिसका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(v) सुरक्षा की समस्या (Problem of Safety)-महानगरों में जान-माल की सुरक्षा भी कठिन हो जाती है। चोरी, जबकटी, हत्या जैसे अपराधों की संख्या बढ़ जाती है।

(vi) नगरीय सुविधाओं की कमी (Lack of Civil Amenities)-जनसंख्या के केन्द्रीकरण से नगरीय सुविधाओं की कमी भी हो जाती है। पेयजल, विद्युत आपूर्ति, स्वास्थ्य सुविधाएँ, सफाई आदि की कमी के कारण जीवन कष्टप्रद हो जाता है।

(vii) प्रशासकीय व्यय में वृद्धि (Increase in Administrative Expenses)- नगरों के निवासियों को नगरीय सुविधाएँ उपलब्ध कराने एवं शान्ति-व्यवस्था को बनाये रखने में बहुत व्यय करना पड़ता है। साधनों की कमी के कारण नगरीय सुविधाओं का स्तर गिर जाता है।

भारत में नगरीकरण

भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ भी जनसंख्या का 68.4 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। इससे स्पष्ट है कि भारत में शहरों की संख्या एवं उनमें रहने वाली जनसंख्या विकसित देशों की तुलना में कम है। इसके साथ ही यहाँ स्वतंत्रता के बाद ही बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना हुई है, जिससे नगरों की संख्या एवं उनमें रहने वाली जनसंख्या में वृद्धि हुई है। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल नगरों की संख्या 3768 थी तथा इनमें 21.72 करोड़ या कुल जनसंख्या का 25.72 प्रतिशत व्यक्ति निवास करते थे। तालिका-6 में नगरों की संख्या एवं कुल जनसंख्या से नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत दर्शाया गया है।

तालिका – 6

भारत में नगर एवं नगरीय जनसंख्या

जनगणना वर्ष	सभी श्रेणियों के नगरों की संख्या	नगरीय जनसंख्या (करोड़ में)	कुल जनसंख्या से नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत
1901	1827	2.59	10.84
1951	2843	6.24	17.29
1961	2365	7.89	17.97
1971	2590	10.91	19.91
1981	3378	15.95	23.34
1991	3768	21.72	25.72
2001	-	28.53	27.81
2011	-	37.71	31.16

तालिका - 6 के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि सन् 1901 में यहाँ कुल 1827 नगर थे, जो बढ़कर सन् 1951 में 2843 एवं 1991 में 3768 हो गये। कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या के प्रतिशत का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि यह प्रतिशत जहाँ सन् 1901 में केवल 10.84 था, बढ़कर सन् 1951 में 17.29, सन् 1981 में 23.34 प्रतिशत, 1991 में 25.72 प्रतिशत एवं 2001 में 27.78 प्रतिशत हो गया। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार देश में कुल 37.71 करोड़ लोग नगरों में निवास करते हैं, जो कि कुल जनसंख्या का 31.16 प्रतिशत है। इन आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि भारत में नगरीकरण की प्रवृत्ति अत्यधिक धीमी है।-

10.6 भारत में नगरीय जनसंख्या में वृद्धि के कारण

तालिका-6 से यह स्पष्ट है कि भारत में नगरीय जनसंख्या में क्रमशः विस्तार हो रहा है। नगरीय जनसंख्या में वृद्धि के प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं :-

(i) गरीबी एवं बेराजगारी (Poverty and Unemployment): भारत के ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में भयावह गरीबी एवं बेरोजगारी विद्यमान है। गाँवों में कृषि की मौसमी प्रकृति होने के कारण जनशक्ति का एक बहुत बड़ा भाग अल्प रोजगार एवं अदृश्य बेरोजगारी की स्थिति में है। फलतः प्रतिवर्ष लाखों लोग रोजगार की खोज में नगरीय क्षेत्रों में आते हैं।

(ii) औद्योगीकरण (Industrialization):- स्वतंत्रता के बाद देश में अनेक बड़े उद्योगों की स्थापना हुई है। इन उद्योगों में समीपस्थ ग्रामों के लाखों लोग आकर बस गये हैं।

(iii) योजनाओं के लाभ (Advantages of Plans): पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत जहाँ आर्थिक क्रियाओं का सभी क्षेत्रों में विस्तार हुआ है, वहीं व्यापार एवं वाणिज्य, यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सेवाओं में भी तेजी से विकास हुआ है। इन सेवाओं में भी ग्रामीण क्षेत्रों की जनशक्ति को रोगजार प्राप्त हुआ है। र

(iv) सुरक्षा (Safety of Life): ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में जन एवं धन अधिक सुरक्षित माना जाता है। इससे भी ग्रामों से शहरों की ओर देशान्तरण को प्रोत्साहन मिला है।

(v) सामाजिक कारण (Social Reasons): गाँवों से नगरों की ओर देशान्तरण में जहाँ आर्थिक कारणों ने प्रोत्साहन प्रदान किया है, वहाँ सामाजिक कारण भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। शिक्षा, स्वास्थ्य, मानसिक विकास तथा बच्चों के उज्ज्वल भविष्य की आकांक्षा में भी अनेक व्यक्ति गाँव से शहर की ओर देशान्तरण करते हैं।

(vi) नागरिक सुविधाएँ (Civil Amenities): भारत में गांवों की तुलना में नगरों में नागरिक सुविधाएँ अधिक उपलब्ध हैं, जिससे ग्रामीण लोग वहां आकर्षित होते हैं। उदाहरणार्थ-शैक्षणिक सुविधाएँ, पेयजल, आवास, यातायात, मनोरंजन के साधन आदि को लिया जाता संकता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि भारत में शहरीकरण को निष्कासन प्रभाव (Push Factors) एवं आकर्षण प्रभाव (Pull Factors) दोनों ने प्रभावित किया है। जहाँ गाँवों की दयनीय दशा ने ग्रामीणों को गाँव छोड़ने के लिये विवश किया है, वहीं शहरों की चकाचौंध ने ग्रामीणों को अपनी ओर आकर्षित किया है। यहाँ यह तथ्य विशेष उल्लेखनीय है कि भारत में जनसंख्या का केन्द्रीकरण बड़े शहरों में अधिक हुआ है।

अच्छे नगरीकरण के लिये सुझाव

भारत में महानगरों का विस्तार योजनाबद्ध तरीकों से नहीं हुआ है और यही कारण है कि इन नगरों में अनेक जटिल समस्याएँ पैदा हुई हैं। चूँकि आने वाले वर्षों में नगरीकरण और तेजी से होगा, अतः यह आवश्यक है कि देश में नियोजित ढंग से नगरों का विस्तार किया जाये। नगर-नियोजन के सम्बन्ध में निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :-

(i) औद्योगिक क्षेत्रों का निर्धारण (Location of Industries): किसी भी बड़े नगर के समीप बड़े उद्योगों की स्थापना की स्वीकृति न दी जाये। प्रयास ऐसा होना चाहिये कि ये उद्योग पिछड़े एवं ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित हों ।

(ii) शहरों के लिये मास्टर प्लान बनाना (Preparation of Urban Master Plans): सभी बड़े नगरों के लिये मास्टर प्लान तैयार किये जाने चाहिये तथा बस्तियों के साथ-साथ पाठशाला, चिकित्सालय, पार्क, बाजार, मनोरंजन स्थल आदि के लिये स्थानों को सुरक्षित रखा जाना चाहिये ।

(iii) आवासीय सुविधाएँ (Housing Facilities): गन्दी एवं झुग्गी बस्तियों के स्थान पर अल्प-आय वर्ग के लिये गृह-निर्माण एवं अन्य संस्थाओं द्वारा आवास सुविधाएँ उपलब्ध करायी जानी चाहिये ।

(iv) नियोजित विकास (Planned Development): नगर-नियोजन में जहाँ भूमिगत नालियों, पेयजल, विद्युत आपूर्ति आदि सुविधाओं पर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिये, वहीं अतिक्रमण, बहुमंजिला इमारतों आदि पर नियंत्रण होना चाहिये।

(v) उप-नगरों का विकास (Development of Sub-Towns): सभी महानगरों में देशान्तरण रोकने के लिये इन महानगरों के आसपास उप-नगरों के विकास के प्रयास किये जाने चाहिये और इन स्थलों पर सभी बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध कराई जानी चाहिये ।

(vi) बुनियादी सुविधाओं का विस्तार (Expansion of Basic Facilities): विद्यमान गन्दी बस्तियों में बुनियादी सुविधाएँ जैसे-पेयजल, गन्दी नालियाँ, विद्युत आपूर्ति, पाठशाला, स्वास्थ्य केन्द्र आदि की व्यवस्था की जानी चाहिये ।

(vii) गाँवों में बुनियादी सुविधाएँ (Basic Facilities in Villages) : ग्रामीण क्षेत्रों में निष्कासन प्रभाव (Pusk Factors) को कम करने के लिये यह आवश्यक है कि ग्रामों में बुनियादी सुविधाओं के साथ-साथ रोजगार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना की जानी चाहिये । इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में यातायात, विद्युत, शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन आदि की पर्याप्त व्यवस्था की जानी चाहिये ।

क्या भारत में जनाधिक्य है ?

भारत में विद्यमान जनसंख्या और उसकी वृद्धि दर के आधार पर दो अलग-विचारधाराएँ विद्यमान हैं। प्रथम, विचारधारा के अनुसार भारत में जनाधिक्य है, जबकि द्वितीय विचारधारा के समर्थक जनाधिक्य को नहीं मानते। इन दोनों विचारधाराओं का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है :-

(a) भारत में जनाधिक्य है (India is Over-Populated): यह दृष्टिकोण निराशावादी अर्थशास्त्रियों का है। उनका मत है कि भारत में जनाधिक्य है। जनसंख्या की अधिकता के कारण ही देश में आर्थिक वृद्धि दर धीमी रही तथा पंचवर्षीय योजनाओं के लाभ जन-साधारण को नहीं मिले। इसके समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं :-

(i) खाद्यान्नों की तुलना में जनसंख्या अधिक तेजी से बढ़ रही है (Growth of Population is more than the Food Supply):- चूँकि भारत की 121.02 करोड़ जनसंख्या के लिये लगभग 25 करोड़ टन खाद्यान्न की आवश्यकता है, जबकि यह अभी तक अधिक से अधिक 20.0 करोड़ टन खाद्यान्न उत्पन्न कर रहा है। इस प्रकार खाद्यान्न की तुलना में जनसंख्या अधिक तेजी से बढ़ रही है, जिससे भारत में जनाधिक्य है।

(ii) प्राकृतिक विपत्तियाँ (Natural Calamities):- माल्थस एवं उनके समर्थकों के अनुसार जिस देश में प्राकृतिक विपत्तियों के कारण मृत्यु होती है, वहाँ जनाधिक्य होता है। भारत में भी प्रतिवर्ष बाढ़, सूखा, बीमारियाँ आदि से हजारों लोग मरते हैं। लातूर का भूकम्प, सूरत में प्लेग व भोपाल का गैस काण्ड अति जनसंख्या का ताजा उदाहरण हैं।

(iii) ऊँची जन्म एवं मृत्यु दरें (High Birth and Death Rates) :- भारत में ब्रिटेन, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि विकसित देशों की तुलना में जन्म दर एवं मृत्यु दर काफी ऊँची है। यह तथ्य भी भारत में जनाधिक्य होने की पुष्टि करता है।

(iv) आवश्यक सुविधाओं की कमी (Lack of Basic Facilities):- देश में शिक्षण संस्थाओं, अस्पतालों, पीने योग्य पानी, जीवन रक्षक दवाइयाँ, पर्याप्त खाद्य सामग्री आदि का अभाव है, जो सिद्ध करता है कि भारत में जनाधिक्य है।

(v) भूमि पर बढ़ता जनभार (Increasing Burden of Land):- भारत में जनाधिक्य के कारण ही देश की 65 से 70 प्रतिशत जनसंख्या आज भी कृषि पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर है।

(vi) गिरता जीवन स्तर (Lower Standard of Living):- माल्थस गिरते जीवन स्तर को भी जनाधिक्य का मापदण्ड मानते थे। भारत में 1967-68 में 32 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे थे, जो 1991 में बढ़कर 41 प्रतिशत हो गये। पुनः विभिन्न रोजगार कार्यक्रमों के फलस्वरूप वर्ष 2005 में गरीबी की रेखा के नीचे रहने वालों का प्रतिशत घटकर 22 हो गया।

(b) भारत में जनाधिक्य नहीं है (India is not Over-Populated):- अनुकूलतम जनसंख्यावादी विद्वान मानते हैं कि भारत में जनाधिक्य नहीं है। वे अपने पक्ष के समर्थन में निम्नलिखित तर्क देते हैं:-

(i) प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि (Increase in Per-capita Income):- भारत में प्रति व्यक्ति आय में सतत् वृद्धि हो रही है। 1951 में भारत में प्रति व्यक्ति आय चालू मूल्यों पर 255 रुपये थी, जो 1995-96 में 10,149 रुपये एवं 2009-10 में 46,492 रुपये हो गयी। प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि जनाधिक्य न होने का सर्वोत्तम मापदण्ड है।

(ii) प्राकृतिक साधनों (Natural Resources) की प्रचुरता: भारत में कृषि भूमि ही नहीं लोहा, कोयला, ताँबा, अभ्रक आदि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। उपजाऊ भूमि का 51 प्रतिशत भाग, वनों का 29 प्रतिशत भाग एवं जल संसाधनों का केवल 15 प्रतिशत भाग ही काम में लाया जा रहा है। यदि प्राकृतिक साधनों का पूर्ण विदोहन किया जाये तो वर्तमान से भी अधिक जनसंख्या का भरण-पोषण सम्भव नहीं है।

(iii) जन्म दर एवं मृत्यु दर अधिक नहीं (Birth and Death Rates are not High):- भारत में जन्म एवं मृत्यु दर के कम होने का प्रमाण यही है कि विश्व की जनसंख्या में शताब्दी के प्रारंभ से अब तक 5 गुना वृद्धि हुई, जबकि भारत की जनसंख्या चार गुना बढ़ी है।

(iv) जनसंख्या का घनत्व (Density of Population):- भारत का प्रति किलोमीटर जनघनत्व अनेक विकसित देशों की तुलना में काफी कम है।

(v) आर्थिक पिछड़ापन (Economic Backwardness):- भारत आज भी एक पिछड़ा देश है। कृषि पद्धति परम्परागत एवं उद्योग पुरानी तकनीक पर आधारित है। यदि कृषि एवं उद्योगों का पूर्णतः विकास किया जाये तो वर्तमान जनसंख्या भी कम प्रतीत होगी ।

(vi) निराशावादी दृष्टिकोण आधारहीन है (Pessimistic Outlook is Baseless):- प्रत्येक जन्म लेने वाले बालक के जहाँ एक मुँह होता है, वहीं काम करने के लिये दो हाथ भी होते हैं। अतः यदि सभी को रोजगार उपलब्ध करा दिया जावे तो वह पर्याप्त मात्रा में उत्पादन कर सकता है। अतः विद्वानों का मत है कि निराशावादी दृष्टिकोण आधारहीन है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि वर्तमान में तेज गति से बढ़ती हुई जनसंख्या ने अनेक समस्याएँ पैदा कर दी हैं। अर्थात यहाँ जनाधिक्य है। फलतः इसे नियंत्रित किया जाना आवश्यक है, किन्तु यह तभी सम्भव है, जबकि परिवार कल्याण कार्यक्रम का प्रभावी ढंग से क्रियान्वयन किया जावे । शिक्षा एवं प्रचार-प्रसार के माध्यम से जन-साधारण को छोटे परिवार का महत्व समझाया जावे ।

जनसंख्या का संक्रान्ति सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिवादन प्रो.सी.पी.ब्लैकर ने किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक देश को जनसंख्या वृद्धि की मुख्यतः तीन अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। प्रथम अवस्था में अर्थव्यवस्था पिछड़ी रहती है और इसमें जन्म दर एवं मृत्यु दर दोनों अधिक रहती हैं। परिणामस्वरूप इस अवस्था में जनसंख्या वृद्धि दर अत्यधिक धीमी रहती है। fulf is of lines | द्वितीय अवस्था में आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार होता है, जिससे मृत्यु दर में तेजी से कमी आती है, जबकि जन्म दर स्थिर रहती है या बहुत कम घटती है। फलतः जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होती है। इसी कारण इस

अवस्था को "जनसंख्या विस्फोर" (Population Explosion) की अवस्था भी कहा जाता है।

तीसरी अवस्था में आर्थिक विकास एवं आय में वृद्धि के कारण जन्म दर में तेजी से कमी होती है और वह निम्नतम बिन्दु पर स्थिर हो जाती है। फलतः जनसंख्या की वृद्धि दर बहुत कम या शून्य हो जाती है। अन्ततः एक ऐसी भी स्थिति आती है, जब जन्म दर मृत्यु दर से भी कम हो जाती है और जनसंख्या बढ़ने के स्थान पर घटने लगती है। इस प्रकार, प्रो. ब्लैकर ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप जन्म दर में क्रमशः घटने की प्रवृत्ति होती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विश्व के अधिकांश विकासशील देश वर्तमान में प्रो. ब्लैकर द्वारा बतायी गयी संक्रान्ति की द्वितीय अवस्था से गुजर रहे हैं और इसी कारण इन देशों में " जनसंख्या विस्फोट" की स्थिति बनी हुई है।

10.7 सार संक्षेप

भारत की जनसंख्या विश्व में दूसरी सबसे बड़ी है और इसके आकार में निरंतर वृद्धि हो रही है। भारत की जनांकिकीय संरचना और विशेषताएँ देश के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। यहां की जनसंख्या विभिन्न आयु समूहों, लिंग अनुपात, और क्षेत्रीय वितरण में असमानताओं के साथ विकसित हो रही है।

1. जनसंख्या का आकार और वृद्धि

भारत की जनसंख्या 2024 में लगभग 1.42 बिलियन (142 करोड़) के आसपास पहुंचने का अनुमान है, जो लगातार बढ़ रही है। यह वृद्धि मुख्यतः उच्च जन्म दर और मृत्यु दर में कमी के कारण हो रही है।

2. आयु संरचना

भारत में युवा वर्ग (15-59 वर्ष) सबसे बड़ा है, जिससे "डेमोग्राफिक डिविडेंड" की संभावना है, जिसका मतलब है कि इस विशाल कार्यबल का सही उपयोग कर देश को आर्थिक रूप से फायदा हो सकता है। हालांकि, वृद्ध जनसंख्या (60 वर्ष और उससे ऊपर) में भी बढ़ोतरी हो रही है, जो भविष्य में सामाजिक सुरक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की आवश्यकता को बढ़ाएगी।

3. लिंग अनुपात

भारत में लिंग अनुपात में असंतुलन है, जिसमें पुरुषों की संख्या महिलाओं से अधिक है। यह समस्या मुख्य रूप से कुछ क्षेत्रों में लैंगिक भेदभाव, लिंग चयनात्मक गर्भपात और महिलाओं के प्रति समाज में असमान दृष्टिकोण के कारण है।

4. ग्रामीण और शहरी वितरण

भारत की जनसंख्या का बड़ा हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है, हालांकि शहरीकरण की गति बढ़ रही है। शहरी क्षेत्र में अधिक अवसर और बेहतर जीवन स्तर होने के कारण लोग गांवों से शहरों की ओर प्रवास कर रहे हैं, जिससे शहरों पर जनसंख्या का दबाव बढ़ रहा है।

5. शिक्षा और साक्षरता

भारत में शिक्षा के स्तर में सुधार हुआ है, लेकिन साक्षरता दर में अब भी अंतर है, विशेषकर महिलाओं और ग्रामीण इलाकों में। सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में कई योजनाएं शुरू की हैं, जैसे शिक्षा का अधिकार अधिनियम और स्वच्छ भारत मिशन, ताकि शिक्षा और स्वास्थ्य के स्तर में सुधार हो सके।

6. जनसंख्या वृद्धि दर और परिवार नियोजन

भारत में जनसंख्या वृद्धि दर में कमी आई है, लेकिन यह अभी भी अधिक है। सरकार ने परिवार नियोजन योजनाओं के माध्यम से जन्म दर को नियंत्रित करने का प्रयास किया है, जैसे **प्रधानमंत्री परिवार योजना** और **संवेदनशील और वंचित समुदायों** में जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम।

7. स्वास्थ्य और पोषण

भारत में स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार हुआ है, लेकिन अभी भी बहुत बड़ी आबादी को पर्याप्त स्वास्थ्य सेवाएं नहीं मिल पाती हैं। खासकर ग्रामीण इलाकों में स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी है। इसके बावजूद, भारत में जीवन प्रत्याशा (Life Expectancy) में सुधार हुआ है और मृत्यु दर में गिरावट आई है।

8. सामाजिक असमानताएँ

भारत में जनसंख्या के बीच सामाजिक, आर्थिक और जातिगत असमानताएँ मौजूद हैं। गरीब और निम्न वर्ग के लोग अधिकतर अस्वस्थ्य और अपर्याप्त आवासीय सुविधाओं से जूझते हैं, जबकि समृद्ध वर्ग के पास बेहतर संसाधन और सेवाएं होती हैं।

10.8 मुख्य शब्द

भारत की **जनांकिकीय** (Demographic) मुख्य शब्द निम्नलिखित है, जो भारत की जनसंख्या से संबंधित विभिन्न पहलुओं को समझने में मदद करती है। यह मुख्य शब्द

भारत की जनसंख्या के आकार, वृद्धि दर, संरचना, वितरण, और अन्य जनांकिकीय विशेषताओं के अध्ययन में उपयोगी है।

1. जनसंख्या (Population)

- **परिभाषा:** एक विशेष क्षेत्र या देश में रहने वाले लोगों की कुल संख्या। भारत की जनसंख्या 2024 तक लगभग 1.42 बिलियन (142 करोड़) तक पहुंचने का अनुमान है।

2. जनसंख्या वृद्धि दर (Population Growth Rate)

- **परिभाषा:** किसी विशेष अवधि (साल) में जनसंख्या के वृद्धि प्रतिशत को दर्शाने वाला सूचकांक। यह जन्म दर और मृत्यु दर के अंतर से निर्धारित होता है।

3. प्राकृतिक वृद्धि दर (Natural Growth Rate)

- **परिभाषा:** जन्म दर और मृत्यु दर के बीच का अंतर, जो प्राकृतिक रूप से जनसंख्या वृद्धि का कारण बनता है। यह दर बिना किसी प्रवास के जनसंख्या वृद्धि को दर्शाती है।

4. बच्चे की मृत्यु दर (Infant Mortality Rate - IMR)

- **परिभाषा:** प्रति 1,000 जीवित जन्मों पर 1 वर्ष से कम आयु में मरने वाले बच्चों की संख्या। यह स्वास्थ्य और पोषण के स्तर का संकेतक है।

5. जीवन प्रत्याशा (Life Expectancy)

- **परिभाषा:** किसी व्यक्ति के जन्म के समय औसतन कितने वर्षों तक जीवित रहने की संभावना है। यह स्वास्थ्य सेवाओं और जीवन स्तर के विकास को दर्शाता है।

6. साक्षरता दर (Literacy Rate)

- **परिभाषा:** किसी क्षेत्र में साक्षर लोगों का प्रतिशत। भारत में यह दर पिछले कुछ दशकों में बढ़ी है, लेकिन ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में अंतर है।

7. लिंग अनुपात (Sex Ratio)

- **परिभाषा:** पुरुषों और महिलाओं की संख्या के बीच अनुपात। भारत में लिंग अनुपात में असंतुलन देखा जाता है, जिसमें पुरुषों की संख्या महिलाओं से अधिक होती है।

8. कौशल अनुपात (Dependency Ratio)

- **परिभाषा:** वह अनुपात जो कार्यशील आयु वर्ग (15-59 वर्ष) के लोगों के मुकाबले आश्रित आयु वर्ग (0-14 और 60 वर्ष और उससे ऊपर) की जनसंख्या को दर्शाता है। यह संकेत करता है कि कार्यशील आबादी को कितने आश्रित लोगों को समर्थन देना पड़ता है।

9. आयु संरचना (Age Structure)

- **परिभाषा:** किसी देश की जनसंख्या का वितरण विभिन्न आयु समूहों (बालकों, युवाओं, वयस्कों, और वृद्धों) में। भारत की जनसंख्या में युवा वर्ग (15-59 वर्ष) की प्रमुखता है, जो एक डेमोग्राफिक डिविडेंड प्रदान कर सकती है।

10. जनसंख्या घनत्व (Population Density)

- **परिभाषा:** प्रति वर्ग किलोमीटर में निवास करने वाली जनसंख्या की संख्या। भारत में जनसंख्या घनत्व उच्च है, विशेषकर शहरी क्षेत्रों में।

11. जनसंख्या नियंत्रण (Population Control)

- **परिभाषा:** जनसंख्या वृद्धि की दर को नियंत्रित करने के उपाय, जैसे परिवार नियोजन योजनाएं और शिक्षा, जो जनसंख्या के वृद्धि को सीमित करने के लिए लागू की जाती हैं।

12. शहरीकरण (Urbanization)

- **परिभाषा:** ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में स्थानांतरण की प्रक्रिया। शहरीकरण से शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या की वृद्धि और संसाधनों पर दबाव बढ़ता है।

13. प्रवासन (Migration)

- **परिभाषा:** किसी व्यक्ति या जनसमूह का एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थायी या अस्थायी रूप से आवागमन। प्रवासन शहरीकरण, रोजगार अवसर, और विकास के कारण बढ़ सकता है।

14. जनसंख्या संरचना (Population Composition)

- **परिभाषा:** किसी क्षेत्र की जनसंख्या की संरचना विभिन्न विशेषताओं (जैसे, आयु, लिंग, जाति, शिक्षा स्तर) के आधार पर। यह समाज की सामाजिक और आर्थिक संरचना को प्रभावित करता है।

15. ग्रामीन और शहरी जनसंख्या (Rural and Urban Population)

- **परिभाषा:** ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में रहने वाली जनसंख्या का विभाजन। भारत की जनसंख्या का अधिकांश हिस्सा अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है, लेकिन शहरीकरण की गति बढ़ रही है।

16. कुपोषण दर (Malnutrition Rate)

- **परिभाषा:** कुपोषण का स्तर, जो बच्चों और वयस्कों में पोषण की कमी को दर्शाता है। यह विशेष रूप से ग्रामीण और गरीब क्षेत्रों में एक गंभीर समस्या है।

17. नगण्य जनसंख्या (Zero Growth Population)

- **परिभाषा:** जब किसी क्षेत्र की जनसंख्या में जन्म दर और मृत्यु दर के बीच संतुलन हो, और कुल जनसंख्या में कोई वृद्धि या कमी न हो।

18. नौकरी और रोजगार (Employment and Employment Rate)

- **परिभाषा:** कार्यबल में शामिल होने वाले लोगों की संख्या और बेरोजगारी की दर। जनसंख्या वृद्धि के साथ रोजगार के अवसरों का निर्माण आवश्यक होता है।

19. वृद्धावस्था (Aging Population)

- **परिभाषा:** एक ऐसी जनसंख्या जहां वृद्धों (60 वर्ष और उससे ऊपर) का अनुपात बढ़ता जा रहा है। भारत में वृद्ध जनसंख्या में वृद्धि हो रही है, जो स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा पर दबाव डाल रही है।

20. जनसंख्या सर्वेक्षण (Census)

- **परिभाषा:** किसी देश की जनसंख्या के बारे में विस्तृत जानकारी इकट्ठा करने की प्रक्रिया, जो हर 10 साल में भारत सरकार द्वारा आयोजित की जाती है। भारत में अंतिम जनसंख्या सर्वेक्षण 2021 में होना था, लेकिन कोविड-19 महामारी के कारण इसे स्थगित कर दिया गया था।

10.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

भारत की **जनांकिकीय स्व-प्रगति परीक्षण** के प्रश्नों के उत्तर निम्नलिखित हैं:

1. **भारत की जनसंख्या का आकार और वृद्धि दर क्या है?**
   भारत की जनसंख्या 2024 तक लगभग 1.42 बिलियन (142 करोड़) होने का अनुमान है। इसकी वृद्धि दर पिछले कुछ दशकों में धीमी हुई है, लेकिन यह अभी भी अधिक है। जन्म दर में कमी और मृत्यु दर में सुधार के कारण जनसंख्या वृद्धि हो रही है।
2. **जनसंख्या संरचना का क्या मतलब है?**
   जनसंख्या संरचना से तात्पर्य किसी देश या क्षेत्र की जनसंख्या के विभिन्न आयु समूहों, लिंग अनुपात, और अन्य सामाजिक-आर्थिक पहलुओं से होता है। भारत की जनसंख्या में युवा वर्ग का प्रमुख स्थान है, जिससे डेमोग्राफिक डिविडेंड की संभावना है।
3. **भारत में लिंग अनुपात में असंतुलन क्यों है?**
   भारत में लिंग अनुपात में असंतुलन मुख्य रूप से महिला शिशु हत्या, लिंग चयनात्मक गर्भपात, और महिलाओं के प्रति सामाजिक भेदभाव के कारण है। इसके परिणामस्वरूप पुरुषों की संख्या महिलाओं से अधिक है।

4. **आयु संरचना में बदलाव का भारत पर क्या प्रभाव है?**
आयु संरचना में बदलाव, विशेष रूप से युवा आबादी की अधिकता, भारत को एक डेमोग्राफिक डिविडेंड प्रदान कर सकती है। यह आर्थिक विकास में मदद कर सकता है, बशर्ते कि इस कार्यबल को कौशल और रोजगार के अवसर दिए जाएं। हालांकि, वृद्ध जनसंख्या की बढ़ती संख्या सामाजिक सुरक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं पर दबाव डाल सकती है।

5. **भारत में शहरीकरण का क्या प्रभाव है?**
शहरीकरण से शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या का दबाव बढ़ा है, जिससे संसाधनों की कमी, अवसंरचनात्मक समस्याएँ, और रोजगार की चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं। वहीं, शहरीकरण विकास के नए अवसर भी प्रदान करता है, जैसे बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं, शिक्षा और जीवनस्तर में सुधार।

6. **भारत में जनसंख्या नियंत्रण के उपाय क्या हैं?**
भारत में जनसंख्या नियंत्रण के लिए विभिन्न योजनाएं जैसे **प्रधानमंत्री परिवार योजना**, परिवार नियोजन कार्यक्रम, और शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं के माध्यम से जनसंख्या वृद्धि दर को नियंत्रित करने की कोशिश की जा रही है। सरकार ने जनसंख्या जागरूकता और स्वास्थ्य सेवा को बढ़ावा दिया है।

7. **भारत की जनसंख्या में आयु समूहों का वितरण कैसे है?**
भारत में सबसे बड़ी आयु समूह 15-59 वर्ष के बीच है, जो कार्यबल का हिस्सा बनता है। इसके अलावा, 0-14 वर्ष के बच्चे और 60 वर्ष और उससे ऊपर के वृद्धों की संख्या बढ़ रही है। यह आयु वितरण सामाजिक सुरक्षा और रोजगार नीति को प्रभावित करता है।

8. **कुपोषण दर भारत में क्या है और इसे नियंत्रित करने के उपाय क्या हैं?**
भारत में कुपोषण की दर अधिक है, खासकर बच्चों और गरीब वर्गों में। इसे नियंत्रित करने के लिए **पोषण मिशन** और **राष्ट्रीय पोषण योजना** जैसी योजनाएं बनाई गई हैं, जो बच्चों और गर्भवती महिलाओं के लिए पोषण का स्तर सुधारने पर ध्यान केंद्रित करती हैं।

9. **भारत में प्रवासन के कारण क्या हैं?**
भारत में प्रवासन मुख्य रूप से रोजगार के अवसरों, बेहतर जीवन स्तर, और शहरीकरण की ओर आकर्षित करने के कारण होता है। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर प्रवासन बढ़ रहा है, जिससे शहरीकरण और संसाधनों पर दबाव बढ़ रहा है।

10. **भारत में वृद्धावस्था की समस्याएं क्या हैं?**
वृद्धावस्था से जुड़ी समस्याओं में स्वास्थ्य देखभाल की कमी, सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का अभाव, और वृद्ध जनसंख्या के लिए पर्याप्त आवास और पोषण की

समस्या शामिल है। इसके समाधान के लिए सरकार ने **वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण** के लिए विभिन्न योजनाएं शुरू की हैं।

10.10 संदर्भ सूची

- शर्मा, एल. (2020). भारत की जनांकिकीय विशेषताएँ और उनके प्रभाव. नई दिल्ली: विश्व प्रकाशन।
- सिंह, र. (2021). भारतीय अर्थव्यवस्था: विकास और संरचना. मुंबई: तात्या प्रकाशन।
- पांडे, क. (2019). भारत में जनसंख्या और सामाजिक विकास. कोलकाता: इंडियन बुक हाउस।
- यादव, पी. (2023). जनांकिकीय परिवर्तन और भारतीय समाज. जयपुर: राजेंद्र पब्लिशर्स।
- कुमार, जे. (2022). भारत की जनसंख्या नीति: एक विश्लेषण. नई दिल्ली: आर्य पब्लिकेशंस।

10.11 अभ्यास प्रश्न:

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. "जनसंख्या राष्ट्र के लिये सम्पदा भी है और दायित्व भी ।" विकासशील देशों के सन्दर्भ में उक्त कथन की व्याख्या कीजिये ।

2. "तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या विकासशील देशों के आर्थिक विकास में सबसे बड़ी बाधा है।" क्या आप इस मत से सहमत हैं ?

3. भारत में जनसंख्या सम्बन्धी प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिये। जनसंख्या के आकार का देश की अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

4. क्या आप इस बात से सहमत हैं कि भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या हमारे देश के आर्थिक विकास में एक बड़ी बाधा सिद्ध हुई है ? आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये ।

5. "भारत की सबसे कठिन समस्या तेजी से बढ़ती जनसंख्या है।" व्याख्या कीजिये ।

6. नगरीकरण से आप क्या समझते हैं? भारत में नगरीकरण की प्रवृत्ति की व्याख्या कीजिये।

7. नगरीकरण क्या है ? भारत में नगरीकरण के प्रभावों की विवेचना कीजिये ।

8. जनसंख्या की भागीदार (Participation) एवं आश्रितता से आप क्या समझते हैं ? भारत के सन्दर्भ में व्याख्या कीजिये ।

लघु - उत्तरीय प्रश्न :

1. जनसंख्या एवं आर्थिक विकास में संबंध बताईये ।
2. जनसंख्या के परिमाणात्मक पहलू का आर्थिक विकास से क्या संबंध है ?
3. जनसंख्या के गुणात्मक संबंध को बताईये ।
4. भारत में जनसंख्या आर्थिक विकास में क्यों बाधक है.
5. नगरीकरण के पीछे प्रमुख शक्तियाँ क्या हैं ?
6. निष्कासन प्रभाव से आप क्या समझते हैं ?
7. आकर्षण प्रभाव क्या है ? (ωv) H (v) 5 (iv) F (F()下(回)(包
8. जनसंख्या का संक्रान्ति सिद्धान्त ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही विकल्प को चुनिए :

(i) अदृश्य बेरोजगारी किस क्षेत्र में अधिक है ?

(अ) निजी क्षेत्र के उद्योगों में

(ब) व्यापार में

(स) खनिज क्षेत्र में

(द) कृषि में

(ii) जनसंख्या का संक्रान्ति सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया है ?

(अ) प्रो.सी.पी.ब्लैकर

(स) प्रो. हार्वे लिबेंस्टीन

(बी) प्रो. नसेर्क

(द) माल्थस

(iii) किसने कहा था कि अतिरिक्त जनसंख्या को पूँजी निर्माण में लगाया जाना चाहिये ?

(अ) प्रो.आर्थर लुइस

(ब) प्रो. नसेर्क

(स) प्रो.सी.पी.ब्लैकर

(द) एडम स्मिथ

(iv) भारत में 2001-11 के दशक में जनसंख्या कितने प्रतिशत बढ़ी है ?

(अ) लगभग 21.5 प्रतिशत

(ब) लगभग 17.6 प्रतिशत

(स) लगभग 23.9 प्रतिशत

(द) लगभग 15.5 प्रतिशत

(v) भारत में जन्म दर की क्या प्रवृत्ति रही है ?

(अ) सतत् कमी आ रही है

(ब) सतत् वृद्धि हो रही है

(स) क्रमशः स्थिर है

(द) उपर्युक्त कोई नहीं

(vi) जनसंख्या का घनत्व निम्नलिखित प्रदेशों में से कहां अधिक है ?

(अ) मध्यप्रदेश

(ब) उत्तर प्रदेश

(स) प. बंगाल

(द) बिहार

(vii) भारत में प्रत्याशित आयु कितनी है ?

(अ) लगभग 48 वर्ष

(ब) लगभग 52 वर्ष

(स) लगभग 63 वर्ष

(द) लगभग 65 वर्ष

(viii) भारत में प्रति 1000 पुरुषों पर महिलाओं की संख्या है -

(अ) लगभग 940

(ब) लगभग 942

(स) लगभग 933

(द) लगभग 948

(x) वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता का स्तर कितना है-

(अ) 84 करोड़

(स) 121 करोड़

(ब) 103 करोड़

(द) 131 करोड़

(ix) वर्ष 2011 की जनसंख्या के अनुसार भारत की जनसंख्या कितनी थी-

(अ) 65 प्रतिशत

(स) 77 प्रतिशत

(ब) 74 प्रतिशत

(द) 80 प्रतिशत

उत्तर- (i) द, (ii) अ, (iii) ब, (iv) ब, (v) अ, (vi) द, (vii) सु, (viii) अ, (ix) स, (x) ब

इकाई-11

जनसंख्या नीति एवं परिवार कल्याण कार्यक्रम

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 भारत में जनसंख्या-नीति

11.4 परिवार कल्याण कार्यक्रम

11.5 सार संक्षेप

11.6 मुख्य शब्द

11.7 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

11.8 जनसंख्या नीति एवं परिवार कल्याण कार्यक्रम: संदर्भ सूची

11.9 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

भारत में जनसंख्या का अत्यधिक वृद्धि दर और असंतुलित जनसंख्या वितरण समाज के विकास में कई प्रकार की समस्याएं उत्पन्न कर रहा है। इससे स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा, रोजगार, जल, भूमि, और अन्य संसाधनों पर अत्यधिक दबाव पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप, जीवन स्तर में गिरावट, कुपोषण, बेरोजगारी और असमानता जैसी समस्याएं उभरती हैं।

भारत सरकार ने इस समस्या से निपटने के लिए जनसंख्या नियंत्रण और परिवार कल्याण कार्यक्रमों की शुरुआत की। इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य जनसंख्या वृद्धि की दर को नियंत्रित करना और स्वस्थ परिवारों का निर्माण करना है। इसके अंतर्गत परिवार

नियोजन, गर्भनिरोधक उपायों का प्रचार-प्रसार, मातृत्व और शिशु स्वास्थ्य की देखभाल, महिला सशक्तिकरण, और किशोरों की स्वास्थ्य सेवाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

जनसंख्या नीति का मुख्य उद्देश्य जनसंख्या वृद्धि दर को स्थिर करना और उसे सामर्थ्य के अनुरूप रखना है ताकि प्रत्येक नागरिक को स्वस्थ, समृद्ध और संतुलित जीवन जीने का अवसर मिल सके। इसके अलावा, **परिवार कल्याण कार्यक्रम** का उद्देश्य परिवारों के स्वास्थ्य और कल्याण को बढ़ावा देना है, जिसमें मातृत्व और शिशु स्वास्थ्य, पौष्टिक आहार, शिक्षा और जीवन स्तर में सुधार को प्राथमिकता दी जाती है।

अर्थ एवं परिभाषा

आधुनिक विश्व माल्थस के जनसंख्या के खतरे की चेतावनी को प्रत्यक्ष देख रहा है। इसका कारण यह है कि विकासशील एवं अर्ध-विकसित देशों में जीवन निर्वाह के उपलब्ध साधनों की तुलना में जनसंख्या अधिक तेज गति से बढ़ रही है। यह एक गंभीर समस्या है जिसके कारण ये देश भयावह गरीबी एवं बेरोजगारी की स्थिति का सामना कर रहे हैं। यही कारण है कि इन देशों में जनसंख्या नीति का निर्धारण करके जनसंख्या वृद्धि को रोकने का प्रयास किया जा रहा है। संकुचित अर्थ में 'जनसंख्या नीति' को जनसंख्या नियंत्रण से लिया जाता है, किन्तु वर्तमान में 'जनसंख्या नीति' को जनसंख्या बढ़ाने या उसे कम करने दोनों ही अर्थों में लिया जाता है। यदि जनसंख्या आदर्श जनसंख्या स्तर से कम है तो उसे बढ़ाना एवं अधिक है तो उसे कम करना 'जनसंख्या नीति' के अन्तर्गत आता है। इस संदर्भ में जनसंख्या नीति की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं -

प्रो. पी. सी. जैन (P. C. Jain): "जनसंख्या-नीति केन्द्र अथवा राज्य सरकार द्वारा विचारपूर्वक बनायी गई और क्रियान्वित की गई नीति होती है, जिसका प्रमुख उद्देश्य प्रजनन क्षमता को घटाकर जनसंख्या की वृद्धि दर को कम करना है।"

एस. चन्द्रशेखर (S. Chandrashekhar): "जनसंख्या-नीति राष्ट्रीय सरकार के द्वारा देश की जनसंख्या के आकार तथा संगठन में किसी सरकारी कानून या निर्देश के द्वारा परिवर्तन लाने का जान-बूझकर किया गया प्रयत्न है।"

प्रो. तेराव (Prof. Terao): "जनसंख्या की समस्या के हल हेतु जो उपाय किये जाते हैं उन्हें ही जनसंख्या-नीति के अन्तर्गत लिया जा सकता है। इस नीति के अन्तर्गत मुख्यतः जनसंख्या वृद्धि अथवा अवरोध दोनों का ही समावेश किया जाता है।"s

जनसंख्या-नीति से सम्बन्धित उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि एक उपयुक्त जनसंख्या-नीति के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य होते हैं -

(i) देश की आवश्यकतानुसार जनसंख्या में वृद्धि अथवा कमी करना ।

(ii) प्राकृतिक संसाधनों को ध्यान में रखते हुए ऐसी जनसंख्या की नीति-रीति का निर्धारण जो कि आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करे ।

(iii) जनसंख्या में गुणात्मक सुधार एवं जनसंख्या वितरण में परिवर्तन सम्बन्धी नीति।

(iv) मृत्यु दर एवं बाल-मृत्यु दर में कमी करना आदि ।

जनसंख्या-नीति के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि सभी देशों के लिए एक समान नीति का निर्धारण सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि जहाँ विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि कोई समस्या नहीं है, वरन् वहाँ की सरकारों की चिन्ता का विषय जनसंख्या का स्थिर होना या घटना है। उदाहरणार्थ, जापान के स्वास्थ्य एवं कल्याण मंत्रालय की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि यदि समय रहते जनसंख्या में वृद्धि नहीं हुई तो जापान का आर्थिक संकट बढ़ जायेगा। इसी प्रकार सिंगापुर की सरकार ने वहाँ नये बजट में ज्यादा बच्चे पैदा करने वालों को आयकर में छूट देने का प्रावधान रखा है। यहाँ अधिक बच्चे पैदा करने के लिए कई प्रकार के नारे प्रचलित हैं, जैसे "कम से कम दो, तीन हों तो बेहतर, हो सके तो चार ।"

इसके विपरीत, भारत जैसे विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करना ही इस नीति का मुख्य उद्देश्य है। इसका प्रमुख कारण यह है कि विकासशील एवं अर्ध-विकसित देशों में विकसित चिकित्सा सुविधाओं के माध्यम से स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार हुआ और विभिन्न महामारियों तथा रोगों पर नियंत्रण कर लिया गया जिससे मृत्यु दर में तेजी से गिरावट हुई किन्तु जन्म दर बहुत लम्बे समय से लगभग स्थिर बनी हुई है। फलतः जन्म दर एवं मृत्यु दर के मध्य अन्तर निरन्तर बढ़ता गया जिसने जनसंख्या वृद्धि को प्रोत्साहित किया। विकासशील देशों के सन्दर्भ में प्रो. फेंक नोटेस्टीन का मत है कि "जनसंख्या-नीति का मुख्य उद्देश्य मृत्यु दर में कमी आने एवं जन्म दर के गिरने में समय-अन्तराल को कम करना है। जन्म दर को गिराने के लिए जनसंख्या में नई आशाओं एवं उमंगों को भरकर उन्हें सीमित परिवार रखने का प्रलोभन देना होता है। अतः इन देशों में जनसंख्या-नीति के सफल होने के लिए वांछित आर्थिक एवं सामाजिक परिवेश का निर्माण करना होता है।"

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
- विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।

11.3 भारत में जनसंख्या-नीति

भारत में विश्व की कुल जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत भाग निवास करता है जबकि भौगोलिक क्षेत्र केवल 2.4 प्रतिशत है। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में 84.4 करोड़ लोग निवास करते थे, जो बढ़कर सन् 2001 में 102.9 करोड़ तथा सन् 2011 में 121.02 करोड़ हो गये। भारत में प्रतिवर्ष 1.2 करोड़ की जनसंख्या बढ़ जाती है जो कि आस्ट्रेलिया की कुल जनसंख्या के बराबर है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत में जनाधिक्य की स्थिति है और इसे हल करने के लिए एक ऐसी जनसंख्या-नीति की आवश्यकता है जिसके द्वारा जन्म दर को नियंत्रित किया जा सके।

स्वतंत्रता से पूर्व तक जन्म दर को नियंत्रित करने से सम्बन्धित अनेक प्रारम्भिक प्रयास किये गये किन्तु इस दिशा में कोई स्पष्ट नीति निर्धारित नहीं की गई थी। स्वतंत्रता के बाद पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत जन्म दर को नियंत्रित करने से सम्बन्धित ठोस उपायों को क्रियान्वित किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में यह स्पष्ट कहा गया है कि "तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या जीवन-स्तर के सुधार के कार्यक्रम में सहायक होने के स्थान पर बाधक होती है।"(0615

जनसंख्या नीति एवं पंचवर्षीय योजनाएँ

भारत में जन्म नियंत्रित करने के कार्यक्रम का नाम प्रारम्भ में 'परिवार नियोजन' (Family Planning) रखा गया तथा बाद में इसे परिवर्तित करके 'परिवार कल्याण' (Family Welfare) कार्यक्रम रख दिया गया। यद्यपि प्रथम पंचवर्षीय योजना की समयावधि में परिवार नियोजन के महत्व को स्वीकार किया गया, किन्तु राष्ट्रीय स्तर पर परिवार नियोजन कार्यक्रम निर्धारण की दिशा में प्रयास द्वितीय योजना से प्रारम्भ हुए। द्वितीय योजना काल में परिवार नियोजन के लिए एक राष्ट्रीय कार्यक्रम तैयार किया गया जिसके अन्तर्गत निम्न बातों का समावेश किया गया-क

(i) परिवार नियोजन के सम्बन्ध में जनता को शिक्षित करना,

(ii) परिवार नियोजन सुविधाओं का विस्तार करना,

(iii) कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था करना और

(iv) जन्म दर को नियंत्रित करने से सम्बन्धित उपायों के लिए अनुसंधान करना ।

प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत विशेष ध्यान केवल प्रचार-प्रसार कार्यक्रमों एवं सम्बन्धित सुविधाओं को उपलब्ध कराने पर ही दिया गया, किन्तु चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में इस कार्यक्रम को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई। सन् 1972 में अनेक विरोधों के बाद गर्भपात अधिनियम पारित किया गया । तदुपरान्त पाँचवीं योजना के बाद की सभी योजनाओं में परिवार नियोजन कार्यक्रम को प्राथमिकता

के आधार पर क्रियान्वित किया गया। विभिन्न योजनाओं में परिवार कल्याण कार्यक्रम पर किया गया व्यय तालिका-1 में दर्शाया गया है।

तालिका-1

भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रम पर व्यय

एक योजना	आवंटित राशि (करोड़ रु.)	वास्तविक व्यय (करोड़ रु.)
1. प्रथम योजना	0.6	0.2
2. द्वितीय योजना	5	2.0 दिन
3. तृतीय योजना	27	25
4. वार्षिक योजनाएँ	83	70
5. चतुर्थ योजना	330	278
6. पंचम योजना	497	492
7. छठीं योजना	1078	1448
8. सातवीं योजना	3256	3121
9. आठवीं योजना	6500	6792
10. नौवीं योजना	5118	-
11. दसवीं योजना	9253	-

तालिका-1 के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि परिवार कल्याण कार्यक्रम को चतुर्थ पंचवर्षीय योजना से विशेष महत्व दिया गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कुल प्रजनन आयु समूह के कुल दम्पतियों में से सन् 1980 तक केवल 22 प्रतिशत को इस कार्यक्रम के अन्तर्गत लाया गया था जो बढ़कर 1885 में 32, 1990 में 40 एवं आठवीं योजना के अन्त में 45 करने का लक्ष्य रखा गया। आठवीं पंचवर्षीय योजना में परिवार कल्याण

कार्यक्रम पर कुल 6500 करोड़ रु. व्यय करने का प्रावधान रखा गया था तथा 6,792 करोड़ रु. व्यय होने का अनुमान है। आठवीं योजना में यह लक्ष्य रखा गया कि सन् 1996 तक 60 प्रतिशत प्रजनन वर्ग के दम्पतियों को इस कार्यक्रम के अन्तर्गत लाया जावे। नौंवी पंचवर्षीय योजना में केन्द्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम पर 5,118 करोड़ रुपए व्यय किये गये तथा दसवीं योजना अविध के लिए इस कार्यक्रम हेतु व्यय राशि बढ़ाकर 9,253 करोड़ रुपए कर दी गई।

1976 की जनसंख्या नीति

सन् 1976 में भारत सरकार ने देश में आपातकालीन स्थिति की घोषणा की। इस अवधि में भारतीय जनसंख्या-नीति में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन करके इसे प्रभावी बनाया गया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए 16 अप्रैल, 1976 को भारत सरकार ने राष्ट्रीय जनसंख्या-नीति की घोषणा की। इस नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं -

(1) विवाह की न्यूनतम आयु में वृद्धि (Minimum Age of Marriage Raised):- सन् 1976 में घोषित जनसंख्या-नीति में विवाह की न्यूनतम आयु में वृद्धि करने का निर्णय लिया गया, जिसके अनुसार लड़कियों के लिए विवाह की न्यूनतम आयु 15 वर्ष से बढ़ाकर 18 वर्ष और लड़कों के लिए 18 वर्ष से बढ़ाकर 21 वर्ष कर दी गई।

(2) नसबन्दी हेतु प्रोत्साहन (Promotion for Sterlisation):- नसबन्दी कराने हेतु विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहनों की घोषणा की गई, जैसे नकद सहायता, शासकीय सेवा से एक सप्ताह का अवकाश, सामूहिक लाभ, प्रेरित करने वालों को नकद इनाम आदि। नसबन्दी कराने वाले के दो या दो से अधिक बच्चे जीवित होने पर 150 रु, तीन बच्चे जीवित होने पर 100 रु, चार बच्चे या अधिक बच्चे जीवित होने पर 70 रु. का इनाम दिया गया। शासकीय सेवा में कार्यरत व्यक्तियों को नसबन्दी कराने पर दो अग्रिम वेतन-वृद्धि का लाभ भी दिया जाता है।

इसके साथ ही, जो सरकारी कर्मचारी छोटे परिवार की घारणा को स्वीकार नहीं करते उन्हें बड़े परिवार के प्रति हतोत्साहित भी किया जाता है, जैसे तीन बच्चों के बाद महिला

कर्मचारियों का प्रसव-अवकाश बन्द कर देना, चिकित्सा व्यय का भुगतान न करना आदि।

(3) राज्यों का प्रतिनिधित्व (Representation of States):- संसद में प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में अनेक राज्यों ने शिकायत की। इनके अनुसार केन्द्र एक ओर तो उन पर जोर डालता है कि जनसंख्या के नियंत्रण में राज्य सहयोग प्रदान करें, किन्तु जो राज्य इस दिशा में अच्छा काम करते हैं उनके यहाँ जनसंख्या घट जाती है जिससे संसद में उनका प्रतिनिधित्व भी घट जाता है। इसके विपरीत जो राज्य इस ओर ध्यान नहीं देते हैं वहाँ जनसंख्या में वृद्धि होती है तथा उनका प्रतिनिधित्व भी संसद में बढ़ जाता है। इस समस्या के निदान हेतु यह निर्णय लिया गया कि संसद के लिए तथा विधान सभाओं के लिए राज्यों का प्रतिनिधित्व सन् 2001 तक वही रहेगा जो कि सन् 1971 की जनसंख्या के आधार पर निर्धारित किया गया है।

(4) केन्द्रीय सहायता (Central Assistance):- राज्यों की योजनाओं को केन्द्रीय सहायता, करों तथा शुल्कों का हस्तान्तरण, अन्य सहायता एवं अनुदान आदि सभी प्रकरणों में, जिनमें कि धन का आवंटन (Allocation) जनसंख्या के आधार पर किया जाता है, सन् 2001 तक सन् 1971 की जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़ों के आधार पर किया जाएगा। इसके साथ ही राज्यों को केन्द्र द्वारा विभिन्न योजनाओं के लिए दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता में से 8 प्रतिशत राशि का आवंटन राज्यों में परिवार नियोजन की उपलब्धियों के आधार पर करना निर्धारित किया गया है।

(5) स्वैच्छिक प्रोत्साहन (Voluntary Motivation):- भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम को पूर्णतः स्वैच्छिक रखा गया है। इसके साथ ही इस कार्यक्रम को देश के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास का एक प्रमुख अंग माना गया है। यह कार्यक्रम केवल जन्म नियंत्रण तक ही सीमित नहीं है, वरन् शिक्षा, स्वास्थ्य, माताओं एवं शिशुओं की देखभाल, परिवार कल्याण, महिला जागृति, पोषक आहार आदि को भी इसमें सम्मिलित किया गया है।

(6) जनसंख्या शिक्षा पर विशेष महत्व (Emphasis on Population Education):- अशिक्षा एवं सन्तान आधिक्य में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः जनसंख्या की नवीन नीति में सामान्य शिक्षा, महिला शिक्षा एवं जनसंख्या शिक्षा के विस्तार पर विशेष ध्यान दिया गया है। प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर की पाठ्य पुस्तकों में जनसंख्या के दुष्परिणामों से सम्बन्धित पाठ जोड़े गये हैं।

(7) प्रचार-प्रसार नीति (Publicity Policy):- चूँकि भारत में परिवार नियोजन स्वैच्छिक है, अतः इसे जन-जन तक पहुँचाने के लिए प्रचार-प्रसार पर विशेष जोर दिया गया है। इसके अन्तर्गत टी.वी, रेडियो, समाचार-पत्र आदि में प्रचार किया जाता है। स्वास्थ्य केन्द्रों में कार्यरत परिवार कल्याण से सम्बन्धित कार्यकर्ता घर-घर जाकर इस कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार करते हैं। इसके साथ ही लोकगीत, लोकनृत्य, परम्परागत अन्य साधनों से भी इस कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

(8) स्वयंसेवी संगठनों को सहयोग (Assistance to Voluntary Organisations):- भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने एवं उसे जन-जन तक पहुँचाने में स्वयंसेवी संस्थाओं से सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नवीन जनसंख्या नीति के अन्तर्गत यह निर्धारित किया गया है कि परिवार नियोजन, जनस्वास्थ्य, पोषक आहार एवं युवा गतिविधियों आदि के क्षेत्र में कार्यरत स्वयंसेवी संस्थाओं को शासन प्रोत्साहित करेगा एवं वित्तीय सहायता प्रदान करके उनके कार्यों एवं गतिविधियों को बढ़ाने में योगदान देगा।

(9) निःशुल्क चिकित्सा (Free Medical Help):- यदि नसबन्दी के कारण किसी भी प्रकार की कोई पेचीदगी की स्थिति उत्पन्न होती है तो उसका इलाज निःशुल्क किसी भी शासकीय चिकित्सालय में किया जायेगा। यदि नसबन्दी कराने वाले दम्पत्ति की किसी सन्तान की मृत्यु हो जाती है तथा उसे सन्तान की इच्छा है, तब नस को पुनः निःशुल्क जोड़ने का भी प्रावधान रखा गया है । त्यांिis)

(10) समूह प्रोत्साहन (Group Motivation):- परिवार कल्याण को जन-आन्दोलन बनाने के उद्देश्य से व्यक्तिगत प्रोत्साहन के अतिरिक्त समूह प्रोत्साहन को भी लागू किया गया है। इसके लिए ग्राम पंचायतों को विशेष अनुदान एवं सहायता प्रदान करने का प्रस्ताव है।

1976 की जनसंख्या नीति के परिणाम

अप्रैल, 1976 में घोषित राष्ट्रीय जनसंख्या-नीति की घोषणा के पश्चात् सरकार ने आपातकालीन परिस्थितियों का लाभ उठाया और नसबन्दी कराने के लिए जोर-जबरदस्ती की गयी। इस तथ्य की पुष्टि इन आँकड़ों से होती है कि जहाँ वर्ष 1976-77 में नसबन्दी का लक्ष्य केवल 43 लाख था, वास्तव में 82 लाख लोगों की नसबन्दियाँ की गयीं। इस अवधि में सामान्य जनता ने यह अनुभव किया कि प्रशासनिक शक्तियों का दुरुपयोग जबरदस्ती नसबन्दी कराने में किया गया। दूसरी ओर प्रशासनिक तंत्र को लक्ष्यों को पूरा करना था, अतः उन्होंने इस उद्देश्य से अपनी शक्तियों का खुलकर दुरुपयोग किया। आपातकालीन स्थिति में क्रियान्वित परिवार नियोजन कार्यक्रम ने जहाँ आशातीत सफलता अर्जित की वहीं अनेक दुष्परिणाम भी सामने आए, जो कि निम्न प्रकार हैं -

(i) आपातकाल में यह कार्यक्रम लक्ष्य-प्रेरित रहा, अर्थात् निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अनेक ऐसे व्यक्तियों की नसबन्दी कर दी गई जो कि पुनरुत्पादन आयु वर्ग के नहीं थे।

(ii) नसबन्दी में जो सावधानियाँ ली जानी चाहिए थीं वे नहीं ली गयीं जिससे शल्यक्रिया के पश्चात् लोगों को अनेक दिक्कतों का सामना करना पड़ा।

(iii) आपातकाल में प्रशासनिक अधिकारों का बिना सोचे-समझे अन्धाधुन्ध ढंग से प्रयोग किया गया जिससे लोगों को नसबन्दी के लिए बलात् प्रेरित किया जा सके ।

(iv) इतने अधिक विशाल स्तर पर परिवार नियोजन कार्यक्रम को संचालित करने के लिए कुशल तथा प्रशिक्षित कर्मचारी नहीं थे। फलतः सामान्य स्वास्थ्य सेवाओं से

सम्बन्धित व्यक्तियों को इस दिशा में आवश्यकता से अधिक कार्य करना पड़ा जिससे वे सामान्य स्वास्थ्य सेवाओं की ओर आवश्यक ध्यान नहीं दे सके ।

आपातकाल के पश्चात् जनसंख्या-नीति

अथवा

1977 की संशोधित जनसंख्या-नीति

आपातकाल के दौरान की गई जोर-जबरदस्ती के कारण जन-साधारण पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। फलतः 1977 के आम चुनावों में परिवार नियोजन कार्यक्रम से जनता चिढ़ गई और उसने इन्दिरा गाँधी को सत्ता से हटाकर जनता पार्टी को विजयी बनाया। जनता पार्टी ने परिवार नियोजन कार्यक्रम का नाम परिवर्तित कर 'परिवार कल्याण कार्यक्रम' कर दिया। इसके साथ ही सन् 1976 की जनसंख्या-नीति में परिवर्तन कर 1977 की नीति घोषित की गई। इस नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नानुसार हैं -

(i) परिवार कल्याण कार्यक्रम में माता तथा शिशु के स्वास्थ्य को प्राथमिकता प्रदान की गयी,

(ii) परिवार नियोजन कार्यक्रम का स्वरूप पूर्णतः स्वैच्छिक रखा गया,

(iii) परिवार कल्याण कार्यक्रम को अन्य कार्यक्रमों, जैसे महिला शिक्षा, पोषक आहार, स्वास्थ्य आदि से सम्बद्ध कर दिया गया,

(iv) परिवार नियोजन की विधि के सम्बन्ध में निर्णय लेना दम्पत्ति की स्वेच्छा पर छोड़ा गया।

(v) छठीं योजना के अन्त तक जन्म दर 30 प्रति हजार से घटाकर 25 प्रति हजार का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

(vi) नसबन्दी की सेवाएँ सुलभ तथा निःशुल्क उपलब्ध कराना और

(vii) सभी सामाजिक संस्थाओं की सहायता ली जायेगी जिससे कि परिवार नियोजन कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाया जा सके। पानी

संक्षेप में जनता शासन के सत्तारूढ़ होने के पश्चात् परिवार नियोजन कार्यक्रम को पूर्णतः स्वैच्छिक कर दिया गया जिससे परिवार नियोजन के विभिन्न कार्यक्रमों जैसे नसबन्दी, लूप, गर्भ निरोधक गोलियाँ आदि के लक्ष्य असफल हो गये ।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति-2000

15 फरवरी, 2000 को केन्द्र सरकार द्वारा राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की गई। इस नीति में परिवार कल्याण कार्यक्रम के अल्पकालीन, मध्यावधि एवं दीर्घकालीन उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया। इस कार्यक्रम के अल्पकालीन उद्देश्यों में गर्भ निरोध की आवश्यकताओं को पूरा करना, स्वास्थ्य संबंधी आधारभूत ढाँचे और स्वास्थ्य कर्मचारयों की व्यवस्था करना तथा पुनरुत्पादनीय शिशु स्वास्थ्य की देखभाल करने के उद्देश्य से एकीकृत सेवा प्रदान करना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जनसंख्या नीति- 2000 का मध्यावधि उद्देश्य यह है कि सन् 2010 तक प्रजनन क्षमता (Fertility Rate) को प्रतिस्थापन स्तर तक लाना। इस नीति का दीर्घकालीन उद्देश्य सन् 2045 तक स्थिर जनसंख्या की स्थिति को प्राप्त करना। संक्षेप में सन् 2000 की नीति देश की आर्थिक समृद्धि, सामाजिक विकास और पर्यावरण की आवश्यकता के अनुरूप बनायी गयी। सन् 2000 की जनसंख्या नीति के प्रमुख लक्ष्य निम्न प्रकार हैं :-

1. मातृत्व मृत्यु दर को प्रति एक लाख जीवित जन्मों पर 30 तक घटाना ।

2. शिशु मृत्यु दर को प्रति एक हजार जीवित जन्मों पर 30 से कम करना।

3. टीके द्वारा रोकी जा सकने वाली बीमारियों के विरुद्ध सभी बच्चों के प्रतिरक्षण (Immunisation) की व्यवस्था करना।

4.प्रजनन नियंत्रण एवं गर्भ निरोध के लिये विभिन्न साधनों की जानकारी तथा उनसे संबंधित सेवाओं को सभी व्यक्तियों की पहुँच तक उपलब्ध कराना ।

5.लड़कियों का विवाह 18 वर्ष की आयु से पूर्व न करने के लिये लोगों को प्रोत्साहित करना।

6. संक्रामक रोगों की रोकथाम करना ।

7. छोटे परिवारों को प्रोत्साहित करना, जिससे कुल प्रजनन क्षमता दर प्रति स्थापन स्तर तक आ सके ।

8. सामाजिक क्षेत्र के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन को इस ढंग से सम्पन्न किया जाये कि वे परिवार कल्याण को जन-केन्द्रित कार्यक्रम का रूप देने में सहायता पहुँचाएँ ।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति-2000 के अनुसरण में राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग की स्थापना की गई है। प्रधानमन्त्री इस आयोग के अध्यक्ष हैं और सभी राज्यों एवं संघ राज्य क्षेत्रों के मुख्यमन्त्री तथा संबंधित केन्द्रीय मन्त्रालयों एवं विभागों के प्रभारी केन्द्रीय मन्त्री, प्रतिष्ठित जनसांख्यिकीविद्, जनस्वास्थ्य व्यावसायिक एवं गैर-सरकारी संगठन इस आयोग के सदस्य हैं। इस आयोग की पहली बैठक 22 जुलाई, 2000 को हुई, जिसमें 100 करोड़ रुपये की प्रारंभिक धनराशि से एक राष्ट्रीय जनसंख्या स्थायित्व निधि की स्थापना करने की घोषणा की गई।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति-2000 के अनुसरण करते हुये ही राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग की ही तरह राज्य स्तरीय जनसंख्या आयोग (जिसके अध्यक्ष उस राज्य के मुख्यमन्त्री है) का भी गठन कर लिया गया है, जिसका उद्देश्य भी नीतियों का कार्यान्वयन सुनिश्चित करना है।

जनसंख्या नीति का मूल्यांकन एवं निष्कर्ष

यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही देश में जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर परिवार कल्याण कार्यक्रम का क्रियान्वयन किया जा रहा है, तथापि अभी तक विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। उपलब्ध आँकड़ों से यह सिद्ध होता है कि अभी तक केवल कुल पुनरुत्पादन आयु वर्ग के लगभग 50 प्रतिशत दम्पत्तियों को ही इस

कार्यक्रम के अन्तर्गत लाया जा सका है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अनेक क्षेत्रों में प्रभावी क्रियान्वयन के अभाव में समुचित सफलता नहीं मिली है।

की जनसंख्या नीति को अधिक प्रभावी बनाने, उसे ठीक ढंग से लागू करना अत्यावश्यक है। यहाँ यह भी राजस्थान जैसे राज्यों में कम उम्र के लड़के-लड़कियों की शादी हो रही है। इससे स्पष्ट है कि जनसंख्या नीति का कार्यान्वयन ठीक ढंग से नहीं हो रहा है। अतः जनसंख्या की समस्या के समाधान हेतु निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं:कीकडील

(1) परिवार नियोजन कार्यक्रम को प्रभावी बनाना भारत में जनसंख्या विस्फोट का एकमात्र उपचार प्रजनन क्षमता में कमी लाना है। यह कार्य परिवार नियोजन कार्यक्रम को लोकप्रिय एवं प्रभावी बनाने के द्वारा ही सम्भव है। इसके लिये बहु-आयामी प्रयासों की आवश्यकता है। इस दिशा में निम्न प्रयास आवश्यक हैं:- श्री समड़ाग्न नि शसक (गोफकाइए कि

(i) प्रचार-प्रसार : मीडिया के विभिन्न साधनों, जैसे- टेलीविजन, रेड़ियो, फिल्में, मेले आदि के द्वारा इस कार्यक्रम का व्यापक प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए। व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रयासों से जन-साधारण को यह समझाया जाना चाहिए कि परिवार कल्याण कार्यक्रम उनके व्यक्तिगत हित में हैं। जाड हिसार

(ii) चल-चिकित्सालय : ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा एवं परिवार कल्याण सुविधाओं के विस्तार के लिये बड़े पैमाने पर चल-चिकित्सालयों की व्यवस्था की जानी चाहिए। इससे ग्रामीणों को छोटे परिवारों के महत्व को समझाना सरल होगा और उनके स्वास्थ्य में भी सुधार होगा।

(iii) गर्भ निरोध के सस्ते साधन : देश में गर्भ निरोध के सस्ते एवं प्रभावी साधनों का मुफ्त में वितरण किया जाना चाहिये। इसके साथ ही बन्ध्यकरण के पश्चात् उचित देखभाल की समुचित व्यवस्था भी होनी चाहिए ।

(iv) प्रशिक्षित डॉक्टर एवं कर्मचारी : बन्ध्यकरण के लिये तैयार करना एक मनोवैज्ञानिक पहलू है। अतः यह आवश्यक है कि डॉक्टर एवं अन्य कर्मचारियों को प्रशिक्षित होना चाहिए।

(v) ऐच्छिक कार्यक्रम : किसी भी स्थिति में परिवार कल्याण के लिये दबाव नहीं डाला जाना चाहिए। इसे पूर्ण ऐच्छिक रखा जाना चाहिए। इस कार्यक्रम की ओर आकर्षित करने के लिये परिवार नियोजन अपनाने वालों को समुचित ओर्थिक व अन्य सहायता दी जानी चाहिए। - (01)

(vi) प्रोत्साहन देना और निरुत्साहित करना : जन-साधारण को परिवार नियोजन अपनाने के लिये अनेक प्रकार के प्रोत्साहन दिये जाने चाहिए। चीन ने परिवारों को सीमित रखने एवं एक बच्चे की धारणा को अपनाने में सफलता पाई है। भारत को भी चीन से प्रेरणा लेकर परिवार नियोजन कार्यक्रम प्रभावी ढंग से क्रियान्वित करना चाहिए। चीन सरकार ने अनेक प्रकार के प्रोत्साहनों, जैसे वेतन वृद्धि, मकानों में प्राथमिकता, स्कूलों में दाखिला, स्वास्थ्य सुविधा, नौकरियों में प्राथमिकता के द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। निरुत्साहित करने की दिशा में जो परिवार एक बच्चे के आदर्श को मानने से इंकार करता है, उस पर करारोपण किया जाना चाहिए।

(2) शैक्षणिक सुविधाओं में विस्तार : जनसंख्या को नियंत्रण करने में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का व्यापक विस्तार होना चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा एवं महिला शिक्षा का विस्तार इस दिशा में विशेष महत्वपूर्ण है। प्रौढ़ शिक्षा के विस्तार में स्वयंसेवी संस्थाओं का योगदान लिया जाना चाहिए।

(3) नियमों एवं कानूनों का कठोरता से पालन :- प्रभावी क्रियान्वयन के लिये परिवार नियोजन से सम्बन्धित नियमों एवं कानूनों का कठोरता से पालन आवश्यक है। वर्तमान में लड़के एवं लड़कियों की विवाह योग्य आयु क्रमशः 21 एवं 18 वर्ष है, किन्तु इस कानून का कठोरता से पालन नहीं हो रहा है। अतः प्रयास ऐसा होना चाहिए कि जहाँ

कानून का उल्लंघन करने वाले माता-पिता को उचित सजा दी जावे वहीं इसका प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए जिससे जनमत इसके पक्ष में बन सके ।

(4) गर्भपात की अधिक सुविधाएँ:- यद्यपि भारत में 1 अप्रैल, 1972 से "Medical Termination of Pregnancy Act" लागू किया गया जिसके द्वारा गर्भ को पंजीकृत डॉक्टर से गिरवाया जा सकता है, तथापि पर्याप्त सुविधाएँ न होने से इसका पर्याप्त उपयोग नहीं होता। अतः गर्भपात की सुविधाओं का ग्रामीण क्षेत्रों में विस्तार किया जाना चाहिये ।

(5) सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों का विस्तार :- माता-पिता सन्तान को इसलिये चाहते हैं कि वृद्धावस्था में वे, विशेषकर लड़के, उनका सहारा बन सकें। अतः सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम में विस्तार किया जाना चाहिए जिससे कि लोग वृद्धावस्था में सहारा पाने की दृष्टि से सन्तानोत्पत्ति की प्रवृत्ति को हतोत्साहित किया जा सके और लोग निश्चिन्तता से परिवार कल्याण कार्यक्रम को अपना सकें।

(6) विकास कार्यक्रमों एवं परिवार कल्याण योजनाओं में समन्वय :- देश में अनेक विकास एवं रोजगार से सम्बन्धित कार्यक्रमों का क्रियान्वयन हो रहा है। इन कार्यक्रमों को परिवार नियोजन से जोड़ दिया जाना चाहिए और नियम बना दिया जाना चाहिए कि उन परिवारों एवं क्षेत्रों को अधिक आर्थिक सहायता मिलेगी जो परिवार कल्याण कार्यक्रम में सहयोग देंगे। इससे परिवार नियोजन कार्यक्रम को लोकप्रियता प्राप्त होगी।

(7) करारोपण :- कुछ विद्वानों का मत है कि सरकार को उन परिवारों पर जो इस कार्यक्रम को अपना नहीं रहे हैं पर विशेष कर लगाना चाहिए। ऐसा होने से परिवारों को सीमित रखने की भावना जागृत होगी, किन्तु इससे गरीब वर्ग पर अधिक भार पड़ेगा। इसी कारण कुछ विद्वान इसको अच्छा नहीं मानते हैं। कि

(8) गुणात्मक पक्ष :- सरकार को चाहिए कि शारीरिक एवं मानसिक रूप से पीड़ित, क्षयरोगी, भिखारी एवं अन्य असाध्य रोगों (एड्स) से पीड़ित लोगों का अनिवार्य रूप से

ऑपरेशन कर दें ताकि वे बच्चे पैदा न कर सकें। इससे जहाँ एक ओर तो जनसंख्या में कमी होगी, वहीं दूसरी ओर जनसंख्या के गुणात्मक पक्ष में सुधार होगा।

(9) यौन शिक्षा :- युवक-युवतियों को शैक्षणिक पाठ्यक्रम एवं अन्य तरीकों से यौन शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे कि वे सुखी दाम्पत्य जीवन जी सकें तथा स्वस्थ सन्तान प्राप्त कर सकें। यौन शिक्षा से एड्स जैसे रोग अन्य यौन विकारों को भी रोका जा सकता है।

(10) जन-सहयोग :- इस कार्यक्रम की सफलता के लिए जन-सहयोग आवश्यक है। स्वयंसेवी संस्थाओं, चुने गए जन-नेताओं, धार्मिक एवं सांस्कृतिक संगठनों, पंचायती राज संस्थाओं आदि का सहयोग इस कार्यक्रम की सफलता के लिये आवश्यक है। ग्राम पंचायतों, जनपद एवं जिला पंचायतों को परिवार नियोजन के लक्ष्य निर्धारित करने एवं उन्हें प्राप्त करने का दायित्व सौंपा जाना चाहिए, किन्तु यह तभी सम्भव है जब पंचायत के प्रतिनिधियों को समुचित प्रशिक्षण दिया जावे ।

(11) अन्यं :- (a) विवाह का अनिवार्य रूप से पंजीकरण किया जाना चाहिए। इससे अल्प आयु में होने वाले विवाहों को नियंत्रित करना सरल होगा। (b) महिलाओं को शिक्षित करने, उन्हें रोजगार प्रदान करने और उनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति को ऊँचा उठाने के प्रयास किए जाने चाहिए।

संक्षेप में, परिवार नियोजन की समस्या के समाधान अथवा भारत की जनसंख्या नीति को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए उपर्युक्त सुझावों को गम्भीरतापूर्वक लागू किया जाना चाहिए। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि इस कार्य को राजनीतिक दलबन्दी से दूर रखकर इसे राष्ट्रीय दृष्टि से सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए क्योंकि यह एक ऐसा राष्ट्रीय महत्व का कार्य है जिसे सभी राजनीतिक दलों का एवं केन्द्रीय व राज्य सरकारों का पूर्ण सहयोग व समर्थन प्राप्त होना चाहिए।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि किसी भी देश में जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम के परिणाम शीघ्र उपलब्ध नहीं हो सकते, भले ही उसके लिए किसी भी प्रकार के सामाजिक-राजनैतिक दबाव क्यों न हों। अतः इस दिशा में निरन्तर प्रयास करना

आवश्यक है। जनसंख्या नियंत्रण तथा परिवार नियोजन समिति ने ठीक ही कहा है कि "परिवार नियोजन एक चिकित्सकीय समस्या नहीं है, यह एक सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्या है।"

11.4 परिवार कल्याण कार्यक्रम

भारत जैसे विकासशील देश की बढ़ती हुई जनसंख्या उस देश के आर्थिक विकास की प्रगति को धीमा कर देती है और बढ़ती हुई जनसंख्या इन देशों में एक अभिशाप मानी जाती है। इसका कारण यह है कि जिस गति से जनसंख्या में वृद्धि होती है, उस गति से उत्पादन में वृद्धि नहीं होती है। परिणाम यह होता है कि प्रति व्यक्ति औसत आय कम हो जाती है, जनता का जीवन स्तर और निम्न हो जाता है तथा उसकी कार्यकुशलता में कमी आ जाती है। चूँकि प्रति व्यक्ति आय कम हो जाती है, इसलिये बचत, विनियोग की मात्रा में भी कमी हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप बेराजगारी बढ़ने लगती है। यही कारण है कि भारत के सन्दर्भ में किसी ने ठीक ही कहा है कि "यदि जनसंख्या को बढ़ने से न रोका गया तो हमारी प्रगति रेत पर लिखने के समान होगी, जिसको जनसंख्या की लहरें मिटा देंगी।"।

यही कारण है कि भारत में सर्वप्रथम 1930 में मद्रास राज्य में एक परिवार नियोजन क्लीनिक की स्थापना की गई थी। 1938 में पं. जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय योजना समिति बनाई गयी थी। इस समिति ने भी परिवार नियोजन की आवश्यकता पर जोर दिया था। बाद में 1943 में स्वास्थ्य सर्वेक्षण विकास समिति ने सरकारी अस्पतालों में जन्म निरोध क्लीनिकों की स्थापना का सुझाव दिया था। परिवार नियोजन की वास्तविक शुरुआत तो प्रथम पंचवर्षीय योजना के काल में हुई, जिसमें सरकार ने 65 लाख रुपये व्यय करने का प्रवधान किया था, जो बढ़ते-बढ़ते नवीं योजना में 15,120 करोड़ रुपये तथा दसवीं पंचवर्षीय योजना में 26,126 करोड़ रुपए हो गया है।

यहाँ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि सन् 1961 की जनगणना से प्राप्त आँकड़ों के बाद तृतीय पंचवर्षीय योजना से ही इस कार्यक्रम को विशेष महत्व देकर एक राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में सम्पूर्ण देश में क्रियान्वित किया गया। तदानुसार इस कार्यक्रम पर तृतीय योजना में 25 करोड़ रुपये एवं चतुर्थ योजना में 278 करोड़ रुपये व्यय किये गये। चतुर्थ योजना में यह लक्ष्य निर्धारित किया गया कि वर्ष 1980-81 तक जन्म दर को 39 प्रति हजार से घटाकर 25 प्रति हजार के स्तर पर ले आया जाये। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये इस योजना में (i) समाज द्वारा छोटे परिवार को मान्यता दिलाना, (ii) परिवार नियोजन की विधियों के संबंध में लोगों की जानकारी बढ़ाना और (iii) इस कार्य के लिये आवश्यक सेवाओं और सामग्री को उपलब्ध कराने पर जोर दिया गया।

पाँचवीं योजना में इस कार्यक्रम पर 492 करोड़ रुपये एवं छठवीं योजना में 1448 करोड़ रुपये व्यय किये गये। इस अवधि में 1976 की एवं 1977 की जनसंख्या नीति घोषित की गई, किन्तु इस दिशा में कोई विशेष प्रगति परिलक्षित नहीं हुई। सातवीं और आठवीं योजनाओं में इस कार्यक्रम को वृहत स्वरूप प्रदान करने के उद्देश्य से 3121 करोड़ रुपये एवं 6,792 करोड़ रुपये व्यय किये गये। केंद्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम पर नौंवी पंचवर्षीय योजना में 5,118 रुपए व्यय किये गये। दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) में इस कार्यक्रम हेतु व्यय राशि बढ़ाकर 9,253 करोड़ रुपए कर दी गई। इस कार्यक्रम का मूल्यांकन इस आधार पर किया जा सकता है कि जन्म दर, जो कि 1951 में 40 प्रति हजार थी, घटकर सन् 2009 में 22.5 प्रति हजार हो गयी। यहाँ यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिये कि इस कार्यक्रम ने स्वास्थ्य के प्रति भी जन-जाग्रति पैदा की, जिससे मृत्यु दर जो कि सन् 1951 में 27.4 प्रति हजार थी, घटकर सन् 2009 में 7.3 प्रति हजार हो गयी। भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रम को राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप देने के लिये निम्नलिखित उपाय किये गये हैं:-

(1) व्यापक प्रचार (Adequate Propaganda)- परिवार नियोजन कार्यक्रम को जन कार्यक्रम बनाने के लिये सरकार अनेक प्रचार माध्यमों, जैसे-अखबार, रेडियो,

टेलीविजन, फिल्में, प्रदर्शनियाँ आदि से जनता में इस कार्यक्रम का प्रचार करती है ताकि दम्पतियों में इस कार्यक्रम को अपनाये जाने की प्रेरणा उत्पन्न हो सके।

(2) बन्ध्याकरण का विस्तार (Extention of Sterilization) - जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिये सरकार ने स्त्री-पुरुष दोनों के बन्ध्याकरण को प्रोत्साहित किया है। प्रशिक्षित चिकित्सकों को इस कार्यक्रम में लगाकर जनता को इस सुविधा का लाभ देने के लिये इसे प्रभावी बनाने का प्रयास किया गया है।

(3) निरोधक साधनों की निःशुल्क पूर्ति (Free Supply of Contraceptives)- इस कार्यक्रम को जनप्रिय बनाने के लिये सरकार निरोधक साधनों की शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में निःशुल्क पूर्ति बनाये रखने का प्रयत्न करती है।

(4) आर्थिक सहायता (Financial Incentive)- इस कार्यक्रम को अपनाने के लिये सरकार जनता को प्रोत्साहन के रूप में आर्थिक सहायता भी प्रदान करती है। यह उल्लेखनीय है कि भारत में सरकार ने परिवार नियोजन आन्दोलन में काफी रुचि दिखलायी है और इसका सामाजिक अथवा धार्मिक संस्थाओं द्वारा कोई विरोध नहीं हुआ है। विश्व में अन्यत्र यह एक व्यक्तिगत कार्य माना गया है, लेकिन भारत में इसे सामूहिक जन-आन्दोलन के रूप में चलाया गया है। देश में परिवार के आकार को नियंत्रित करने के अनेक साधनों का प्रयोग किया जाता है। संयम, देर से शादी, कृत्रिम साधनों आदि सभी को व्यक्तिगत पसन्द के अनुसार अपनाया जा सकता है। कृत्रिम साधनों में रासायनिक (chemical), यांत्रिक (mechanical) एवं जैविक (biological) सभी विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। स्त्रियों के लिये सन्तानोत्पत्ति बन्द करने का ऑपरेशन एवं पुरुषों के लिये नसबन्दी का ऑपरेशन भी परिवार नियोजन के प्रभावपूर्ण उपाय हैं। व्यक्तिगत रुचि, उपलब्ध साधन व परिस्थिति के आधार पर परिवार नियोजन की पद्धति का चुनाव किया जाता है। इस सम्बन्ध में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना ज्यादा उपयोगी होता है। सन् 1965 से स्त्रियों के लिये "लूप" अथवा IUCD(Intra Uterine Contraceptive Device) का प्रयोग निकाला गया है। पिछले वर्षों में भारत में गर्भपात

(Abortion) को भी कानूनी मान्यता दे दी गई है। पहले इस संबंध में भी काफी विवाद रहा, लेकिन कुछ परिस्थितियों में अनचाही सन्तान को रोकना और इसके लिये समय से पूर्व ही गर्भ की समाप्ति (Termination of Pregnancy) को ज्यादा आवश्यक समझा गया है। इस विधि से जन्म दर को नियंत्रित करने में काफी सफलता मिली है। भारत के लिये निरोध के रूप में सस्ते, सुगम और सुरक्षित साधन की आवश्यकता है, जिसका प्रयोग विशाल जन-समुदाय द्वारा किया जा सके और जन्म-दर कम की जा सके। हाल में दूरबीन से नसबन्दी का कार्यक्रम स्त्रियों में लोकप्रिय हुआ है। खाने की गोलियों (माला-डी गोलियों) का प्रयोग भी किया जाने लगा है। भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रम की सफलता को संक्षेप में निम्न प्रकार से जाना जा सकता है :-

(i) जनता के मध्य परिवार नियोजन कार्यक्रम अधिक लोकप्रिय हुआ है। आज दम्पत्ति "छोटा परिवार

(ii) सुखी परिवार" के सिद्धान्त में विश्वास करते हुये गर्भ निरोधक उपायों के प्रयोग के प्रति जागरुक हो गये हैं। भारत में जन्म दर में निरन्तर कमी हुई है तथा वर्तमान में यह घटकर 23.5 प्रति हजार रह गयी है।

(iii) भारत के 46 प्रतिशत दम्पति परिवार नियोजन एवं कल्याण कार्यक्रम की परिधि में आ चुके हैं।

(iv) अवांछनीय सन्तानोत्पत्ति की सामयिक रोकथाम के लिये अप्रैल, 1972 से गर्भपात को कानूनी मान्यता प्रदान की गई है। गर्भपात की वैधानिकता ने जन्म दर की कमी में पर्याप्त योगदान दिया है।

(v) गर्भ-निरोधक उपायों का प्रयोग स्त्रियों एवं पुरुषों में बढ़ता जा रहा है और अब इनके प्रयोग में पहले जैसा संकोच देखने को नहीं मिलता। इस सामाजिक परिवर्तन ने जन्म दर को निश्चित रूप से कम किया है।

(vi) भारत में जनसंख्या संबंधी अनुसंधान को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है। पर प्रशिकों के

परिवार कल्याण कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिये सुझाव

भारत के तीव्र विकास एवं आर्थिक सम्पन्नता के लिये यह आवश्यक है कि जन्म दर को कम करके जनसंख्या वृद्धि की दर को कम किया जावे, किन्तु यह तभी सम्भव है, जबकि देश में क्रियान्वयन किये जा रहे परिवार कल्याण कार्यक्रम को प्रभावी ढंग से लागू किया जावे। इस दिशा में कुछ प्रमुख सुझाव निम्न प्रकार है :-

1. व्यापक एवं प्रभावी प्रचार-प्रसार:- भारत जैसे विकासशील एवं कृषि प्रधान देश में प्रचार-प्रसार के प्रभावी साधनों का उपयोग इस कार्यक्रम की सफलता के लिये अत्यावश्यक है। सरकार को विभिन्न साधनों, जैसे-रेडियो, टेलीविजन, अखबार, प्रदर्शनी, फिल्म प्रदर्शन आदि से खूब प्रचार करना चाहिये, जिससे कि जनमत परिवार कल्याण के हित में बन सके। ग्रामीण क्षेत्रों में यह कार्य ग्राम पंचायतों व सामुदायिक विकास कार्यालयों पर डाला जाना चाहिये। इससे जनता के अन्धविश्वास व रूढ़िवादिता में कमी होगी, जिससे परिवार नियोजन को प्रभावी ढंग से अपनाने में सहायता मिलेगी ।

2. स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार :- परिवार कल्याण कार्यक्रम का उद्देश्य केवल नसबन्दी या बन्ध्यकरण नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार के द्वारा जन्म दर को नियंत्रित किया जावे । ग्रामीण क्षेत्रों में यदि स्वास्थ्य सुविधाओं का समुचित विस्तार किया जाता है तो परिवार नियोजन कार्यक्रम स्वतः सफलता से क्रियन्वित किया जा सकता है। अतः यह आवश्यक है कि परिवार नियोजन का सम्बन्ध बच्चों के स्वास्थ्य व शिक्षा एवं महिलाओं के लिये उचित पोषण एवं स्वास्थ्य संबंधी देख-रेख से जोड़ा जाना चाहिये ।

3. प्रशिक्षित स्वास्थ्य कर्मचारी:- कार्यक्रम की सफलता प्रभावी क्रियान्वयन से होती है। इसे सरकारी कार्यक्रम के स्थान पर जन-जन का कार्यक्रम बनाया जाना चाहिये, किन्तु यह तभी संभव होगा, जब इस कार्यक्रम से जुड़े सरकारी एवं गैर-सरकारी कर्मचारी पूर्ण निष्ठा एवं सेवा भावना से कार्य करें। कर्मचारियों को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना कर

इस कार्यक्रम को क्रियान्वित करना चाहिये। इसके लिये इस कार्यक्रम से जुड़े हुये कर्मचारियो को प्रभावी ढंग से प्रशिक्षित किया जाना चाहिये। अध्य

4. बन्ध्याकरण के बाद देखभाल :- जिन स्त्रियों व पुरुषों का बन्ध्याकरण किया जाये, उसकी बाद में उचित देखभाल करने की उचित व्यवस्था की जानी चाहिये, जिससे कि उनको मनोवैज्ञानिक शान्ति मिले और यदि उनको बाद में किसी प्रकार की कोई परेशानी हो तो उसका उचित उपचार किया जा सके। ऐसा होने से परिवार नियोजन के प्रति जो अफवाहें फैलती हैं, उनमें कमी होगी और परिवार नियोजन कार्यक्रम को बढ़ावा मिलेगा। यर गिर

5. चल स्वास्थ्य इकाइयाँ:- पिछले कुछ वर्षों से देश के ग्रामीण क्षेत्रों में चल स्वास्थ्य इकाइयाँ प्रारम्भ की गई हैं। यह प्रयोग सफल रहा है और इसमें और अधिक विस्तार की आवश्यकता है। इस विषय में यह उल्लेखनीय है कि चल इकाइयों की नियमितता एवं दवाइयों की समुचित व्यवस्था की आवश्यकता है। अतः इस सन्दर्भ में उचित व्यवस्था आवश्यक है। एक कि एक-झलक

6. क्षेत्रीय विषमताओं में विशेष ध्यान :- परिवार कल्याण कार्यक्रम की उपलब्धियों का राज्यवार विवरण देखने से यह स्पष्ट होता है कि कुछ राज्यों में इस कार्यक्रम का क्रियान्वयन पूर्णतः उदासीनतापूर्ण रहा है। उदाहरणार्थ असम, मणीपुर, मेघालय, त्रिपुरा, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक एवं राजस्थान में जनसंख्या वृद्धि दर तुलनात्मक तेजी से बढ़ी है। अतः यह आवश्यक है कि जिन राज्यों में परिवार कल्याण कार्यक्रम का ठीक ढंग से क्रियान्वयन नहीं हुआ है, वहाँ इसके प्रभावी क्रियान्वयन पर विशेष जोर दिया जाना चाहिये। इन राज्यों में "परिवार नियोजन जिला कार्यक्रम" का गहन रूप से क्रियान्वयन किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि लड़कियों की विवाह की आयु पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये। कारण यह है कि राजस्थान एवं मध्यप्रदेश जैसे राज्यों में लड़कियों का विवाह 18 वर्ष से कम आयु में कर दिया जाता है, जबकि यह गैर-कानूनी है।

7. शिक्षा का प्रसार :- शिक्षा, विशेषकर महिला शिक्षा का परिवार कल्याण में महत्वपूर्ण योगदान है। यह राज्य सरकारों एवं अन्य समाज सेवी संस्थाओं का दायित्व है कि वे ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करें कि लोग स्वेच्छा से परिवार नियोजन कार्यक्रम को अपना सकें। समाजसेवी एवं पंचायती राज संस्थाओं का यह दायित्व है कि निरक्षर लोगों की शंकाएँ दूर कर उन्हें समझा-बुझाकर सीमित परिवार के लिये तैयार करें। महिला शिक्षा के विस्तार से इस दिशा में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त करना सम्भव है।

8. नकद राशि एवं अन्य प्रेरणाएँ :- लोकतांत्रिक ढाँचे में परिवार नियोजन की सफलता में बहुत अधिक समय लगता है। अतः यह आवश्यक है कि प्रेरणाओं के लिये परिवार नियोजन अपनाने वाले गरीब व्यक्तियों को नकद राशि देकर या अन्य प्रलोभनों के द्वारा इस कार्यक्रम की ओर उन्हें आकर्षित किया जावे । अतः इस बारे में विशेष ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

9. आर्थिक विकास की तीव्र गति :- विद्वानों का मत है कि 'विकास सर्वोत्तम निरोधक होता है" (development is the best contraceptive) l इसलिये आर्थिक विकास की गति को तेज किया जाना चाहिये । स्त्रियों को रोजगार दिया जाना चाहिये ताकि वे आर्थिक क्रियाओं में अधिक समय लगा सकें। जनसंख्या के सम्बन्ध में प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाकर भारत मानवीय शक्ति का उपयोग आर्थिक विकास में कर सकता है। चीन में भूमि-श्रम अनुपात भारत से भी ज्यादा विपरीत है, लेकिन उसने खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है। जहाँ एक ओर हमारे देश में जनसंख्या के विस्फोट के संबंध में गम्भीर रूप से चिन्तित होने की आवश्यकता है, वहाँ इस विस्फोटक शक्ति को रचनात्मक उपयोगों में लगाये जाने की सम्भावना पर भी विचार किया जाना चाहिये।

10. शिशु मृत्यु दर पर विशेष ध्यान :- भारत में शिशु मृत्यु दर के ऊँचा होने से लोग परिवार नियोजन के उपाय, विशेषकर नसबन्दी कराने से हिचकिचाते हैं। अतः आवश्यकता है कि शिशु मृत्यु दर को कम करने की दिशा में ठोस प्रयास कये जाने

चाहिये। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पिछले 25 वर्षों में यह दर कम हुई है यथा जहाँ सन् 1981 में शिशु मृत्यु दर 110 प्रति हजार थी, जो घटकर 2009 में 50 प्रति हजार हो गयी, किन्तु अभी भी यह उड़ीसा में 69, मध्यप्रदेश में 70 एवं उत्तरप्रदेश में 67 प्रति हजार है। संक्षेप में, शिशु मृत्यु दर के घटने से परिवार-नियोजन आन्दोलन अधिक लोकप्रिय होगा।

संक्षेप में निष्कर्ष के रूप में यहाँ कहा जा सकता है कि देश के तीव्र आर्थिक विकास एवं सम्पन्नता के लिये परिवार-नियोजन कार्यक्रम की सफलता अत्यावश्यक है। अतः आवश्यकता है कि इस कार्यक्रम को राजनैतिक दलबन्दी से दूर रखकर राष्ट्रीय दृष्टि से ऊँची प्राथमिकता के आधार पर क्रियान्वित किया जाये ।

11.5 सार संक्षेप

भारत में बढ़ती जनसंख्या को नियंत्रित करने और स्वस्थ परिवारों का निर्माण करने के लिए जनसंख्या नीति और परिवार कल्याण कार्यक्रमों की योजना बनाई गई है। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य जनसंख्या वृद्धि को स्थिर करना, प्रत्येक परिवार को बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करना, और सामाजिक-आर्थिक विकास को बढ़ावा देना है।

मुख्य बिंदु:

1. **जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करना**: जनसंख्या वृद्धि दर को स्थिर करना और संसाधनों पर दबाव को कम करना। परिवार नियोजन के उपायों को बढ़ावा देना, जैसे गर्भनिरोधक उपायों का उपयोग।
2. **स्वास्थ्य और कल्याण में सुधार**: मातृत्व, शिशु स्वास्थ्य और परिवारों की सामान्य स्वास्थ्य देखभाल में सुधार करना।
3. **महिला सशक्तिकरण**: महिलाओं को स्वास्थ्य, शिक्षा और परिवार नियोजन के अधिकारों के बारे में जागरूक करना।
4. **किशोर और युवा स्वास्थ्य**: किशोरों और युवाओं के लिए यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य सेवाएं और शिक्षा प्रदान करना।

5. **सामाजिक और आर्थिक समृद्धि**: परिवारों के जीवन स्तर को सुधारना और संसाधनों का समान वितरण सुनिश्चित करना।

11.6: मुख्य शब्द

1. **जनसंख्या नीति (Population Policy)**
    - यह नीति देश की जनसंख्या वृद्धि दर को नियंत्रित करने के लिए बनाई जाती है। इसका उद्देश्य जनसंख्या वृद्धि को स्थिर करना और समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा, और संसाधनों का उचित वितरण सुनिश्चित करना है।
2. **परिवार कल्याण (Family Welfare)**
    - यह एक समग्र दृष्टिकोण है, जिसका उद्देश्य परिवारों की शारीरिक, मानसिक और सामाजिक भलाई को बढ़ावा देना है। इसमें स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा और कल्याणकारी सेवाओं का समावेश होता है।
3. **परिवार नियोजन (Family Planning)**
    - यह कार्यक्रम परिवारों को उनकी इच्छानुसार संतान संख्या नियंत्रित करने के उपायों के बारे में जागरूक करता है। इसमें गर्भनिरोधक उपायों का प्रयोग, गर्भावस्था के समय ध्यान रखने की विधियां शामिल हैं।
4. **गर्भनिरोधक उपाय (Contraceptive Methods)**
    - यह ऐसे उपाय होते हैं, जो अनचाहे गर्भ से बचने में मदद करते हैं। इनमें शारीरिक, रासायनिक और प्राकृतिक विधियाँ शामिल हैं जैसे गर्भनिरोधक गोलियाँ, कंडोम, आईयूडी, आदि।
5. **मातृ मृत्यु दर (Maternal Mortality Rate - MMR)**

- यह संख्या गर्भावस्था या प्रसव के दौरान माताओं की मृत्यु की दर को दर्शाती है। परिवार कल्याण कार्यक्रम का एक प्रमुख उद्देश्य इस दर को कम करना है।

6. **शिशु मृत्यु दर (Infant Mortality Rate - IMR)**
   - यह संख्या शिशु की पहली साल में मृत्यु दर को दर्शाती है। इसे कम करने के लिए उचित स्वास्थ्य देखभाल, टीकाकरण और पोषण संबंधी उपायों को बढ़ावा दिया जाता है।
7. **महिला सशक्तिकरण (Women Empowerment)**
   - महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करना और उन्हें शारीरिक, मानसिक और आर्थिक रूप से सशक्त बनाना ताकि वे अपने जीवन के निर्णय स्वतंत्र रूप से ले सकें।
8. **किशोर स्वास्थ्य (Adolescent Health)**
   - यह किशोरों और युवाओं के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य से संबंधित सेवाओं को संदर्भित करता है। इसमें यौन स्वास्थ्य शिक्षा, मानसिक स्वास्थ्य, और पोषण संबंधी मुद्दे शामिल होते हैं।
9. **संतुलित जनसंख्या वितरण (Balanced Population Distribution)**
   - यह सुनिश्चित करना कि जनसंख्या का वितरण विभिन्न क्षेत्रों में समान रूप से हो, जिससे संसाधनों का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सके और शहरीकरण या ग्रामीण क्षेत्रों में असंतुलन को रोका जा सके।
10. **संसाधन प्रबंधन (Resource Management)**
   - यह जनसंख्या के आकार और वितरण के आधार पर प्राकृतिक और मानव संसाधनों का प्रभावी तरीके से उपयोग सुनिश्चित करना है।

11.**स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं** **(Healthcare Services)**

- यह प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं को संदर्भित करता है जो लोगों की स्वास्थ्य समस्याओं का समाधान करती हैं। इसमें चिकित्सा, टीकाकरण, शल्य चिकित्सा और स्वास्थ्य शिक्षा शामिल हैं।

12.**टीकाकरण** **(Immunization)**

- यह बच्चों और वयस्कों को संक्रामक रोगों से बचाने के लिए दिए जाने वाले टीकों का प्रशासन है, जो शिशु मृत्यु दर को कम करने के लिए महत्वपूर्ण है।

13.**पोषण** **(Nutrition)**

- यह सही आहार और पोषक तत्वों की आपूर्ति को संदर्भित करता है, जिससे परिवारों की शारीरिक और मानसिक स्थिति को बेहतर बनाया जा सके।

14.**सामाजिक सुरक्षा** **(Social Security)**

- यह सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाएं हैं जो परिवारों को विभिन्न संकटों और विपत्तियों के समय वित्तीय और सामाजिक सहायता प्रदान करती हैं।

15.**शहरीकरण** **(Urbanization)**

- यह ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में लोगों का पलायन और शहरी जीवन की ओर बढ़ने की प्रक्रिया है, जो जनसंख्या वितरण में असंतुलन उत्पन्न कर सकती है।

11.7 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

यहाँ जनसंख्या नीति और परिवार कल्याण कार्यक्रम से संबंधित कुछ सामान्य प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं:

1. जनसंख्या नीति का उद्देश्य क्या है?

उत्तर:

जनसंख्या नीति का मुख्य उद्देश्य जनसंख्या वृद्धि दर को नियंत्रित करना और उसे स्थिर रखना है, ताकि संसाधनों पर बढ़ते दबाव को कम किया जा सके। इसका उद्देश्य स्वस्थ, सशक्त और समृद्ध परिवारों का निर्माण करना है। इसके अलावा, यह नीति शिशु और मातृ मृत्यु दर को कम करने, महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने और हर नागरिक को बेहतर जीवन जीने के अवसर प्रदान करने के लिए बनाई गई है।

2. परिवार कल्याण कार्यक्रम का क्या उद्देश्य है?

उत्तर:

परिवार कल्याण कार्यक्रम का उद्देश्य परिवारों के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य में सुधार करना है। इसमें स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार, परिवार नियोजन के उपायों का प्रचार-प्रसार, महिलाओं और बच्चों की स्वास्थ्य देखभाल, और संसाधनों का उचित वितरण शामिल है। यह कार्यक्रम एक समग्र दृष्टिकोण से परिवारों को बेहतर जीवन स्तर और समृद्धि की दिशा में मार्गदर्शन करता है।

3. परिवार नियोजन क्या है और इसका महत्व क्या है?

उत्तर:

परिवार नियोजन एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा परिवारों को अपने इच्छित बच्चों की संख्या और उनके जन्म के समय को नियंत्रित करने का अवसर मिलता है। इसमें गर्भनिरोधक उपायों का उपयोग किया जाता है। इसका महत्व इस बात में है कि यह न केवल परिवारों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में सुधार करता है, बल्कि यह मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य, जीवन स्तर और संसाधनों के समुचित वितरण में भी सहायक है।

4. महिला सशक्तिकरण का परिवार कल्याण कार्यक्रम से क्या संबंध है?

उत्तर:

महिला सशक्तिकरण परिवार कल्याण कार्यक्रम का महत्वपूर्ण हिस्सा है। महिला सशक्तिकरण का उद्देश्य महिलाओं को उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, और जीवन के निर्णयों में समान अधिकार और अवसर प्रदान करना है। इस कार्यक्रम के माध्यम से महिलाओं को परिवार नियोजन के अधिकार, उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के बारे में जानकारी दी जाती है, जिससे वे अपने जीवन को बेहतर तरीके से जीने में सक्षम होती हैं।

5. शिशु मृत्यु दर को कम करने के लिए कौन से उपाय अपनाए जाते हैं?

उत्तर:

शिशु मृत्यु दर को कम करने के लिए विभिन्न उपायों को अपनाया जाता है, जिनमें:

- बेहतर प्रसवपूर्व देखभाल (प्रेग्नेंसी के दौरान माताओं का सही इलाज और पोषण)।
- समय पर टीकाकरण और स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार।
- स्वच्छता और उचित पोषण पर ध्यान देना।
- शिशुओं के लिए विशेष चिकित्सा देखभाल और इलाज की सुविधाओं का प्रावधान।

6. किशोर स्वास्थ्य को लेकर परिवार कल्याण कार्यक्रम में क्या पहल की जाती है?

उत्तर:

किशोरों के स्वास्थ्य पर ध्यान केंद्रित करने के लिए परिवार कल्याण कार्यक्रम में निम्नलिखित पहल की जाती हैं:

- किशोरों को यौन और प्रजनन स्वास्थ्य शिक्षा दी जाती है।
- किशोरों में सुरक्षित यौन व्यवहार और गर्भनिरोधक उपायों के बारे में जागरूकता फैलाना।

- मानसिक स्वास्थ्य, पोषण और सामान्य स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता बढ़ाना।
- किशोरों के लिए विशेष स्वास्थ्य केंद्रों का निर्माण और उनका समर्थन करना।

7. परिवार कल्याण कार्यक्रम में पोषण के महत्व को कैसे देखा जाता है?

उत्तर:
पोषण परिवार कल्याण कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। सही पोषण से शारीरिक और मानसिक विकास में सुधार होता है, जो परिवारों की भलाई के लिए आवश्यक है। विशेष रूप से गर्भवती महिलाओं, शिशुओं, और बच्चों के लिए पौष्टिक आहार की उपलब्धता अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिससे मातृ एवं शिशु मृत्यु दर को कम किया जा सकता है और जीवन के शुरुआती वर्षों में बेहतर स्वास्थ्य सुनिश्चित किया जा सकता है।

8. जनसंख्या नीति और परिवार कल्याण कार्यक्रम में महिला स्वास्थ्य पर क्यों ध्यान दिया जाता है?

उत्तर:
महिला स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि महिलाएं प्रजनन क्षमता, गर्भावस्था, प्रसव, और शिशु पालन जैसी विशेष स्वास्थ्य समस्याओं से गुजरती हैं। इसके अलावा, महिलाओं के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का समाज के समग्र विकास पर सीधा प्रभाव पड़ता है। परिवार कल्याण कार्यक्रम के तहत महिलाओं को स्वास्थ्य, शिक्षा और परिवार नियोजन के बारे में जागरूक किया जाता है, जिससे उनकी स्थिति में सुधार होता है और समाज में समानता और विकास की दिशा में कदम बढ़ाया जा सकता है।

9. जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए क्या कदम उठाए जाते हैं?

उत्तर:
जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए कई कदम उठाए जाते हैं, जैसे:

- परिवार नियोजन के उपायों का प्रचार-प्रसार।

- गर्भनिरोधक उपायों की उपलब्धता और उपयोग में वृद्धि।
- महिला सशक्तिकरण और शिक्षा के माध्यम से महिलाओं को उनकी प्रजनन क्षमता के बारे में जानकारी देना।
- स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच को बढ़ाना और बच्चों के स्वास्थ्य को बेहतर बनाना।

11.8 संदर्भ सूची

- गुप्ता, र. (2020). भारतीय अर्थव्यवस्था: संरचना और विकास. नई दिल्ली: रूल्स पब्लिशिंग हाउस।
- शर्मा, एस. (2018). जनसंख्या नीति और परिवार कल्याण: भारतीय दृष्टिकोण. मुंबई: विजय प्रकाशन।
- मिश्रा, प. (2022). भारत की जनसंख्या और सामाजिक कल्याण योजनाएँ. नई दिल्ली: सागर पब्लिशर्स।
- पटेल, बी. (2021). भारत में जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास के बीच संबंध. जयपुर: यश पब्लिशिंग।
- रॉय, अ. (2019). भारत में परिवार कल्याण योजनाओं का प्रभाव. कोलकाता: प्राइम पब्लिशिंग।

11.9 अभ्यास प्रश्न

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारत की जनसंख्या नीति क्या है? विस्तार से बताइये ।

2. भारत की जनसंख्या नीति का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये। उसकी सीमित सफलता के लिये कौन-कौन से कारण उत्तरदायी रहे हैं?

3. "भारतीय योजनाओं को सफल बनाने के लिये जनसंख्या सम्बन्धी नीति एक पूर्व-आवश्यकता है।" विवेचना कीजिये ।

4. "भारत की सबसे कठिन समस्या इसकी तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या है।" विवेचना कीजिये । इसे रोकने के लिये सरकार ने क्या प्रयास किये हैं ?

5.भारत में जनसंख्या की वृद्धि के कारण बताइये। जनसंख्या की वृद्धि का नियन्त्रण करने के लिये क्या उपाय किये गये हैं?

6. भारत में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या की विवेचना कीजिये । सरकार ने इस समस्या को हल करने के लिये क्या उपाय अपनाये हैं ?

लघु-उत्तरीय प्रश्न :

निम्नलिखित प्रश्नों की 150 शब्दों में व्याख्या कीजिये :

1. 1976 की जनसंख्या-नीति को स्पष्ट कीजिए।

2. सन् 1977 की जनसंख्या-नीति को समझाइये। जार कि गए और हमार

3. भारत में परिवार नियोजन पर टीप लिखिए ।

4. जनसंख्या-विस्फोट से क्या समझते हैं ?

5. राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 को संक्षेप में लिखिए।

6. भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रम पर टीप लिखिए।

7. भारत में जनसंख्या नियंत्रण हेतु सुझाव दीजिए ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के साथ चार-चार विकल्प दर्शाए गए हैं। सही विकल्प पर निशान लगाइये।

(i) किसने कहा था कि जनसंख्या ज्यामितिक अनुपात में एवं जीवन-निर्वाह के साधन अंकगणितीय अनुपात में बढ़ते?

(अ) गुन्नार मिडल

(ब) एडम स्मिथ

(स) माल्थस

(द) इन्दिरा गाँधी

(ii) भारत में गर्भपात अधिनियम कब पारित किया गया ?

(अ)सन् 1961

(ब) सन् 1972

(स) सन् 1976

(द) सन् 1981

(iii) विवाह की कम-से-कम आयु के सम्बन्ध में वर्तमान कानूनी प्रावधान क्या हैं?

(अ) लड़कियों की 15 वर्ष एवं लड़कों की 21 वर्ष ।

(ब) लड़कियों की 18 वर्ष एवं लड़कों की 20 वर्ष ।

(स) लड़कियों की 21 वर्ष एवं लड़कों की 21 वर्ष ।

(द) लड़कियों की 18 वर्ष एवं लड़कों की 21 वर्ष ।

(iv) भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम को व्यापक बनाकर "परिवार कल्याण कार्यक्रम" के नाम से कब आरम्भ हुआ ।

(अ) सन् 1972

(ब) सन् 1967

(स) सन् 1976

(द) सन् 1981

(v) राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 की दीर्घकालीन उद्देश्य किस सन् तक स्थिर जनसंख्या की स्थिति को प्राप्त करना है-

(अ) 2050 तक

(ब) 2045 तक

(स) 2040 तक

(द) 2025 तक

उत्तर :- (i) स, (ii) ब, (iii) द, (iv) स, (v) ब ।

ब्लॉक - IV

इकाई- 12
भारत में कृषि की प्रकृति, महत्व एवं भू-उपयोग

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 भारतीय कृषि की विशेषताएँ

12.4 मुख्य शब्द

12.5 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

12.6 संदर्भ सूची

12.7 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

प्राचीनकाल से ही भारत कृषि प्रधान देश रहा है। उस समय देश में विस्तृत कृषि पद्धति प्रचलित थी। विशाल कृषि क्षेत्र एवं सीमित जनसंख्या के कारण ग्रामवासी सरलता से अपनी आवश्यकता के अनुरूप खाद्यान्न पैदा कर लेते थे और वे पूर्णतः खाद्यान्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर थे, किन्तु समय के साथ-साथ जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई तथा कृषि के विकास पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। परिणाम यह हुआ कि देश में खाद्यान्नों की कमी प्रतीत होने लगी और बड़ी मात्रा में आयात करके देश की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये देश की पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास प्राथमिकता दी गई। पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास के लिये सामुदायिक विकास कार्यक्रम, सघन कृषि योजना, सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि, उन्नत बीजों का आविष्कार एवं उपयोग, उर्वरकों व कीटनाशकों का अधिक उत्पादन एवं उनका उपयोग, कृषि की उन्नत विधियों का आविष्कार, एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम का क्रियान्वयन, कृषि क्षेत्र में आवश्यक ऋणों की उपलब्धता हेतु बैंकों का राष्ट्रीयकरण, कृषि बीमा आदि कार्यक्रम प्रारम्भ किए।

कृषि विकास के इन कार्यक्रमों के फलस्वरूप देश में खाद्यान्नों का उत्पादन बड़ा और देश आत्मनिर्भर होने के साथ-साथ निर्यातक देश बन गया, किन्तु खाद्य तेल एवं दालों की कमी अभी भी बनी हुई है और इसके लिये आयात पर रहना पड़ रहा है।

12.2 उद्देश्य:

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
- विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।

12.3 भारतीय कृषि की विशेषताएँ

भारतीय कृषि अनेक मामलों में विश्व के अन्य देशों से भिन्न है। यही कारण है कि भारत कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता विश्व के विकसित देशों में कम है। भारतीय कृषि की अनेक ऐसी विशेषताएँ हैं जिसके कारण यहाँ कृषि की विकास दर अत्यन्त धीमी है तथा प्रति हैक्टेयर उत्पाद कम है। अतः कृषि के विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन करने से पूर्व इसकी विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। कृषि की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :-

(1) कृषि क्षेत्र पर जनसंख्या का अधिक भार :- भारत की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। कृषि क्षेत्र पर अधिक जनसंख्या की निर्भरता से भूमि पर जनसंख्या का भार अधिक होता है और प्रति व्यक्ति उपलब्धता फसली क्षेत्र कम होता जाता है। यहाँ यह तथ्य भी विशेष उल्लेखनीय है कि विकसित देशों में विकासशील देशों की तुलना में बहुत कम प्रतिशत जनसंख्या कृषि क्षेत्र पर निर्भर रहती है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार कुल कार्यरत जनसंख्या का 60 प्रतिशत भाग प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कृषि पर निर्भर था, जबकि अन्य विकासशील देशों में यह प्रतिशत 40 से 90 है। इसके विपरीत विकसित देशों में यह प्रतिशत 2 से 4 है। उदाहरणार्थ इंग्लैंड में 1.8 प्रतिशत, अमेरिका में 2.1 प्रतिशत, कनाडा में 2.8

प्रतिशत, जर्मनी एवं डेनमार्क में 4.1 प्रतिशत और फ्रांस तथा आस्ट्रेलिया में 4.5 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भारत में कृषि पर निर्भर जनसंख्या के प्रतिशत में बहुत धीमी गति कमी आ रही है, जबकि विकसित देशों में यह तेज गति से घट रही है। भारत कृषि पर निर्भर कार्यशील जनशक्ति का तुलनात्मक विवरण तालिका 1 में दर्शाया गया है।

तालिका -1

भारत में कृषि पर निर्भर जनशक्ति (करोड़ में)

वर्ष	कृषि श्रमिक	कृषक	अन्य व्यवसायों में कार्यरत	कुल जनशक्ति
जनगणना - 1951	2.75 (19.7)	6.98 (50.0)	4.22 (30.3)	13.95 (100.0)
जनगणना - 1961	3.15 (16.7)	9.96 (52.8)	5.76 (30.5)	18.87 (100.0)
जनगणना - 1971	4.75 (26.3)	7.83 (43.4)	5.47 (30.3)	18.05 (100.0)
जनगणना - 1981	5.55 (24.9)	9.25 (41.6)	7.45 (33.5)	22.25 (100.0)
जनगणना - 1991	7.46 (26.1)	11.06 (38.8)	10.0 (35.1)	28.54 (100.0)
जनगणना	10.68	12.73	16.82	40.23

2001	(26.6)	(31.6)	(41.8	(100.0)

टीप : कोष्ठक में प्रतिशत दर्शाया गया है। स्त्रोत: भारत की जनगणना, विभिन्न वर्षों से संकलित ।

तालिका-1 के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सन् 1951 से 2001 के मध्य जहाँ कुल जनशक्ति से कृषि श्रमिकों का प्रतिशत 19.7 से बढ़कर 26.6 हो गया, वहीं कृषकों का प्रतिशत 50.0 से घटकर 31.6 हो गया। इस प्रकार कृषि पर निर्भर कुल जनशक्ति जहाँ सन् 1951 में 69.7 थी घटकर सन् 2001 में 60 प्रतिशत रह गई, अर्थात् इस अवधि में बहुत धीमी गति से कम हुई है। वास्तविकता यह है कि जहाँ सन् 1951 में कृषि पर 9.73 करोड़ जनशक्ति निर्भर थी बढ़ कर 2001 में 23.41 करोड़ हो गई, अर्थात् कृषि पर निर्भर जनशक्ति दो गुनी अधिक हो गई। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि जनसंख्या में वृद्धि से न केवल प्रति व्यक्ति जोत का आकार एवं कृषि भूमि कम होती है, वरन् कृषि विकास के मार्ग में भी अनेक बाधाएँ पैदा हो जाती हैं।

(2) जोतों के आकार का छोटा होना :- भारतीय कृषि की एक प्रमुख विशेषता जोत की इकाइयों की अधिक संख्या एवं उनके आकार का छोटा होना है। जोतों के छोटे होने से उत्पादन लागत बढ़ जाती है तथा विकास की गति धीमी हो जाती है। छोटी जोतों से कृषि भूमि का अपव्यय भी होता है। कृषि-गणना 1970-71 के अनुसार देश में कार्यशील जोतों की संख्या 7.1 करोड़ थी जो कृषि गणना 1990-91 में बढ़कर 10.5 करोड़ हो गई। जोतों की संख्या में वृद्धि के कारण इस अवधि में औसत जोत का आकार 2.28 हैक्टेयर से घटकर 1.57 हैक्टेयर हो गया। तालिका-दो में कार्यशील जोतों की संख्या और उनके अन्तर्गत क्षेत्र को दर्शाया गया है।

तालिका - 2

सन् 1990-91 में भारत में जोतों की संख्या एवं क्षेत्र

जोत का आकार	**(लाखों**	**जोतों की**	

	में)	संख्या कुल से प्रतिशत	जोतों के अन्तर्गत क्षेत्र लाख हैक्टेयर कुल से प्रतिशत	
1. सीमान्त जोत (1 हैक्टेयर से कम)	621.1	59.0	246.2	14.9
2.लघु जोत (1 से 2 हैक्टेयर)	199.6	19.0	287.05	17.3
3.अर्ध-मध्यम जोत (2 से 4 हैक्टेयर)	139.1	13.2	383.5	23.2
4.मध्यम आकार की जोत (4 से 10 हैक्टेयर)	76.3	7.2	450.5	27.2
5. बड़े आकार की जोत (10 हैक्टेयर से अधिक)	16.7	1.6	389.0	17.4
कुल	**1052.8**	**100.0**	**1656.2**	**100.0**

तालिका - दो के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि देश में कुल जोतों का 78.0 प्रतिशत है और इनके पास कुल कृषि क्षेत्र का केवल 32.2 प्रतिशत भाग ही है। इसके विपरीत 10 हैक्टेयर से बड़ी क्षेत्र वाले भू-स्वामियों के पास कुल जोतों का केवल 1.6 प्रतिशत भाग है, जबकि उनके पास कुल क्षेत्र का 17.4 प्रतिशत भाग है। उपर्युक्त आँकड़ों से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि कृषि भूमि की तुलना में जोतों की संख्या बहुत अधिक है और परिणामस्वरूप देश में जोतों का औसत आकार केवल 1.57 हैक्टेयर है। जोतों का यह छोटा आकार कृषि उत्पादन में वृद्धि के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। यद्यपि देश में अनेक भूमि सुधार कार्यक्रम अपनाए गए तथापि जोतों के आकार एवं उनके असमान वितरण की समस्या दिन-प्रतिदिन विकराल रूप धारण करती जा रही है।

(3) कृषि जोतों का अपखण्डन (Fragmentation of Holdings) :- भूमि के अपखंडन का अर्थ भूमि-स्वामियों एवं किसानों के खेतों का एक चक्र में न होकर उसके बिखरे हुए होने से है। इस प्रकार अपखंडन में खेत एक स्थान पर न होकर छोटे-छोटे टुकड़ों में अलग-अलग स्थानों पर होते हैं। उदाहरण के लिए माना कि किसी किसान के पास 4 हैक्टेयर भूमि है, इसमें से एक हैक्टेयर गाँव के पूर्व में, दूसरा हैक्टेयर गाँव के उत्तर में, एक हैक्टेयर गाँव के पश्चिम में है और शेष एक हैक्टेयर दक्षिण में है। भारत में खेतों के अपखंडन की जटिल समस्या विद्यमान है। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :-

(i) उत्तराधिकार के नियम (Law of Inheritance) – भारत में उत्तराधिकार के नियम के अनुसार सभी बच्चे पिता की सम्पत्ति के समान रूप से भागीदार होते हैं। पहले पिता की सम्पत्ति पर पुत्रों का ही अधिकार होता था, अब हिन्दू कोड बिल के कारण पुत्रियों का भी समान अधिकार हो गया है। उत्तराधिकार के इस नियम से भूमि कृषक की सन्तानों में समान रूप से बँट जाती है। इससे खेतों का आकार छोटा हो जाता है। जातिम्र

(ii) संयुक्त परिवार प्रणाली का पतन (Decline of Joint Family System) – अब पाश्चात्य सभ्यता, साक्षरता एवं आधुनिक ढंग से परिवार में रहने की प्रथा आदि कारणों से व्यक्ति केवल स्वयं के बारे में सोचने लगा है। फलतः संयुक्त परिवार प्रणाली का पतन हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप खेतों का उप-विभाजन एवं अपखंडन बढ़ गया है।

(iii) जनसंख्या में वृद्धि (Growing Population) – स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ी है। इससे उत्तराधिकारियों की संख्या भी बढ़ी है। इतना ही नहीं, देश में गैर-कृषि उद्योगों का विकास भी कम हुआ है। अतः रोजगार प्राप्ति का प्रमुख साधन कृषि रह गया है। इसके परिणामस्वरूप खेतों का उप-विभाजन एवं अपखंडन बढ़ गया है। है।

(iv) भूमि के प्रति लगाव (Attachment with Land)- भारतीय ग्रामीणों का भूमि से बहुत अधिक लगाव है। वे खेत को आय का साधन कम मानते हैं, वरन् उसे सम्मान एवं

प्रतिष्ठा का प्रमुख आधार समझते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे पैतृक भूमि में से अपना हिस्सा अवश्य चाहते हैं जिससे भूमि का उप-विभाजन एवं अपखंडन होता है।

(v) ऋणग्रस्तता (Indebtedness) - अधिकांश कृषक ग्रामीण महाजन से ऊँची ब्याज दर पर जमीन गिरवी रखकर ऋण लेते हैं। निर्धन कृषक महाजन का ऋण चुकाने में असमर्थ होता है। वह अन्त में कर्ज के बदले में अपनी भूमि का कुछ भाग महाजन अपखंडन को प्रोत्साहन मिलता देता है, जिससे भूमि के उप-विभाजन एवं राग महाजन को दे देता है,

(vi) कुटीर उद्योगों का पतन (Decline of Rural Industries) – ब्रिटिश शासनकाल में देश के कुटीर उद्योगों का पतन हो गया था। वर्तमान समय तक भी इनको पुनर्जीवित करने के कोई ठोस एवं लाभदायक प्रयास नहीं किये गये। इससे ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी बढ़ी और लोग रोजगार की तलाश में कृषि पर निर्भर रहने लगे हैं। इससे भूमि का उप-विभाजन तथा अपखंडन बढ़ा है।

(vii) भूमि की उर्वरता की भिन्नता (Difference in the Fertility of Land) – भारत में सभी खेतों की उर्वरता समान नहीं है। एक ही भू-भाग में किसी एक खेत की उर्वरता अधिक और दूसरे की कम होती है। फलतः बँटवारे के समय उत्तराधिकारी को कम और अधिक दोनों प्रकार की उर्वरता वाली भूमियों में से हिस्सा मिलता है जिससे भूमि के अधिक टुकड़े हो जाते हैं।

जोतों के अपखण्डन से कृषि के विकास में बाधा उत्पन्न होती है और उन्नत कृषि पद्धति का उपयोग नहीं हो पाता। छोटे-छोटे खेतों की मेड़ बनाने एवं सीमा निर्धारण में भी काफी भूमि का अपव्यय होता है। इससे छोटे खेत और भी छोटे हो जाते हैं। अनुमान है कि छोटे खेतों की मेड़ आदि के कारण 6 से 10 प्रतिशत कृषि भूमि का अपव्यय होता है। इसके साथ ही छोटे खेतों के कारण उत्पादन लागत में बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है।

(4) भारतीय कृषि में पूँजी निवेश कम होना- भारतीय कृषि की तीसरी प्रमुख विशेषता कृषि क्षेत्र में पूँजी निवेश का कम होना है। भारतीय कृषक मुख्यतया गरीब हैं। गरीबी के कारण कृषि व्यवसाय में पूँजी निवेश कम मात्रा में कर पाते हैं। पूँजी के अभाव में कृषक फार्म पर कृषि उत्पादन में उन्नत तकनीकी विधियों एवं प्रस्तावित मात्रा में उत्पादन-साधनों का उपयोग कर पाने में सक्षम नहीं होते हैं। इससे उनकी भूमि की उत्पादकता का स्तर कम होता है। वर्ष 1950-51 में कृषि क्षेत्र में निवेश की गई पूँजी, कृषि क्षेत्र से प्राप्त आय की 6.3 प्रतिशत थी, जो वर्ष 1960-61 तक समान प्रतिशत में बनी रही। पूँजी निवेश की राशि में हरितक्रान्ति के साथ वृद्धि हुई और अनुमान है कि 1990-91 में बढ़कर यह 10 प्रतिशत और वर्तमान में यह 12 प्रतिशत हो गई है।

प्रायः भारतीय कृषक अपनी आय का एक बड़ा भार सामाजिक उत्सवों एवं धार्मिक कार्यों पर व्यय करते हैं जिसके कारण विनियोग हेतु पूँजी का उनके पास अभाव रहता है। ऋण ग्रस्तता के कारण भी कृषक निवेश को प्राथमिकता नहीं दे पाते। यद्यपि ग्रामीण वित्त के विस्तार एवं सहकारी समितियों एवं व्यापारिक बैंकों के प्रयास से इस दिशा में प्रगति हुई है तथापि अभी भी कृषि में पूँजी निवेश की दर बहुत कम है। भारती कृषि के पिछड़े होने एवं प्रति हैक्टेयर उत्पादन के कम होने का यह भी एक महत्वपूर्ण कारण है।

(5) खाद्यान्न उत्पादन को प्राथमिकता (Priority to Foodgrains) :- भारत में कृषि जीवन- यापन का साधन है और कृषक खेती से अपने उपभोग के लिये प्राथमिकता के आधार पर खाद्यान्नों का उत्पादन 'करते हैं। यही कारण है भारत में खाद्यान्नों का उत्पादन गैर-खाद्यान्न एवं व्यापारिक फसलों की तुलना में अधिक है। कृषि का व्यवसायीकरण न होने के कारण कृषक व्यापारिक फसलों को पैदा करके अधिक लाभ अर्जित करने में रुचि नहीं लेते। सामान्यतः यह माना जाता है कि व्यापारिक एवं नकदी फसलों से प्रति हैक्टेयर लाभ, खाद्यान्नों की अपेक्षा अधिक होता है, किन्तु आप कृषक इस लाभ से वंचित रह जाते हैं।

उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार वर्ष 1950-51 में जहाँ कुल फसली क्षेत्र का 76.7 प्रतिशत भाग खाद्यान्न फसलों के अन्तर्गत था, जो धीरे-धीरे घटकर वर्ष 2000-2001 में 66.9 प्रतिशत रह गया। स्पष्ट है कि पिछले 40 वर्षों में हरितक्रान्ति के कारण कृषकों का झुकाव व्यापारिक एवं नकदी फसलों की ओर बढ़ा है, किन्तु वास्तविकता यह है कि अभी भी कृषक खाद्यान्न फसलें पैदा करने में विशेष रुचि लेते हैं। वर्ष 2009-10 में 121.3 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में खाद्यान्न फसलें बोयी गई।

(6) कृषि उत्पादन का प्रकृति पर निर्भर होना :- भारत में कृषि उत्पादन प्रकृति की अनुकूलता पर निर्भर है। प्रकृति की अनुकूलता वाले वर्ष में देश में खाद्यान्नों का उत्पादन अधिक होता है तथा प्रतिकूलता वाले वर्ष में खाद्यान्नों का उत्पादन कम होता है। भारतीय कृषि का प्रकृति पर निर्भरता का मुख्य कारण देश में सिंचाई के पानी की पर्याप्त सुविधा का न होना है। भारत में वर्ष 1951-52 में 2.32 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र, जो कि कुल कृषि-क्षेत्र का 17.4 प्रतिशत में सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध थी। योजना काल में सिंचाई सुविधाओं के निरन्तर विस्तार के फलस्वरूप सिंचित क्षेत्र वर्ष 2000-2001 में 5.94 करोड़ हैक्टेयर हो गई थी। वर्ष 2006-07 के अंत तक कुल 10.28 करोड़ हेक्टेयर सिंचाई क्षमता हो गई। अब लगभग 40 प्रतिशत फसली क्षेत्र में सिचाई सुविधाऐं उपलब्ध हैं। सिंचाई को पंचवर्षीय योजनाओं में प्राथमिकता देने के बाद भी अभी 60 प्रतिशत कृषि मानसून पर निर्भर है। इसीलिये आज भी कहा जाता है कि "भारतीय कृषि मानसून का जुआ है।"

(7) कृषि जीवन निर्वाह का साधन है:- भारत में कृषकों द्वारा कृषि को व्यवसाय के रूप में न अपनाकर जीवन-निर्वाह के रूप में अपनाया जाता है। भारतीय कृषकों जोते बहुत छोटी हैं और वे इन खेतों पर अपने उपभोग की खाद्यान्न फसलें पैदा करते हैं। अशिक्षा एवं ज्ञान के अभाव से भारतीय कृषक उन्नत कृषि पद्धति का प्रयोग नहीं करते। कृषक कृषि में होने वाले आय-व्यय का लेखा नहीं रखते हैं और न ही उत्पादन एवं आय में वृद्धि के लिए व्यावसायिक सिद्धान्तों का उपयोग करते हैं। अन्य देशों में कृषि को भी अन्य

उद्योगों के समान व्यवसाय के रूप में अपनाया जाता है और व्यवसाय से व्यापारिक बुद्धिमत्ता के आधार पर अधिक लाभ कमाने का प्रयास किया जाता है।

(8) दोषयुक्त भू-धारण पद्धति :- भारतीय कृषि में भू-धारण की दोषयुक्त पद्धति प्रचलित है, जिससे कृषक भूमि से उत्पादकता बढ़ाने में इच्छुक नहीं होते हैं। प्रचलित दोषयुक्त पद्धतियों में कृषक एवं सरकार के मध्य मध्यस्थों का होना, जोत अपखण्डन, जोत का क्षेत्रफल कम व असमान होना, भू-राजस्व की अधिक राशि वसूल करना आदि प्रमुख हैं। इस प्रकार की दोषयुक्त भू-धारण पद्धतियों के होने से कृषि विकास में बाधा पहुँचती है। सरकार ने स्वतंत्रता के पश्चात् भू-धारण की दोषयुक्त पद्धतियों की समाप्ति के लिए अनेक भूमि-सुधार कार्यक्रम अपनाए हैं।

(9) भारतीय कृषि में पशु-शक्ति का प्रमुख स्थान- भारतीय कृषि में अधिकांश कृषि कार्य जैसे-जुताई, बुवाई, सिंचाई, खाद डालना, उत्पाद का गायटा, उत्पाद की ढुलाई आदि पशुओं की सहायता से ही किये जाते हैं। पशु-शक्ति के अधिक उपयोग के कारण उत्पादन लागत अधिक आती है तथा कार्य भी समय पर पूरा कर पाना सम्भव नहीं होता है। विकसित देशों में कृषि क्षेत्र में पशु-शक्ति के स्थान पर यान्त्रिक शक्ति हैक्टेयर, सिंचाई के लिए डीजल एवं विद्युत-इंजन, रीपर, सीड ड्रील आदि का उपयोग अधिक होता है।

(10) निम्न उत्पादकता - भारत में अन्य देशों की तुलना में प्रति हैक्टर उत्पादन बहुत कम है। उदाहरणार्थ भारत में एक हैक्टेयर क्षेत्र में केवल 28 क्विटल गेहूँ पैदा होता है, जबकि यह मात्रा ब्रिटेन में 69 क्विटल, मिस्र में 54 क्विटल और चीन में 37 क्विटल है। इसी प्रकार चावल, कपास एवं मूँगफली की उत्पादकता भी यहाँ बहुत कम है।

(11) श्रम की प्रधानता – भारतीय कृषि श्रम प्रधान है, अर्थात् यहाँ कृषि में मशीनों की तुलना में श्रमिकों का अधिक प्रयोग होता है। इसका प्रमुख कारण कृषि जातों के आकार का छोटा होना है, किन्तु इसके कारण कृषि उत्पादन कम होता है तथा कृषकों की आय कम रहती है। किवाड

(12) राष्ट्रीय आय का मुख्य स्रोत वरन् राष्ट्रीय आय का एक मुख्य स्रोत है। 21 प्रतिशत भाग कृषि से प्राप्त होता है। भारत में कृषि न केवल जीवन-यापन का साधन मात्र है, उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार कुल राष्ट्रीय आय का लगभग

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व

भारत जैसे विकासशील देशों के आर्थिक विकास में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यहाँ की अधिकांश जनसंख्या कृषि से ही जीविकोपार्जन करती है। यद्यपि, इन देशों में कृषि की उत्पादकता वृद्धि की पर्याप्त सम्भावनाएँ हैं, तथापि अभी तक इस दिशा में कोई ठोस प्रयास नहीं किये गये हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में कृषि के महत्व को निम्न प्रकार सिद्ध किया जा सकता है –

(1) राष्ट्रीय आय में कृषि का अंश विश्व बैंक के विश्व विकास वृतान्त के अनुसार भारत में वर्ष 1992 में कृषि क्षेत्र का देश के सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product) में अंश 32 प्रतिशत था, जबकि फ्रान्स में 3 प्रतिशत, जर्मनी, स्वीडन तथा जापान में 2 प्रतिशत ही था। भारत की राष्ट्रीय आय में कृषि के योगदान को तालिका क्रमांक-तीन में दर्शाया गया है।

तालिका - 3

भारत की राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान

(करोड़ रु.)

वर्ष	कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्र से प्राप्त आय	कुल राष्ट्रीय आय में कृषि का प्रतिशत	भूमि से प्राप्त आय में पिछले वर्ष से वृद्धि दर
1950-51	127062	56.6	1.8
1960-	172433	52.3	7.0

61			
1970-71	217862	46.0	6.5
1980-81	5256342	39.9	12.9
1990-91	368907	34.0	4.5
2000-0	487992	26.2	0.0
2009-10	760974	16.9	1.3

टीप :- उत्पादन लागत के आधार पर सकल घरेलू उत्पाद वर्ष 1950-51 से 2000-01 तक आधार वर्ष 1999-2000 के मूल्यों पर तथा 2004-05 से नई श्रृंखला 2004-05 की कीमतों पर आधारित है। 10-0201

स्रोत :- आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, 2010-11, पृष्ठ A5

तालिका- तीन के विश्लेषण से स्पष्ट है कि भारत में वर्ष 1950-51 में जहाँ कुल राष्ट्रीय आय (जी.डी.पी.) में कृषि का योगदान 56.6 प्रतिशत था, घटकर 1970-71 में 46.0 प्रतिशत, 1990-91 में 34.0 प्रतिशत 2000-01 में 26.2 प्रतिशत तथा 2009-10 में 16.9 प्रतिशत रह गया। स्पष्ट है कि इस अवधि में उद्योग एवं सेवा क्षेत्र के योगदान में क्रमशः वृद्धि हुई है, किन्तु अभी भी राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

(2) खाद्यान्न एवं चारे की उपलब्धता :- कृषि के द्वारा ही नागरिकों को खाद्यान्न एवं पशुओं को चारा प्राप्त होता है। भारत में कृषि न केवल 121 करोड़ लोगों को भोजन उपलब्ध कराती है, वरन् निर्यात के लिये भी अतिरेक खाद्यान्न पैदा करती है। इसी प्रकार देश के

45 करोड़ पशुओं को भी कृषि से चारा प्राप्त होता है। अतः खाद्यान्न एवं चारा उपलब्ध कराने में कृषि का देश में महत्वपूर्ण स्थान है।

(3) जीवन-निर्वाह का सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र:- जीवन-निर्वाह के लिये भारत में अन्य क्षेत्रों की तुलना में कृषि का विशेष महत्व है। देश की कुल जनसंख्या का 60 प्रतिशत भाग प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। देश की कुल जनशक्ति का लगभग 24 प्रतिशत भाग कृषि-श्रमिकों के रूप में कृषि से रोजगार प्राप्त करता है। इसके अलावा लगभग 36 प्रतिशत कृषक कृषि से प्रत्यक्ष रोजगार प्राप्त करते हैं। अर्थव्यवस्था के शेष क्षेत्र (व्यवसाय) केवल 40 प्रतिशत जनशक्ति को रोजगार उपलब्ध कराती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कृषि भारत की दो-तिहाई जनसंख्या को जीवन-निर्वाह का साधन प्रदान करती है।

(4) प्रमुख उद्योगों के लिये आवश्यक कच्चा माल एवं परस्पर निर्भरता :- आर्थिक विकास के लिए कृषि अन्य उद्योगो के लिए कच्चे माल की पूर्ति करती है। कृषि के सक्रिय सहयोग के कारण ही सूती वस्त्र, जूट, शक्कर, वनस्पति आदि उद्योग विकसित होते हैं। अनेक कुटीर उद्योगों के लिए भी कृषि ही कच्चा माल प्रदान करती है। रसायन उद्योग, इंजीनियरिंग उद्योग, मशीन औजार उद्योग आदि की निर्मित वस्तुओं की माँग कृषि क्षेत्र पर ही निर्भर रहती है। कृषि क्षेत्र में इनके उपयोग बढ़ने से इन उद्योगों का विकास भी द्रुत गति से होता है। अतः कृषि एवं अनेक उद्योग एक-दूसरे के पूरक कहलाते

(5) सेवा क्षेत्र में कृषि का महत्व :- देश का सेवा क्षेत्र, यथा-व्यापार, संचार, संग्रहण, बैंकिंग, बीमा, यातायात आदि, अपने विकास के लिये कृषि पर निर्भर है। इन क्षेत्रों को व्यवसाय मुख्यतः कृषि क्षेत्र से प्राप्त होता है। कृषि में उत्पादन बढ़ने से सभी सेवा से सम्बन्धित क्षेत्रों का विस्तार हो जाता है और इनमें रोजगार एवं आय में वृद्धि हो जाती है।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में कृषि का योगदान :- भारत के विदेशी व्यापार का अधिकांश भाग कृषि से प्राप्त होता है। कुल निर्यात में कृषि वस्तुओं का अनुपात वर्ष

2009-10 के आँकड़ों के अनुसार 9.9 प्रतिशत है। पिछले कुछ वर्षों से भारत के निर्यात एवं कृषि वस्तुओं के निर्यात की मात्रा एवं मूल्य में बढ़ोतरी हुई है जो आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है। कृषि क्षेत्र से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में चाय, कॉफी, तम्बाकू, काजू, जूट, कपास, ऊन, बादाम, खाद्य तेल, सुपारी गोंद, किशमिस, चमड़ा, खली, मसाले एवं फल प्रमुख हैं। पिछले कुछ वर्षों में कृषि पर आधारित विभिन्न वस्तुओं में विविधता आई है, किन्तु कुल देश के विदेशी व्यापार में इनका अंशदान विशेष परिवर्तित नहीं हुआ है। तालिका क्रमांक - 4 में कृषि वस्तुओं के निर्यात से प्राप्त आय एवं उसका देश के कुल नियति में योगदान को दर्शाया गया है।

तालिका - 4

कृषि वस्तुओं के निर्यात से प्राप्त आय एवं उसका देश के कुल निर्यात में अंश

वर्ष	कृषि वस्तुओं के निर्यात से प्राप्त आय (करोड़ रु.)	कुल निर्यात, आय में कृषि वस्तुओं के निर्यात से प्रतिशत
1960-61	284	44.24
1970-71	487	31.73
1980-81	2057	6317
1990-91	6313	19.41
2001-01	28535	14.0

2009-10	85211	9.9

स्रोत : आर्थिक समीक्षा 2010-11, पृष्ठ A 86 से A 89

तालिका क्रमांक - 4 से स्पष्ट है कि जहाँ वर्ष 1960-61 में कृषि वस्तुओं के निर्यात से कुल 284 करोड़ रु.प्राप्त हुए थे, बढ़कर 1980-81 में 2059 करोड़ रु. एवं 2000-2001 में 28535 करोड़ रु. तथा 2009-10 में बढ़कर 85,211 करोड़ रुपए हो गये, किन्तु कुलं निर्यात व्यापार में कृषि निर्यात का प्रतिशत क्रमशः कम हो रहा है। जहाँ यह प्रतिशत सन् 1960-61 में 44.24 था, घटकर 1980-81 में 30.65 प्रतिशत एवं 2000-2001 में केवल 14.00 प्रतिशत तथा 2009-10 में घटकर 9.9 प्रतिशत रह गया। यद्यपि कृषि वस्तुओं के निर्यात का तुलनात्मक महत्व धीरे-धीरे कम हो रहा है, तथापि कृषि क्षेत्र से निर्यात बढ़ाने की देश में प्रबल सम्भावनाएँ विद्यमान हैं।

(7) देश में व्याप्त निर्धनता के स्तर में कमी लाने में कृषि क्षेत्र का अंश देश में व्याप्त निर्धनता के प्रतिशतता को कम करने में भी कृषि क्षेत्र महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। देश में गरीबी की रेखा से नीचे, जीवन-यापन कर रही जनसंख्या के प्रतिशत में कमी भी कृषि क्षेत्र के विकास द्वारा ही हो पाना सम्भव है।

(8) उपभोक्ताओं की आय का कृषि वस्तुओं के क्रय पर व्यय का अंश देश के उपभोक्ताओं की आय का लगभग 70 से 80 प्रतिशत भाग कृषि वस्तुओं के क्रय पर ही व्यय होता है। अतः उपभोक्ताओं को उचित जीवन-स्तर प्रदान करने में कृषि क्षेत्र महत्वपूर्ण स्थान रखता है। खाद्यान्नों की माँग की लोच के अधिक होने के कारण कीमतों में होने वाले उतार-चढ़ाव का प्रभाव उपभोक्ताओं के रहन-सहन के स्तर को सीधे रूप में प्रभावित करता है।

भारत में भू-उपयोग

कृषि-उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण साधन भूमि है। भू-उपयोग की दृष्टि से भूमि को निम्नलिखित 5 श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है:-

(a) वन भूमि :- वन भूमि से आशय उस भूमि से है जिस पर जंगल, बाँस, पेड़-पौधे, घास आदि होते हैं। यह भूमि फसल उत्पादन के उपयोग में नहीं आती। वन भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिये जंगलों की सफाई-कटाई करनी होती है जिस पर काफी धन व्यय होता है, किन्तु जनसंख्या के दबाव से स्थानीय लोग जंगलों की कटाई करके इसे खेती योग्य बना लेते हैं।

(b) कृषि के लिये उपलब्ध न होने वाली भूमि :- कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं जो कृषि के लिये उपलब्ध नहीं होते। इस प्रकार की भूमि को निम्न दो भागों में विभक्त किया जाता है:-

(i) बंजर एवं अकृष्य भूमि :- इसके अन्तर्गत पहाड़, टीले, रेगिस्तान आदि के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों को लिया जाता है। इस भूमि पर खेती करना या तो सम्भव ही नहीं होता अथवा इस भूमि पर खेती करना आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं होता ।

(ii) गैर-कृषि कार्यों में प्रयुक्त भूमि इसके अन्तर्गत भवन, सड़क, रेल, नहर आदि के नीचे आने वाली भूमि आती है जो कृषि करने के लिए उपलब्ध नहीं होती है।

(c) परती भूमि के अतिरिक्त अकृष्य भूमि यह तीन प्रकार की होती है-

(i) स्थायी चरागाह एवं गोचर भूमि - यह पशुओं की चराई के लिए प्रयुक्त भूमि है।

(ii) विविध वृक्ष एवं कुँजों के अन्तर्गत की भूमि जो शुद्ध कृषित क्षेत्र में सम्मिलित नहीं की गई है।

(iii) कृषि योग्य व्यर्थ भूमि (Culturable Waste Land)- यह वह भूमि है जिसका कृषि कार्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है लेकिन अभी तक वह व्यर्थ पड़ी हुई है। इस भूमि के क्षेत्र पर उचित लागत लगाकर उसे कृषि के अन्तर्गत लाया जा सकता है।

(d) परती

भूमि - यह दो प्रकार की होती है -

(i) चालू परती भूमि - यह वह भूमि है जो कृषि योग्य होते हुए भी चालू वर्ष में कृषित नहीं की गई है। साधारणतया कृषक भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि करने के लिए भूमि को चालू वर्ष में परती छोड़ देते हैं।

(ii) चालू परती भूमि के अतिरिक्त अन्य परती भूमि यह वह भूमि है जो एक वर्ष से अधिक लेकिन 5 वर्ष से कम समय के लिए परती छोड़ी जाती है। इस प्रकार की परती भूमि कृषकों द्वारा भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि करने, कृषकों के पास पर्याप्त धनराशि न होने, फार्म पर सिंचाई के साधन उपलब्ध नहीं होने तथा भूमि के खराब होने की अवस्था में छोड़ी जाती है।

(e) कृषित क्षेत्र - यह भूमि का वह क्षेत्र है जो कृषि के लिए उपयोग में लिया जाता है। देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र में से उपर्युक्त चारों श्रेणियों की भूमि का क्षेत्र घटाने पर जो भूमि का क्षेत्र शेष रहता है, वह शुद्ध कृषित क्षेत्र कहलाता है। शुद्ध कृषित क्षेत्र में वर्ष में एक से अधिक बार कृषित किये जाने वाले क्षेत्र को सम्मिलित करने पर प्राप्त भूमि का क्षेत्र सकल कृषित क्षेत्र (Gross cropped area) कहलाता भारत में उपलब्ध भौगोलिक क्षेत्र के उपयोग का विस्तृत विवरण तालिका क्रमांक - 5 में दर्शाया गया है।

तालिका - 5

भू-उपयोग का विवरण	**क्षेत्र लाख हैक्टेयर**	**प्रतिशत**	**क्षेत्र लाख हैक्टेयर**	**प्रतिशत**
देश का भौगोलिक क्षेत्र	3287.2	-	3287.2	-
क्षेत्रफल जिसके लिये आँकड़े उपलब्ध हैं	2843.1	100.0	3050.1	100.0

विभिन्न उपयोग के अन्तर्गत क्षेत्र	404:8	14.2	679.8	22.2
(a) वनों के अन्तर्गत क्षेत्र	4715	16.7	408.8	13.4
(b) कृषि के लिये अनुपलब्ध क्षेत्र	93.5	3.3	212.2	6.9
(i) गैर कृषि कार्यों में प्रयुक्त भूमि	3816	13.4	196.6	6.4
(ii) बंजर एवं अकृष्य भूमि	4944	17.4	305.2	10.0
(c) परती भूमि के अतिरिक्त अकृष्य	66.7	23	118.0	3.8
भूमि	198-3	70	37.0	1.2
(i) स्थायी चरागाह का क्षेत्र	229.4	8.1	150.1	49
(1) वृक्षों एवं कुंजों के अन्तर्गत क्षेत्र	281.2	9.9	234.0	7.7
(ii) कृषि योग्य व्यर्थ पड़ी हुई भूमि	1187.5	41.8	1422.3	46.6
(d) परती भूमि का क्षेत्र	1314	-	432.4	-
(c) शुद्ध कृषि के अन्तर्गत क्षेत्र	1318.9	-	1854.5	-
(1) वर्ष में एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्र				
(g) सकल कृषि के अन्तर्गत क्षेत्र				

स्त्रोत : कृषि सांख्यिकी एक नजर में, 2008

तालिका क्रमांक-5 के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि देश का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 328.726 मिलियन हैक्टेयर है। उसमें से शुद्ध कृषित क्षेत्रफल वर्ष 2005-06 में 118.746 मिलियन हैक्टेयर (41.8 प्रतिशत) था, जो बढ़कर वर्ष 1980-81 में 140 मिलियन हैक्टेयर एवं वर्ष 2005-06 में 142.234 मिलियन हैक्टेयर (46.63 प्रतिशत) हो गया। इस प्रकार 55 वर्षों में शुद्ध कृषित क्षेत्रफल में 23.488 मिलियन हैक्टेयर (4.83 प्रतिशत) की वृद्धि हुई है। इस काल में सकल कृषित क्षेत्रफल में 53.584 मिलियन

हैक्टेयर की वृद्धि हुई है। यह वृद्धि सिंचाई सुविधाओं के विकास के साथ-साथ एक बार से अधिक कृषित किये जाने वाले क्षेत्रफल में वृद्धि के कारण हुई है। पिछले 55 वर्षों में वनों के अन्तर्गत क्षेत्रफल में 27.503 मिलियन हैक्टेयर की वृद्धि हुई है। कृषित क्षेत्रफल एवं वनों के अन्तर्गत क्षेत्रफल में वृद्धि, परती भूमि, बंजर एवं अकृष्य भूमि तथा विविध वृक्षों व कुँजों के अन्तर्गत क्षेत्रफल में कमी के कारण हो पाई है। भविष्य में इस प्रकार से कृषित क्षेत्रफल में वृद्धि करने की संभावना कम है क्योंकि शेष अकृष्य एवं बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाने में लागत बहुत अधिक आती है।

12.4 मुख्य शब्द

1. कृषि की प्रकृति:

भारत में कृषि पारंपरिक रूप से जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा रही है। कृषि की प्रकृति विविध है, क्योंकि यहाँ विभिन्न जलवायु, मिट्टी और भौगोलिक परिस्थितियाँ हैं। भारत में कृषि मुख्यतः निम्नलिखित विशेषताओं के कारण महत्वपूर्ण है:

- **विविधता**: भारत में कृषि का स्वरूप बहुत विविध है, जिसमें अनाज (जैसे चावल, गेहूँ), तिलहन, दलहन, फल, सब्जियाँ, और वाणिज्यिक फसलें (जैसे गन्ना, कपास, मक्का, चाय, कॉफी) शामिल हैं।
- **सामाजिक और आर्थिक महत्व**: भारतीय समाज में अधिकांश लोग कृषि पर निर्भर रहते हैं। यह ग्रामीण रोजगार का प्रमुख स्रोत है और देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान करता है।
- **ऋतु आधारित कृषि**: भारत में कृषि मानसून पर निर्भर होती है, और यहाँ की कृषि मुख्य रूप से **खरीफ** (मानसून में बुआई) और **रबी** (सर्दियों में बुआई) फसलों पर आधारित है।

2. कृषि का महत्व:

भारत में कृषि का महत्व बहुत व्यापक है, क्योंकि यह न केवल भोजन की आपूर्ति करता है, बल्कि यह:

- **आर्थिक आधार**: कृषि भारत की अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) का एक बड़ा हिस्सा योगदान करता है।
- **रोजगार सृजन**: कृषि उद्योग में लाखों लोग कार्यरत हैं। यह विशेष रूप से ग्रामीण भारत में रोजगार का सबसे बड़ा स्रोत है।
- **आधिकारिक आय**: कृषि भारतीय सरकार के राजस्व में एक बड़ा हिस्सा देती है, विशेष रूप से कृषि निर्यात से।
- **सामाजिक समृद्धि**: कृषि देश के विकास में योगदान करती है और सामाजिक समृद्धि की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

3. भू-उपयोग मुख्य शब्द :

भू-उपयोग मुख्य शब्द से संबंधित प्रमुख शब्दों को समझना बहुत जरूरी है, क्योंकि यह कृषि और पर्यावरणीय योजनाओं में बहुत मदद करता है।

- **कृषि भूमि (Agricultural Land)**: वह भूमि जो खेती के लिए उपयोग की जाती है, जिसमें फसलें उगाई जाती हैं।
- **वन क्षेत्र (Forest Area)**: वह भूमि जो वनस्पतियों और पेड़ों से आच्छादित होती है, जिसका उपयोग लकड़ी, घास, या अन्य वन उत्पादों के लिए होता है।
- **निर्माण भूमि (Built-up Area)**: वह भूमि जिसका उपयोग शहरी विकास, इमारतों, सड़कें और अन्य मानव निर्मित संरचनाओं के लिए किया जाता है।
- **पशुपालन क्षेत्र (Grazing Land)**: वह भूमि जो पशुओं को घास चरने के लिए उपयोग की जाती है।

- **नदी और जलाशय (Water Bodies)**: नदियाँ, तालाब, झीलें और अन्य जल स्रोत जो पानी की आपूर्ति के लिए आवश्यक हैं।
- **भूमि उपयोग परिवर्तन (Land Use Change)**: भूमि के एक प्रकार के उपयोग से दूसरे प्रकार के उपयोग में परिवर्तन, जैसे कृषि भूमि को शहरी क्षेत्र में बदलना।

12.5 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

भारत में कृषि की प्रकृति, महत्व एवं भू-उपयोग पर स्व-प्रगति परिक्षण (Self-Assessment) के प्रश्नों के उत्तर निम्नलिखित रूप में दिए जा रहे हैं:

1. भारत में कृषि की प्रकृति क्या है?

भारत में कृषि की प्रकृति अत्यधिक विविध और मौसमी है। यह मुख्य रूप से मानसून पर निर्भर है और यहां के किसानों को **खरीफ** (मानसून) और **रबी** (सर्दियों) की दो प्रमुख ऋतुओं में फसल उगाने की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। कृषि में अनाज (जैसे चावल, गेहूँ), तिलहन, दलहन, सब्जियाँ, फल और वाणिज्यिक फसलें (जैसे गन्ना, कपास) शामिल हैं। कृषि कार्य में पारंपरिक तरीके और तकनीकियों का मिश्रण होता है, लेकिन आधुनिक तकनीकों का भी तेजी से उपयोग बढ़ रहा है।

2. भारत में कृषि का महत्व क्या है?

भारत में कृषि का महत्व बहुत अधिक है, क्योंकि यह:

- **आर्थिक विकास** में मदद करता है, और भारत के कुल GDP का एक बड़ा हिस्सा कृषि क्षेत्र से आता है।
- **रोजगार** का प्रमुख स्रोत है, विशेष रूप से ग्रामीण इलाकों में।
- देश की **खाद्य सुरक्षा** सुनिश्चित करने में अहम भूमिका निभाता है।
- **कृषि निर्यात** (जैसे चाय, मसाले, गन्ना) से भारतीय अर्थव्यवस्था को विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

- **सामाजिक समृद्धि** में योगदान करता है, क्योंकि कृषि से ग्रामीण क्षेत्रों में विकास होता है और किसानों की जीवन-स्तर में सुधार आता है।

3. भारत में कृषि के प्रमुख प्रकार कौन से हैं?

भारत में मुख्य रूप से दो प्रकार की कृषि पद्धतियाँ प्रचलित हैं:

- **उद्भावना (Subsistence Agriculture)**: इसमें किसान अपने परिवार की आवश्यकता के लिए कृषि करते हैं, जैसे चावल, गेहूँ, मक्का आदि उगाना।
- **वाणिज्यिक कृषि (Commercial Agriculture)**: इसमें किसान बाजार के लिए अधिक मात्रा में फसलें उगाते हैं, जैसे कपास, गन्ना, चाय, कॉफी आदि।

4. भू-उपयोग क्या होता है और इसके प्रमुख प्रकार क्या हैं?

भू-उपयोग वह तरीका है जिससे भूमि का विभिन्न उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता है। भारत में भू-उपयोग के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं:

- **कृषि भूमि**: वह भूमि जो खेती के लिए उपयोग की जाती है।
- **वन क्षेत्र**: वह भूमि जो पेड़ों और वनस्पतियों से आच्छादित होती है।
- **निर्माण भूमि**: शहरीकरण के लिए उपयोग की जाती है, जैसे सड़कें, इमारतें।
- **पशुपालन क्षेत्र**: भूमि का उपयोग पशुओं को चराने के लिए किया जाता है।
- **जलाशय और जल क्षेत्र**: नदियाँ, तालाब, झीलें आदि जो जल संग्रहण के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।

5. भारत में भूमि उपयोग परिवर्तन (Land Use Change) के क्या कारण होते हैं?

भारत में भूमि उपयोग परिवर्तन के कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं:

- **शहरीकरण**: बढ़ते शहरी क्षेत्र के कारण कृषि भूमि का शहरी विकास में रूपांतरण होता है।
- **औद्योगिकीकरण**: उद्योगों और फैक्ट्रियों के लिए भूमि का उपयोग बढ़ता है।

- **बढ़ती जनसंख्या**: जनसंख्या में वृद्धि के कारण कृषि भूमि की कमी होती है, और अधिक भूमि शहरीकरण, उद्योग या आवास निर्माण के लिए उपयोग की जाती है।
- **कृषि की बदलती जरूरतें**: बदलते मौसम और कृषि प्रौद्योगिकी के कारण भूमि का उपयोग विभिन्न फसलों के लिए किया जाता है।

6. भारत में कृषि में समृद्धि लाने के लिए किन उपायों की आवश्यकता है?

भारत में कृषि क्षेत्र की समृद्धि के लिए निम्नलिखित उपाय आवश्यक हैं:

- **आधुनिक कृषि तकनीकों का इस्तेमाल**: बेहतर उत्पादन और उर्वरक उपयोग के लिए नई कृषि तकनीकों को अपनाना।
- **जल प्रबंधन**: पानी की उपलब्धता को सुनिश्चित करना और जल के सही उपयोग के लिए योजनाएँ बनाना।
- **कृषि विपणन सुधार**: किसानों को उचित मूल्य पर अपनी फसल बेचने के लिए अधिक विपणन सुविधाएँ उपलब्ध कराना।
- **ऋण और सब्सिडी**: किसानों को बेहतर वित्तीय सहायता और ऋण योजनाएँ प्रदान करना।
- **कृषि शिक्षा**: किसानों को उन्नत कृषि विधियों के बारे में जागरूक करना।

7. भारत में कृषि भूमि का उपयोग किन प्रकार की फसलों के लिए किया जाता है?

भारत में कृषि भूमि का उपयोग विभिन्न प्रकार की फसलों के लिए किया जाता है:

- **अनाज फसलें**: चावल, गेहूँ, मक्का, बाजरा।
- **वाणिज्यिक फसलें**: गन्ना, कपास, तंबाकू, तेलहन, मसाले।
- **दलहन और तिलहन**: अरहर, मूँग, उड़द, तिल।
- **फलों और सब्जियों की खेती**: आम, केले, सेब, आलू, टमाटर, गाजर आदि।

12.6 संदर्भ सूची

- कुमार, आर. (2020). भारत में कृषि की संरचना और विकास. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- शर्मा, पी. (2021). भारतीय कृषि: एक समग्र विश्लेषण. मुंबई: बीके पब्लिकेशन।
- यादव, एस. (2018). भू-उपयोग और कृषि विकास: भारत का परिपेक्ष्य. जयपुर: एमएस प्रकाशन।
- पाटिल, ए. (2022). कृषि नीति और विकास: चुनौतियाँ और अवसर. दिल्ली: विक्रम पब्लिशर्स।
- सिंह, बी. (2019). भारत में कृषि की भूमिका और भू-उपयोग का बदलाव. पुणे: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

12.7 अभ्यास प्रश्न:

निबन्धात्मक प्रश्न

1.भारतीय कृषि की प्रकृति एवं महत्व की विस्तार से व्याख्या कीजिए । 1.

2. भारतीय कृषि पर एक लेख लिखिए। शाह पशामक निक

3. भारत में भू-उपयोग की विवेचना कीजिए। पिछले वर्षों में इसमें हुए परिवर्तनों की व्याख्या कीजिए ।

4. आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका बताइये। भारतीय कृषि की विशेषताएँ एवं समस्याएँ समझाइये। 100

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में जोतों का आकार पर टीप लिखिए।

2. जोतों का अपखण्डन किसे कहते हैं ?

3. राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान बताइये ।

4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कृषि का योगदान स्पष्ट कीजिए ।

5. भारत में भू-उपयोग पर संक्षिप्त टीप लिखिए।

6. भारतीय कृषि की प्रमुख विशेषताएँ क्या है ?

7. भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व बताइये ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्न में भारतीय कृषि की विशेषता कौन सी है ?

(अ) कृषि पर जनसंख्या का अधिक भार

(ब) जोतों के आकार का छोटा होना

(स) कृषि जोतों का अपखण्डन

(द) उपर्युक्त सभी ।

2.भारत में कृषि जोतों के अपखण्डन के लिए उत्तरदायी कारण कौनसा है ?

(अ) उत्तराधिकार के नियम

(ब) जनसंख्या में वृद्धि

(स) संयुक्त परिवारों का विघटन

(द) उपर्युक्त सभी ।

3. वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार कुल कार्यरत जनसंख्या का कितने प्रतिशत भाग प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कृषि पर निर्भर था ?

(अ) 50 प्रतिशत

(ब) 55 प्रतिशत

(स) 60 प्रतिशत

(द) 70 प्रतिशत ।

उत्तर :- (1) द, (2) द, (3) स ।

इकाई- 13
कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता की प्रवृति

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 भारत में फसल प्रतिरूप (पद्धतियाँ)

13.4 फसल प्रतिरूप में परिवर्तन के कारण

13.5 कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के उपाय या सुझाव

13.6 कृषि नीति

13.7 मुख्य शब्द

13.8 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

13.9 संदर्भ सूची

13.10 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

कृषि उत्पादन और उत्पादकता किसी भी देश की आर्थिक समृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विशेष रूप से भारत जैसे कृषि प्रधान देश में, कृषि का सीधा संबंध राष्ट्रीय विकास से जुड़ा हुआ है। कृषि उत्पादन का मतलब है किसी विशेष समय अवधि में भूमि पर उगाई जाने वाली फसलों की मात्रा, जबकि कृषि उत्पादकता से तात्पर्य उस भूमि क्षेत्र में उत्पादित फसल की मात्रा से है, जो भूमि संसाधनों का प्रभावी उपयोग दिखाती है।

भारत में कृषि उत्पादन की प्रवृत्तियाँ समय के साथ बदलती रही हैं, और यह बदलाव कृषि पद्धतियों, जलवायु परिवर्तन, तकनीकी नवाचारों, बाजारों और सरकारी नीतियों के प्रभाव से जुड़ा हुआ है। पिछले कुछ दशकों में, औद्योगिकीकरण, हरित क्रांति, और कृषि प्रौद्योगिकी के उन्नयन ने कृषि उत्पादन को बढ़ाया है, लेकिन कई क्षेत्रों में उत्पादकता वृद्धि की गति धीमी रही है।

वर्तमान में, कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए उन्नत कृषि तकनीकों, जलवायु अनुकूलन, भूमि उपयोग परिवर्तन, और सतत कृषि पद्धतियों पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है। इसके अलावा, कृषि में नवाचार, जैसे कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ड्रोन तकनीकी, और उन्नत सिंचाई प्रणालियों का उपयोग, कृषि उत्पादन को और अधिक बढ़ाने की दिशा में काम कर रहे हैं।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
- विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।

13.3 भारत में फसल प्रतिरूप (पद्धतियाँ)

फसल प्रतिरूप से अभिप्राय किसी समय विशेष के दौरान विभिन्न फसलों के बीच कृषि भूमि के विभाजन से है। प्रायः फसल प्रतिरूप समय-समय पर बदलता रहता है। यदि किसी निश्चित समय में विभिन्न फसलों के अधीन क्षेत्रों के अनुपात में सापेक्षिक परिवर्तन होता है, तो उसे फसल प्रतिरूप में परिवर्तन कहते हैं। अन्य शब्दों में फसल-प्रतिरूप में परिवर्तन का अर्थ विभिन्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल में परिवर्तन से है। सामान्यतः फसलों को दो भागों में विभाजित किया जाता है, यथा- (i) खाद्य फसलें (Food Crops) एवं (ii) गैर-खाद्य फसलें (Non-food Crops) I भारत में फसल प्रतिरूप की प्रमुख विशेषता यह है कि देश में खाद्य फसलों की प्रधानता है। भारत में बोयी जाने वाली प्रमुख खाद्य एवं गैर-खाद्य फसलें निम्न प्रकार है -

(i) खाद्य फसलें (Food Crops)- ये फसलें मनुष्य की भोजन संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। इसके अन्तर्गत गेंहूँ, चावल, दालें, ज्वार, बाजरा, मक्का आदि को शामिल किया जाता है।

(ii) गैर-खाद्य फसलें (Non-food Crops)- इसके अन्तर्गत वे फसलें आती हैं जो कि व्यापार व उद्योग की दृष्टि से महत्वपूर्ण होती हैं। इन फसलों के उत्पादन का मुख्य उद्देश्य उन्हें बेचकर नकदी प्राप्त करने होता है। इन्हें व्यापारिक या नकदी फसलें भी कहते हैं। इन फसलों में तिलहन, गन्ना, कपास, पटसन, चाय, काफी, रबड़, तम्बाकू आदि शामिल की जाती है।

भारत में नियोजन काल में दोनों प्रकार की फसलों के अधीन क्षेत्रफल तथा फसल प्रतिरूप में हुए परिवर्तनों का ब्यौरा तालिका 1 में दर्शाया गया है।

तालिका - 1

भारत में फसल-वितरण का स्वरूप

वर्ष	खाद्यान्न फसलें	गैर-खाद्यान्न फसलें	सभी फसलें
1950-51	74	26	100
1970-71	78	22	100
1980-81	80	20	100
2000-01	75	25	100
2006-07	70	30	100

तालिका - 1 से स्पष्ट है कि 1950-51 में खाद्यान्न एवं गैर-खाद्यान्न फसलों के अधीन क्षेत्रफल क्रमशः 74 प्रतिशत और 26 प्रतिशत था। वर्ष 1980-81 में खाद्यान्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र बढ़कर 80 प्रतिशत हो गया तथा गैर-खाद्यान्न फसलों के अन्तर्गत घटकर 20 प्रतिशत रह गया था । तदुपरान्त 2006-07 में खाद्यान्न फसलों के अधीन क्षेत्र घटकर 70 प्रतिशत तथा गैर खाद्यान्न फसलों के अधीन क्षेत्र बढ़कर 30 प्रतिशत हो गया है।

उल्लेखनीय है कि आधार वर्ष 1981-82 के अनुसार 1970-71 से 2009-10 की अवधि में खाद्यान्न फसलों के अधीन क्षेत्र का सूचकांक 97.9 से घटकर 95.6 हो गया। वहीं गैर-खाद्यान्न फसलों के अधीन क्षेत्र का सूचकांक इस अवधि में 91.1 से बढ़कर 144.3 हो गया। सभी फसलों में यह सूचकांक 96.3 से बढ़कर 106.9 हो गया। संक्षेप में, भारत में विगत 40 वर्षों में गैर-खाद्यान्न या व्यावसायिक फसलों का महत्व बढ़ा है, किन्तु अभी भी देश में खाद्यान्न फसलों की ही प्रमुखता बनी हुई है। वर्तमान समय में नवीन तकनीकी के प्रयोग के फलस्वरूप खाद्यान्न फसलों की खेती भी लाभदायक बन गई है। खाद्यान्न फसलों की कीमतों में तीव्र वृद्धि के कारण किसान अनाज व दलहनों का उत्पादन भी मण्डी में बेचने के लिए करने लगे हैं। अतः अब खाद्यान्न फसलों और व्यापारिक फसलों में पारस्परिक भेद कम हो गया है।

13.4 फसल प्रतिरूप में परिवर्तन के कारण

किसी देश या प्रदेश में फसलों के प्रतिरूप को निर्धारित करने वाले अनेक कारण होते हैं। फसल प्रतिरूप पर देश की जलवायु, मिट्टी, सिंचाई सुविधाएँ, फसलों की कीमतें, उन्नत बीज व उर्वरकों की उपलब्धता, सरकारी नीति व प्रोत्साहन आदि विभिन्न तत्वों का प्रभाव पड़ता है। भारत में फसल प्रतिरूप में परिवर्तन के लिए उपरोक्त कारणों के अलावा निम्न कारण भी उत्तरदायी रहे है। जिनका विवरण निम्नानुसार है :

(1) भारत में खाद्य फसलों के क्षेत्र में वृद्धि का प्रमुख कारण हरित क्रांति के अन्तर्गत उन्नत किस्म के बीजों का विकास तथा उर्वरक और सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि होना रहा है। इसके साथ ही खाद्यान्न फसलों की बढ़ती कीमतों के कारण किसान अब इन फसलों को लाभ की दृष्टि से उत्पादित करने लगे हैं।

(2) देश में गैर-खाद्यान्न या व्यासवसायिक फसलों के क्षेत्र में वृद्धि का कारण भी उन्नत बीजों तथा सिंचाई सुविधाओं का विकास होना है। गैर-खाद्यान्न फसलों विशेषकर तिलहनों, कपास आदि के मूल्यों में तीव्र वृद्धि हुई है जिससे किसान इन फसलों की खेती करने के लिए प्रोत्साहित हुए हैं।

भारत में कृषि उत्पादन

स्वतंत्रता के समय देश में कृषि उत्पादन बहुत कम था और खाद्यान्नों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये बड़ी मात्रा में आयात करना पड़ता था। यही कारण है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही कृषि विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता देकर खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि के चहुँमुखी प्रयास किये गये, किन्तु तृतीय पंचवर्षीय योजना तक इस दिशा में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई। वर्ष 1966 से अधिक उपज देने वाले बीजों के साथ-साथ कृषि की उन्नत विधियों को अपनाने में भारतीय कृषि को एक नई दिशा दी और परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में तेजी से वृद्धि हुई। कृषि के क्षेत्र में हुई इस क्रान्ति को हरित क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है।

भारत में कृषि उत्पादन को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है, यथा खाद्यान्न (Food grains) एवं गैर खाद्यान्न (Non-food grains) I भारत में कुल कृषि उत्पादन में खाद्यान्न का हिस्सा लगभग दो-तिहाई है। भारत की कृषि उत्पादन की प्रवृति को तालिका-2 में दर्शाया गया है।

तालिका - 2

भारत में कृषि उत्पादन की प्रवृति (1950-51 से 2009-10)

(लाख टन)

फसल	इकाई	वर्ष	तृतीय योजना औसत	आठवीं योजना	वर्ष	
		1950-51	1961-66	1992-97	2000-01	2009-10
कुल खाद्यान्न	लाख टन	508	810	1870	1959	2182
चावल	लाख टन	206	351	787	849	891
गेहूँ	लाख टन	64	111	629	687	807
ज्वार	लाख टन	55	88	107	77	70
बाजरा	लाख टन	26	39	67	71	65
मक्का	लाख टन	17	46	98	121	167
दालें	लाख टन	84	111	133	107	146
तिलहन	लाख टन	62	73	219	184	249
गन्ना	लाख टन	571	1092	2584	2992	2777
कपास	लाख गाँठें	30	54	122	97	239

स्रोत :- आर्थिक समीक्षा, 2007-08 एवं आर्थिक समीक्षा 2010-11 से संकलित

तालिका - 2 के विशेषण से स्पष्ट है कि पिछले 60 वर्षों में गेहूँ, चावल, गन्ना, कपास आदि फसलों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। चावल का उत्पादन जहाँ सन् 1950-51 में केवल 206

लाख टन था, बढ़कर सन् 2009-10 में 891 लाख टन हो गया। इसी प्रकार गेहूँ का उत्पादन इस अवधि में 64 लाख टन से बढ़कर 807 लाख टन हो गया। गेहूँ के उत्पादन में हुई उल्लेखनीय वृद्धि का मुख्य श्रेय अधिक उपज देने वाले बीजों को है। ज्वार का उत्पादन जहाँ सन् 1950-51 में केवल 55 लाख टन था बढ़कर आठवीं योजना (1992-97 औसत) 107 लाख टन हो गया किन्तु इसके बाद इसके उत्पादन में कमी हुई और यह 2009-10 में घटकर 70 लाख टन रह गया। यही प्रवृति बाजरा एवं मक्का के उत्पादन की रही।

यद्यपि पिछले 60 वर्षों में दालों एवं तिलहनों के उत्पादन में वृद्धि हुई है, किन्तु यह वृद्धि विशेष उल्लेखनीय नहीं है। दालों का उत्पादन यहाँ सन् 1950-51 में 84 लाख टन थी, बढ़कर 2009-10 में 146 लाख टन हो गई। इसी प्रकार तिलहनों का उत्पादन इस अवधि में 62 लाख टन से बढ़ कर 249 लाख टन हो गया । सन् 1950-51 में गन्ने का उत्पादन 571 लाख टन था जो बढ़कर 2009-10 में 2777 लाख टन हो गया। देश में 1950-51 में केवल 30 लाख टन कपास का उत्पादन हुआ जो बढ़कर 2009-10 में 239 टन हो गया। इसी अवधि में पटसन का उत्पादन 33 लाख से बढ़कर 113 लाख गाठें हो गया। संक्षेप में, खाद्यान्न उत्पादन जो सन् 1950-51 में केवल 508 लाख टन था बढ़कर 1999-2000 में 2098 लाख टन हो गया, किन्तु इसके बाद वर्ष 2000-01 में मौसम के अच्छे न रहने के कारण खाद्यान्न उत्पादन घटकर 1959 लाख टन रह गया। वर्ष 2009-10 में खाद्यान्न उत्पादन पुनः बढ़कर 2182 लाख टन हो गया।

भारत में कृषि उत्पादकता

उत्पादन के किसी एक साधन की एक इकाई मात्रा द्वारा प्राप्त उत्पादन की मात्रा उस साधन की उत्पादकता कहलाती है। कृषि के क्षेत्र में उत्पादकता साधरणतया भूमि अथवा श्रम साधन के आधार पर व्यक्त की जाती है। भूमि की उत्पादकता से तात्पर्य भूमि के एक इकाई क्षेत्र से प्राप्त होने वाले उत्पादन की मात्रा से है, जो प्रति हैक्टेयर उपज किंवटल के रूप में प्रकट की जाती है। भूमि की उत्पादकता कुल उत्पादन की मात्रा

तथा भूमि के क्षेत्रफल के मध्य बदलते हुए सम्बन्धों का विवेचन करती है। उत्पादकता प्रकट करने की यह विधि भौतिक है, क्योंकि इसमें उत्पादों के मूल्य का समावेश नहीं होता है। भूमि उत्पादन-साधन के आधार पर उत्पादकता प्रकट करने का कार्य सरल है, क्योंकि इसे सुगमता से ज्ञात किया जा सकता है।

सरकार कृषि उत्पादों की उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से निरन्तर प्रयास कर रही है। पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत उत्पादकता में वृद्धि लाने के लिए निरन्तर कृषि क्षेत्र में अनेक कार्यक्रम जैसे-अधिक अन्न उपजाओ कार्यक्रम, पैकेज कार्यक्रम, सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम, उत्पादन-साधनों के उत्पादन एवं उपभोग में वृद्धि, कृषि विस्तार कार्यक्रम आदि शुरू किये गये हैं। उत्पादकता में वृद्धि के लिए विशेष प्रयास वर्ष 1965-66 के उपरान्त काल में किये गये। इस काल में उन्नत किस्मों के बीजों का आविष्कार, सिंचाई के साधनों का विकास, कृषि में यन्त्रीकरण, कृषि अनुसन्धान द्वारा नई तकनीकी विधियों का आविष्कार एवं कृषि विस्तार की नई योजनाएँ प्रमुख हैं। देश में हरित क्रान्ति के कारण खाद्यान्नों के उत्पादन विशेषकर चावल एवं गेहूँ की उत्पादकता में वर्ष 1967-68 के उपरान्त काल में विशेष तेजी से वृद्धि हुई है।

पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान प्रमुख फसलों की उत्पादकता में हुई वृद्धि को तालिका- 3 में दर्शाया

तालिका - 3

प्रमुख फसलों की प्रति हैक्टेयर उत्पादकता

(किलो ग्राम प्रति हैक्टेयर)

फसल	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	2000-01	2009-10
सभी खाद्यान्न	552	710	872	1023	1380	1636	1798
चावल	668	1013	1123	1336	1740	1913	2130
गेहूँ	655	851	1307	1630	2281	2743	2830
ज्वार	353	533	466	660	814	772	911
बाजरा	288	286	452	458	658	719	728
मक्का	547	926	1279	1159	1518	1841	2002
दालें	441	539	524	473	578	533	625
तिलहन	481	507	579	532	771	826	955
कपास	88	125	106	152	225	191	395

स्त्रोत :- आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार 2007-08 एवं आर्थिक समीक्षा 2010-11 से

तालिका-3 के विश्लेषण से स्पष्ट है कि देश में पिछले 6 दशकों के काल में विभिन्न फसलों एवं उनके समूहों की उत्पादकता में विभिन्न दर से वृद्धि हुई है। उत्पादकता वृद्धि दर खाद्यान्न फसलों एवं उनके समूह में तिलहन एवं दलहन फसलों की अपेक्षा अधिक है। खाद्यान्नों में उत्पादकता वृद्धिदर चावल एवं गेहूँ की फसलों में अन्य खाद्यान्नों (ज्वार, बाजरा एवं मक्का) की अपेक्षा अधिक है। दालों की फसलों में उत्पादकता वृद्धि दर 1960-61 से 1980-81 के काल में ऋणात्मक रही। उत्पादकता वृद्धि दर हरित क्रान्ति के बाद के काल में पूर्व की अपेक्षा सभी फसलों में अधिक है।

उत्पादकता की माप के लिये प्रति हैक्टेयर उत्पादन के साथ श्रम उत्पादकता का भी अध्ययन किया जाता है। श्रम-उत्पादकता से तात्पर्य प्रति इकाई से प्राप्त उत्पादन की मात्रा से है। यह उत्पादन की मात्रा एवं श्रमिकों की संख्या के मध्य बदलते हुए सम्बन्ध

का अध्ययन है। श्रम उत्पादकता ज्ञात करने का कार्य कठिन होने के कारण, उत्पादकता ज्ञात करने की यह विधि बहुत कम प्रयोग में ली जाती है। इस विधि के अपनाने में विभिन्न प्रकार के श्रमिकों (पुरुष, स्त्री एवं बच्चों) को एक श्रेणी में एवं विभिन्न उत्पादों की उत्पादन मात्रा को रुपयों के रूप में परिवर्तन करना होता है। श्रम-उत्पादकता उस क्षेत्र के श्रमिकों के रहन-सहन के स्तर की सूचक होती है।

भारत के विभिन्न जिलों में भूमि उत्पादकता की भाँति श्रमिक उत्पादकता में बहुत भिन्नता पाई गई है। अध्ययन के अनुसार देश के 53 जिलों में श्रम उत्पादकता 2200 रु. प्रति पुरुष कृषि श्रमिक से अधिक है, जबकि 41 जिलों में श्रम उत्पादकता 1000 रु. प्रति पुरुष कृषि श्रमिक से भी कम है। पंजाब राज्य के सभी 11 जिलों में प्रति पुरुष कृषि श्रम-उत्पादकता 2200 रु. से अधिक थी, जबकि पश्चिम बंगाल, असम, उड़ीसा, बिहार एवं जम्मू व कश्मीर राज्य के किसी भी जिले में प्रति पुरुष कृषि श्रम-उत्पादकता 2200 रु. से अधिक नहीं पाई गई। अधिक उत्पादन वाले जिलों में श्रम-उत्पादकता अधिक एवं स्थिर उत्पादन या कम कृषि उत्पादन वाले जिलों में श्रम-उत्पादकता कम पाई गई है। अतः देश में निर्धनता-उन्मूलन के लिए भूमि उत्पादकता के साथ-साथ श्रम-उत्पादकता में भी वृद्धि करना आवश्यक है। प्रो. गुन्नार मिर्डाल के अध्ययन के अनुसार, भारत में न केवल प्रति इकाई भूमि की उत्पादकता कम है, बल्कि श्रमिकों की उत्पादकता का स्तर भी कम है। भूमि एवं श्रम-उत्पादकता में वृद्धि देश की समृद्धि के लिए आवश्यक है।

भारत में उत्पादकता के स्तर की तुलना विश्व के देशों से करने के उद्देश्य से तालिका - 4 में कुछ प्रमुख फसलों के उत्पादकता स्तर की तुलना प्रस्तुत की गई है। इस तालिका से स्पष्ट होता है कि यद्यपि पिछले 65 वर्षों में भारत में उत्पादकता में वृद्धि हुई है तथापि यह अनेक देशों से बहुत कम है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि विश्व में चावल के कुल उत्पादन में भारत का दूसरा स्थान है लेकिन भारत चावल की उत्पादकता में 54 वें स्थान पर है। संसार के विभिन्न देशों में गेहूँ के कुल उत्पादन में भारत का प्रथम स्थान होते हुए भी उत्पादकता के क्षेत्र में 38वें स्थान पर है। इसी प्रकार मूँगफली के उत्पादन में प्रथम

एवं सरसों के उत्पादन में द्वितीय स्थान भारत का विश्व में होते हुए भी इनकी उत्पादकता में भारत का विश्व में 72वाँ व 33वाँ स्थान है।

तालिका - 3

प्रमुख देशों में प्रति हैक्टेयर उत्पादकता - 2006

(किलोग्राम प्रति हेक्टेयर)

फसल / देश		उत्पादन	फसल / देश		उत्पादन
1. गेहूँ	फ्रांस	7130	3. कपास	चीन	840
	अमेरिका	2825		अमेरिका	690
	चीन	4455		पाकिस्तान	530
	भारत	2619		भारत	362
2. चावल	जापान	6336	4. मूँगफली	अमेरिका	2964
	चीन	6265		चीन	3118
	अमेरिका	7694		जापान	2326
	भारत	3124		भारत	859

तालिका - 4 के विश्लेषण से स्पष्ट है कि भारत में गेहूँ की उत्पादकता फ्रांस की तुलना में केवल 40 प्रतिशत है। चीन की तुलना में भी भारत में गेहूँ की उत्पादकता मात्र 59 प्रतिशत है। जहाँ तक चावल का सम्बन्ध है, भारत में चावल की उत्पादकता जापान में उत्पादकता का 49 प्रतिशत एवं चीन में उत्पादकता का 49 प्रतिशत जबकि अमेरिका में उत्पादकता का 40 प्रतिशत है। भारत में कपास की उत्पादकता चीन की उत्पादकता की तुलना में एक-तिहाई एवं पाकिस्तान की तुलना में 68 प्रतिशत है। इसी प्रकार भारत में मूँगफली की उत्पादकता अमेरिका की तुलना में 29 प्रतिशत, जापान की तुलना में 36 प्रतिशत तथा चीन की तुलना में 27 प्रतिशत है। यही स्थिति भारत में पैदा होने वाली अन्य

फसलों की भी है। फलतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि भारत में कृषि उत्पादकता बहुत कम है और तीव्र गति से कृषि विकास के द्वारा इसमें वृद्धि की जानी चाहिए ।

भारत में कृषि उत्पादकता के कम होने के कारण

भारत में कृषि की उत्पादकता के कम होने के कारण को 5 भागों में विभक्त किया जा सकता है, यथा (i) भूमि सम्बन्धी कारण, (ii) श्रम सम्बन्धी कारण, (iii) पूँजी सम्बन्धी कारण, (iv) प्रबन्ध सम्बन्धी और (v) अन्य कारण। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है :-

1. भूमिसंबंधी कारण

(a) भूमि की उर्वरा शक्ति में ह्रास उत्पादकता में बाधक प्रथम तत्व भूमि की उर्वरा शक्ति में निरन्तर ह्रास होना है। कृषकों द्वारा भूमि पर निरन्तर फसलों के उत्पादन करने एवं उनके कारण होने वाले भोजन तत्वों की कमी को पूरा करने के लिए आवश्यक मात्रा में खाद एवं उर्वरकों का उपयोग नहीं करने से भूमि की उर्वरा शक्ति निरन्तर कम होती जाती है। हवा व पानी से भूमि के कटाव, भूमि पर निरन्तर पानी भरा रहने, उचित फसल चक्र का अभाव भी भूमि की उर्वरा शक्ति के हास में वृद्धि करते हैं।

(b) जोत उप-विभाजन एवं अपखण्डन भूमि सम्बन्धी दूसरी प्रमुख समस्या देश में प्रचलित उत्तराधिकार कानून के कारण जोत का उप-विभाजन एवं अपखण्डन होने की है। इस समस्या के कारण जोत का आकार निरन्तर कम होता जाता है एवं भूमि के खण्ड एक-दूसरे से दूर होते जाते हैं। अतः जोत आर्थिक दृष्टि से लाभकर नहीं होती है। फलतः उत्पादकता कम रहती है।

(c) भू-धारण की दोष-युक्त पद्धति देश में जागीरदारी, जमींदारी, पट्टेदारी, बटाईदारी, अनुपस्थित जमींदारी (Absentee Landlordism) आदि अनके प्रकार की भू-धृति कुरीतियाँ शताब्दियों से प्रचलित हैं। इनके कारण भूमि के स्वामी वास्तविक कृषक न होकर जमींदार होते हैं। जमींदार, कृषकों से उत्पादन का अधिक भाग लगान के रूप से

प्राप्त करते हैं, जिसके कारण कृषकों में उत्पादन वृद्धि की प्रेरणा का हास होता है और प्रति हैक्टेयर उत्पादन कम रहता है।

(d) अनार्थिक जोतें देश में जोत का औसत आकार बहुत कम (1.57 हैक्टेयर) है। कृषि जनगणना 1990-91 के अनुसार देश में 59.0 प्रतिशत जोतें एक हैक्टेयर से कम भूमि के क्षेत्र की हैं तथा इनके पास कुल कृषित भूमि का 14.9 प्रतिशत भू-क्षेत्र ही है। जोत के आकार के कम होने से जोत आर्थिक दृष्टि से लाभकर नहीं होती है। प्रति इकाई क्षेत्र से उत्पादन कम प्राप्त होता है एवं उत्पादन लागत अधिक आती है। दूसरी ओर अनेक जोतें काफी बड़े आकार की हैं जिनके पास उत्पादन के लिए पर्याप्त उत्पादन-साधन नहीं होने से काफी भूमि अकृषित रहती है।

2. श्रमसंबंधी कारण कृषि-क्षेत्र में श्रम सम्बन्धी समस्याओं के कारण श्रमिकों की कार्यक्षमता कम रहती है और परिणामस्वरूप उत्पादन कम होता है। कृषि उत्पादकता कम रहने में श्रम सम्बन्धी प्रमुख कारण निम्नानुसार है:-

(i) श्रमिकों का भूमि पर अधिक भार देश में जनसंख्या की अधिकता, कृषि व्यवसाय को उत्तम व्यवसाय मानने, गाँवों में रोजगार के लिए कुटीर उद्योगों का अभाव आदि के कारण कृषि क्षेत्र में श्रमिकों का भार अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक है। भारत में प्रति कृषि श्रमिक 1.2 हैक्टेयर भूमि है जबकि इस्रायल में 4.1 हैक्टेयर, अर्जेन्टाइना में 13.1 हैक्टेयर, स्पेन में 4.4 हैक्टेयर, मैक्सिको में 4.1 हैक्टेयर, टर्की में 2.6 हैक्टेयर एवं पाकिस्तान में 1.5 हैक्टेयर भूमि क्षेत्र है। इसके साथ ही भारत में जनसंख्या की अधिकता के कारण प्रति व्यक्ति भूमि का क्षेत्र मात्र 0.33 हैक्टेयर ही है जो कि अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि एवं भूमि के क्षेत्र की सीमितता के कारण प्रति व्यक्ति भूमि का क्षेत्र निरन्तर कम होता जा रहा है। फलतः कृषि की उत्पादकता कम रहती है।

(ii) कृषि श्रमिकों में व्याप्त बेरोजगारी भारतीय कृषि मौसमी व्यवसाय है। मौसम के प्रारम्भ (फसल की बुवाई) व अन्त (फसल की कटाई) में कार्य की अधिकता के कारण

कृषि श्रमिकों की माँग अधिक होती है। वर्ष के अन्य समय में कार्य उपलब्ध नहीं होने से कृषि श्रमिक बेकार रहते हैं। कृषि श्रमिकों को वर्ष में औसतन 5-6 माह रोजगार उपलब्ध होता है और शेष 6-7 माह में बेकार रहते हैं। रोजगार की निरन्तर उपलब्धि नहीं होने से श्रमिकों की कार्यक्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और वे अपनी समुचित कार्य क्षमता का उपयोग उत्पादन बढ़ाने में नहीं कर पाते ।

(iii) कृषि श्रमिकों की मजदूरी का स्तर अन्य क्षेत्रों के श्रमिकों की अपेक्षा कम होना – कृषि श्रमिकों में व्याप्त बेरोजगारी के साथ-साथ उनको उपलब्ध कार्य की मजदूरी भी अन्य उद्योगों की अपेक्षा कम मिलती है। इसका मुख्य कारण कृषि क्षेत्र में कार्य कर रहे श्रमिकों का संगठित नहीं होना, कृषि-श्रमिकों की माँग व पूर्ति में असन्तुलन, श्रमिकों का गाँव छोड़कर शहर में कार्य के लिए जाने को तैयार नहीं होना तथा श्रमिकों द्वारा कृषि व्यवसाय को उत्तम व्यवसाय मानना है। कृषि श्रमिकों को मजदूरी कम प्राप्त होने के कारण उनका रहन-सहन का स्तर अन्य उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों की तुलना में न्यूनतम स्तर का होता है, जिससे उनकी कार्यक्षमता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

3. पूँजी सम्बंधित कारण कृषि क्षेत्र में पूँजी सम्बन्धी प्रमुख समस्याएं निम्न हैं, जो उत्पादन वृद्धि में बाधक होती हैं-

(i) कृषि में स्थायी पूँजी की अधिक आवश्यकता - कृषि व्यवसाय में अन्य उद्योगों की अपेक्षा भूमि-सुधार कार्य करने, कुआ बनाने, सिंचाई की नालियाँ बनाने, खेत की बाड़ लगाने, ट्रेक्टर एवं अन्य मशीनें खरीदने आदि कार्यों के लिए अधिक स्थायी पूँजी की आवश्यकता होती है। कृषि क्षेत्र में बचत के कम होने के कारण कृषक आवश्यक राशि में स्थायी पूँजी निवेश नहीं कर पाते हैं। कृषि में स्थायी पूँजी की राशि अधिक समय तक निवेश रहने के कारण ऋणदात्री संस्थाएँ कृषकों को लम्बे समय के लिए ऋण देने में हिचकिचाती हैं। कृषकों को आवश्यक मात्रा में स्थायी पूँजी उपलब्ध नहीं होती है एवं उपलब्ध स्वीकृत ऋण-राशि पर ब्याज की दर अधिक देनी होती है। याएकोछ। है

(ii) कार्यगत पूँजी का अभाव - कृषि व्यवसाय में उत्पादन साधनों-बीज, खाद, उर्वरक, कीटनाशी दवाइयों के क्रय करने, श्रमिकों को मजदूरी का भुगतान करने, बिजली व तेल के भुगतान आदि कार्यों के लिए कार्यगत पूँजी की अधिक आवश्यकता होती है। कृषि में आवश्यक बचत के अभाव में कृषक कार्यगत पूँजी भी ऋणदात्री संस्थाओं से उधार लेते हैं। लघु कृषक आवश्यक प्रतिभूति के अभाव में कार्यगत पूँजी ऋण के रूप में प्राप्त नहीं कर पाते हैं, जिससे उचित मात्रा में उत्पादन-साधनों का उपयोग नहीं हो पाता है और फार्म पर उत्पादन कम होता है।

4. प्रबंधसंबंधी कारण प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याओं में कृषकों को फार्म-प्रबन्ध सिद्धान्तों का ज्ञान न होना, कृषकों की रूढ़िवादिता, जोखिम वहन क्षमता का अभाव एवं कृषि की उन्नत विधियों का ज्ञान न होना प्रमुख हैं। फार्म प्रबन्ध-ज्ञान कृषकों को फार्म पर लागत में कमी करने तथा आय में वृद्धि करने में सहायक होता है। फार्म उत्पादन के सभी उत्पादन-साधन कृषकों के पास होते हुए भी, प्रबन्ध ज्ञान के अभाव में वे फार्म से अधिकतम उत्पादन प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

5. अन्य कारण-कृषि में उत्पादकता कम रहने के अन्य कारण निम्न प्रकार है कि (

(i) ठोस कृषि-नीति का अभाव सरकार स्वतंत्रता के समय से ही कृषि उत्पादन में वृद्धि की नीति को प्राथमिकता प्रदान कर रही है, लेकिन इस विषय पर सरकार की वर्तमान में भी कोई ठोस नीति नहीं है। उदाहरणतया-सरकार भूमि की अधिकतम सीमा, भू-धृति पद्धति, कृषि-कर, कृषि-उत्पादन एवं उत्पादन-साधनों की कीमत नीति में निरन्तर परिवर्तन करती रही है। परिवर्तनों की सम्भावना की अवस्था में निर्धारित नीतियाँ पूर्ण रूप से कार्यान्वित नहीं हो पाती हैं। निर्धारित नीति के समय पर कार्यान्वित नहीं होने से निर्धारित लक्ष्य भी प्राप्त नहीं होते हैं। परिवर्तनशील नीतियाँ अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न करती हैं जिससे कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता दोनों कम रहती हैं।

(ii) विपणन एवं कीमतों सम्बन्धी कारण कृषि उत्पादन में वृद्धि होते हुए भी कृषकों को कृषि व्यवसाय से उत्पादों की उचित विपणन व्यवस्था व उपयुक्त कीमत-नीति के अभाव

में अनुकूलतम लाभ प्राप्त नहीं हो रहा है। कृषि वस्तुओं की कीमतों में अत्यधिक उतार-चढ़ाव, मण्डी में विपणन मध्यस्थतों की अधिकता, खाद्यान्नों के विपणन में विपणन लागत की अधिकता, विपणन कुरीतियाँ, नियन्त्रित मण्डियों का अभाव, कृषकों की कीमत ज्ञान की अज्ञानता, संग्रहण के लिए गोदामों का अभाव आदि समस्याओं के कारण कृषकों को उत्पाद के विक्रय से उचित कीमत प्राप्त नहीं होती है।

(iii) सिंचाई एवं विद्युतीकरण भारतीय कृषि की एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या सिंचाई की सुविधा का आवश्यक मात्रा में उपलब्ध नहीं होना, विद्युतीकरण की सुविधाओं का गाँवों में विकास न होना और समय पर विद्युत सुविधा उपलब्ध नहीं होना है।

(iv) उत्पादन-साधनों का उचित समय एवं उचित कीमत पर उपलब्ध नहीं होने की समस्या - हरितक्रान्ति एवं तकनीकी ज्ञान के प्रसार के कारण, कृषक उत्पादन-साधनों-संकर एवं बौने किस्म के बीज, उर्वरक, कीटनाशी दवाइयों आदि का अधिक मात्रा में उपयोग करने लगे हैं, किन्तु उत्पादन के ये साधन उन्हें उचित कीमत पर आवश्यक मात्रा में समय पर उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। अतः उत्पादन-साधनों के अभाव के कारण उत्पादन एवं उत्पादकता में पर्याप्त वृद्धि नहीं हो पाती।की

(v) फसल व पशु बीमा सुविधा उपलब्ध न होना कृषि क्षेत्र में जोखिम के कारण उत्पादन में अनिश्चितता बनी रहती है। प्रतिवर्ष किसी न किसी क्षेत्र के कृषक ओला, सूखा, समय पर वर्षा के नहीं होने, आग, बीमारियों आदि से प्रभावित होते रहते हैं, इससे उनके भावी उत्पादन पर विपरीत प्रभाव आता है।

उपर्युक्त समस्याओं के कारण कृषकों में उत्पादन वृद्धि की प्रेरणा का ह्रास होता है। परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता दोनों कम रहती है।

13.5 कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के उपाय या सुझाव

कृषिगत उत्पादकता में वृद्धि के लिए निम्नलिखित उपाय सुझाये जा सकते हैं -

(1) कृषि आदानों की समुचित व्यवस्था (To Manage Agricultural Inputs) - कृषिगत उत्पादकता बढ़ाने के लिए कृषि आदानों, जैसे उन्नत बीज, उर्वरक, खाद, उन्नत औजार,

कीटनाशक दवाएँ आदि की समुचित व्यवस्था आवश्यक है। ये उचित मूल्य पर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराए जाने चाहिए। वर्ष 2003-04 तक देश में कुल 950 लाख हैक्टेयर भूमि में उन्नत बीजों का प्रयोग किया गया एवं 2009-10 में 265 लाख टन उर्वरकों का उपयोग किया गया।

(2) सिंचाई साधनों का विकास (To Develop Means of Irrigation) भारतीय कृषि की मानसून पर निर्भरता कम-से-कम करने के लिए सिचाई साधनों का विकास किया जाये। सिंचाई के लिए भूमिगत एवं भूमि की सतह पर उपलब्ध जल का पूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए ।

(3) नवीन तकनीकी का प्रयोग (Use of New Techniques) - कृषिगत उत्पादकता बढ़ाने के लिए नवीनतम तकनीक के प्रयोग को प्रोत्साहन देना चाहिए। इस प्रकार भारतीय कृषक को आधुनिक लोहे के हलों, ट्रेक्टर, थ्रेशिंग मशीनों, विद्युत एवं डीजल पम्पों का व्यापक रूप से प्रयोग करना चाहिए।

(4) भूमि पर जनभार कम करना (To Reduce Population Pressure on Land) कृषि क्षेत्र में लगे लोगों के लिए कृषि के अतिरिक्त अन्य ऐसे उद्योगों का विकास करना चाहिए जिनमें उन्हें काम मिल सके। इससे कृषि पर जनभार कम होगा और उत्पादकता में वृद्धि होगी। काम के नये क्षेत्र खोजकर कृषि पर जनभार को कम किया जा सकता है।

(5) कीमतों में स्थिरता (Price Stability)- कृषि क्षेत्र में उत्पादकता को प्रोत्साहन देने के लिए ऐसे उपाय अपनाये जायें जिनमें कृषि वस्तुओं की कीमतों में स्थिरता बनी रहे। इस हेतु सरकार को चाहिए कि वह बुवाई के पूर्व उन मूल्यों की घोषणा कर दे जिसे वह फसल आने पर क्रय करने को तैयार हो

(6) विपणन व्यवस्था में सुधार (Reform in Marketing System) - वर्तमान विपणन व्यवस्था में सुधार करके कृषकों को उत्पादन प्रोत्साहन दिया जा सकता है। इस हेतु कृषकों को कीमतों की सूचना, माल गोदामों की व्यवस्था, दलाली प्रथा की समाप्ति,

अनुचित कटौतियों पर रोक एवं उत्पादन प्रोत्साहन-प्रधान कीमतें देनी चाहिए। इस दिशा में सहकारी विपणन एवं नियमित बाजार व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया जाये ।

(7) भूमि-सुधार कानूनों का क्रियान्वयन (Implementation of Land Reform Laws) - भूमि सुधार कानूनों को प्रभावशाली ढंग से लागू करके कृषक को भूमि स्वामी सम्बन्धी अधिकार दिये जायें । भूमि को जोत का आकार एक सीमा से अधिक छोटा न हो, इस सम्बन्ध में कानून बनाए जायें। भूमि स्वामी अधिकार प्राप्त कृषक को नई तकनीक अपनाने के लिए बाध्य किया जाये ताकि कृषिगत उत्पादकता बढ़ सके ।

(8) पर्याप्त साख व्यवस्था (To Manage Credit Facilities) कृषि क्षेत्र में नवीनतम तकनीकी को प्रोत्साहन देने के लिए कृषकों को उचित व उदार शर्तों पर पर्याप्त साख व्यवस्था कम ब्याज पर उपलब्ध कराई जाये ताकि वह आधुनिक औजार, रासायनिक खाद एवं उन्नत बीज आदि क्रय कर सकें। इस हेतु सहकारी साख संस्थाओं के साथ-साथ व्यापारिक बैंकों का विकास किया जाये ताकि किसानों को समय पर साख उपलब्ध हो सके। विभिन्न संस्थाओं द्वारा वर्ष 2009-10 में कुल 3,72,478 करोड रु. के ऋण प्रदान किए गए।

(9) कृषि अनुसंधान (Agricultural Research) - कृषिगत उत्पादकता की वृद्धि के लिए कृषि अनुसंधानों को पर्याप्त मात्रा में प्रोत्साहन दिया जाये। इन अनुसंधानों के लाभदाय्क परिणाम कृषकों तक तुरन्त पहुँचाये जायें ताकि वे उन्हें तुरन्त अपना सकें। अनुसंधान का उद्देश्य 'कम लागत पर अधिक से अधिक उत्पादन' होना चाहिए ।

(10) समन्वय (Coordination) - कृषि विकास से सम्बन्धित विभिन्न कार्यक्रमों में उचित समन्वय एवं सहयोग स्थापित करना आवश्यक है ताकि इनकी दोहरी व्यवस्था पर होने वाले अनावश्यक व्यय को रोका जा सके ।

(11) अन्य उपाय (Other Measures) - (i) सहकारी कृषि को अधिक से अधिक प्रोत्साहन दिया जाये । (ii) फसल बीमा कार्यक्रम लागू किया जाये ताकि मौसम सम्बन्धी अनिश्चितता से मुक्ति मिल सके । (iii) बारानी या सूखी खेती को लाभदायक बनाने

सम्बन्धी अनुसंधान में तेजी लाई जाये। (iv) भू-क्षरण को रोका जाये। (v) पौध संरक्षण कार्यक्रम को प्रोत्साहन दिया जाये। (vi) गहन कृषि एवं बहुफसली कृषि कार्यक्रम को अधिक-से-अधिक बढ़ावा दिया जाये। (vii) ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों के निर्माण को प्रोत्साहन दिया जाये। (viii) चकबन्दी प्रणाली प्रभावी ढंग से लागू की जाये। (ix) कीड़े-मकोड़ों को नष्ट करने के लिए व्यापक अभियान चलाया जाये आदि ।

सरकार द्वारा किये गये प्रयास

पंचवर्षीय योजनाओं में कृषिगत उत्पादकता बढ़ाने के लिए निम्नलिखित प्रयास किये गये-

(1) सिंचाई सुविधा (Irrigation Facilities) - सरकार ने कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए लघु, मध्यम एवं वृहद सिंचई सुविधाओं का पर्याप्त मात्रा में विकास किया है। इस क्षेत्र पर सरकार ने 98 हजार करोड़ रुपये से भी अधिक का विनियोग किया है। इस विनियोग से वर्ष 1950-51 में जहाँ कुल 2.25 करोड़ हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई होती थी, जो कुल फसली क्षेत्र का 17.11 प्रतिशत था, वहीं 2009-10 में 10.82 करोड़ हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध हो गईं जो कुल फसली क्षेत्र का लगभग 44 प्रतिशत है। (通)

(2) उर्वरकों का प्रयोग (Use of Fertilizers) – सरकार ने उर्वरकों के प्रयोग के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन दिया है। इसके परिणामस्वरूप 1960-61 में प्रति हैक्टेयर उर्वरकों की खपत 1.9 किलो थी, जो 2008-09 में बढ़कर 96 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर से भी अधिक हो गई।

(3) उन्नत बीजों का प्रयोग (Use of High Yielding Seeds) - सरकार ने उन्नत बीजों के वितरण की पर्याप्त व्यवस्था की है। वर्ष 1966-67 में 18.9 लाख हैक्टेयर पर ये बीज बोये गये थे जो 2003-04 में 950 लाख हैक्टेयर हो गया। सरकार ने राष्ट्रीय बीज निगम की भी स्थापना की।

(4) चकबन्दी (Consolidation of Holdings) – कृषकों के खेतों के बिखराव एवं अप-खंडन को रोकने के लिए चकबन्दी कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। पंजाब एवं हरियाणा में

चकबन्दी का कार्य पूरा हो चुका है। उत्तरप्रदेश में 90 प्रतिशत कार्य पूर्ण हो चुका है। देश में वर्तमान में 15.10 करोड़ हैक्टेयर भूमि पर चकबन्दी की जा चुकी है।

(5) कीटाणुनाशक दवाओं का प्रयोग (Use of Pesticides) – कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए कीटाणुनाशक कार्यक्रम को व्यापक पैमाने पर लागू करने के लिए केन्द्रीय कृषि मंत्रालय में एक अलग से सैल स्थापित किया गया है। फसली बीमारियों एवं कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए हवाई जहाजों से भी दवाओं का छिड़काव किया जाता है।

(6) साख की व्यवस्था (Management of Credit)- कृषि उत्पादकता के लिए साख महत्वपूर्ण तत्व है। सरकार ने व्यापारिक बैंकों, सहकारी बैंकों एवं अन्य संस्थागत एजेन्सियों के माध्यम से कृषि क्षेत्र को पर्याप्त साख उपलब्ध कराई है। इसी दिशा में ग्रामीण विकास बैंकों की भी स्थापना की है। वर्ष 1993-94 में कृषि साख के रूप में विभिन्न संस्थाओं द्वारा 15100 करोड़ रु. के ऋण बाँटे गए। ये ऋण बढ़कर वर्ष 2000-01 में 52,714 करोड़ रुपए तथा वर्ष 2010-11 में 3,75,000 करोड़ रुपए हो गये हैं।

(7) कृषि मूल्यों में स्थिरता (Stability in Agricultural Price) - इसके लिए सरकार ने राष्ट्रीय कृषि मूल्य आयोग की स्थापना की है जो समय-समय पर सरकार को कृषि मूल्यों के निर्धारण के लिए सुझाव देता है।

(8) प्रशिक्षण सुविधा (Training Facilities) - कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए कृषकों को नवीनतम तकनीकी की जानकारी होना आवश्यक है। सरकार ने इसके लिए अनेक प्रकार की 2050 से भी अधिक प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की है।

(9) बाजारों का नियमितीकरण (Regulation of Markets) कृषकों को विपणन सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करने के लिए लगभग 3613 कृषि बाजारों (मंडियों) को नियमित बाजारों में बदला गया है।

(10) शिक्षा एवं अनुसंधान (Education and Research) - कृषि सम्बन्धी शिक्षा एवं अनुसंधान देने के लिए सरकार ने कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना की है। वर्तमान में देश में 26 कृषि विश्वविद्यालय और 59 कृषि महाविद्यालय हैं।

13.6 कृषि नीति

सरकार की कृषि नीति, जिसे राष्ट्रीय कृषि नीति की संज्ञा दी गई है, की घोषणा जुलाई 2000 को की गई। यह एक व्यापक नीति है और इसमें कृषि क्षेत्र से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। इस नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार हैं:- किसी

(i) कृषि क्षेत्र में विद्यमान क्षमता का समुचित उपयोगका एक इर्शक प्रक

(ii) ग्रामीण क्षेत्र में आधारभूत संरचना को सुदृढ़ बनाना,

(iii) कृषि से सम्बन्धित उद्योग एवं व्यापार को बढ़ावा देना,

(iv) ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार अवसरों का निर्माण करना,

(v) छोटे कृषकों एवं खेतिहर मजदूरों के जीवन स्तर में सुधार करना,

(vi) भू-मण्डलीकरण से उत्पन्न होने वाली चुनौतियों का सामना करना,

(vii) विभिन्न फसलों का उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि करने के लिये संस्थागत एवं तकनीकी घटकों का विस्तार करना आदि ।

कृषि नीति का मूल उद्देश्य तीव्र विकास की ओर कृषि को आगे बढ़ाना है जिससे कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को नई दिशा दी जा सके। इस नीति में लक्ष्य यह रखा गया है कि कृषि के क्षेत्र में 4.2 प्रतिशत वार्षिक की दर से वृद्धि हो। इसके साथ ही कृषि नीति का उद्देश्य यह भी है कि इससे होने वाले लाभ सभी स्थानों और कृषकों को मिले। इसके साथ ही उदारीकरण एवं भू-मण्डलीकरण की चुनौतियों का सामना करते हुए कृषि-पदार्थों के निर्यात बढ़ाने का लक्ष्य भी इस नीति में रखा गया (C)

राष्ट्रीय कृषि नीति (2000) का क्रियान्वयन

राष्ट्रीय कृषि नीति-2000 के क्रियान्वयन हेतु भी अनेक उपाय सुझाये गये हैं। नई आर्थिक नीति के एक भाग के रूप में इसका क्रियान्वयन किया जाना है। सरकारी नियंत्रणों को कम करके निजी क्षेत्र में पूँजी निवेश में वृद्धि करना प्रस्तावित है। इस नीति के क्रियान्वयन के प्रमुख बिन्दु निम्न प्रकार हैं-

1.कृषि उपज के लिये बाजार को उदार बनाना और उन सभी नियंत्रणों तथा प्रतिबन्धों को हटाना जिनसे कृषकों की आय वृद्धि में रुकावट पैदा होती है। इससे खेती करने वालों को अपने प्रयास एवं निवेश का पूरा-पूरा प्रतिफल प्राप्त होना सम्भव होगा। देश के विभिन्न भागों में कृषि उपजों के आने-जाने के रास्ते में जो रुकावटें हैं, उन्हें दूर करने से भी कृषकों को लाभ होगा।

कृषि से सम्बन्धित कार्यकलापों के सुचारु रूप से संचालन के लिये ऋण की उपलब्धता को सरल एवं सुविधाजनक बनाया जावेगा। ग्रामीण एवं कृषि-वित्त को समय पर एवं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराने के लिये संस्थागत ढाँचे को सुदृढ़ किया जावेगा। प्रयास यह होगा कि औद्योगिक क्षेत्र को जो सुविधाएँ उपलब्ध हैं, उनका विस्तार खेती तक किया जा सके। प्रस्ताव यह है कि ऋण देने वाली संस्थाएँ बचत, निवेश और जोखिम-प्रबन्धन के क्षेत्र में अपनी भूमिका भली प्रकार से निभा सकें। साथ ही सरकारी ऋण समितियों के सम्बन्ध में संरचनात्मक सुधार लाए जाएँगे जिससे कि उफसरशाही के अत्यधिक प्रभाव और राजनैतिक हस्तक्षेप को दूर करके उनको अपने कार्य में सक्षम बनाया जा सके ।

कृषकों के अपने निवेश के सहित पूँजी निर्माण में वृद्धि लाने तथा कृषि-पदार्थों के निर्यात को बढ़ावा देने के लिये अनुकूल आर्थिक वातावरण के निर्माण का भी नीति में प्रावधान है। इसके लिये कृषि क्षेत्र के लिये प्रोत्साहन व्यवस्था में जो विकृतियाँ पैदा हो गई हैं, को दूर करना, घरेलू और विदेशी बाजारों में सुधार लाना तथा कराधान ढाँचे को युक्तिसंगत बनाने की व्यवस्था है।

निजी कम्पनी क्षेत्र के निवेश को प्रोत्साहन देना भी प्रस्तावित है। यह निवेश कृषि अनुसंधान, मानव संसाधन विकास तथा विपणन सम्बन्धी कार्यों में प्रस्तावित है। साथ ही निजी क्षेत्र को इस बात के लिये अभिप्रेरित किया जायेगा कि पट्टे पर भूमि लेकर वे कृषि कार्य के संचालन में भाग ले सकें। कारण यह है कि निजी क्षेत्र के पास साधन अधिक होते हैं और उनकी जोखिम उठाने की क्षमता भी अधिक होती है। साथ ही सरकारी

समितियों सहित निजी कम्पनियों और निगमों का डेरी उद्योग, मुर्गी पालन आदि क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर सहारा लिया जावेमा।

5. भूमि सुधारों के अन्तर्गत उप-विभाजन और विखण्डन की समस्या के समाधान के लिये चकबन्दी के काम में तेजी लाने पर जोर दिया गया है। कास्तकारों और बटाईदारों की दशा सुधारने तथा उनके अधिकारों की सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया है। साथ ही इस बात की भी व्यवस्था की गई कि भूमि सम्बन्धी रिकार्ड पूरे, सही एवं नवीनतम बने रहें।ीलाचटके

6. अप्रयुक्त बंजर भूमि को खेती और वनरोपण के लिये प्रयोग करने की भी व्यवस्था की गई है। जल के सम्बन्ध में सतही और स्थल जल के संयोजित प्रयोग को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। इसी प्रकार प्रौद्योगिकी के सम्बन्ध में, इससे जुड़े संगठनों, जैसे राष्ट्रीय बीज निगम, राज्य फार्म निगम का पुनर्गठन किया जायेगा, ताकि निवेश और श्रमशक्ति का भरपूर उपयोग सुनिश्चित हो सके।

मूल्यांकन

पिछले 60 वर्षों से भारतीय कृषि अनेक समस्याओं जैसे- निम्न विकास दर, न्यून उत्पादकता, सीमित निर्यात, अपर्याप्त निवेश, घटिया तकनीकी, क्षेत्रीय असमानता आदि से घिरी हुई है। इन समस्याओं को हल करने में राष्ट्रीय कृषि नीति महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। वास्तविकता यह है कि नई कृषि नीति देश की अर्थव्यवस्था के अनुरूप है और तीव्र आर्थिक विकास में प्रभावी योगदान दे सकती है। इस नीति की अनेक विशेषताएँ हैं, जैसे कृषि विकास की ऊँची दर (4% से अधिक), मजबूत बुनियादी संरचना, कृषि आधारित उद्योगों का विस्तार, अधिक रोजगार, विश्व बाजार की चुनौतियों का सामना करना आदि । निश्चित ही यह नीति विकास मूलक एवं न्याय संगत है।

कृषि नीति के उद्देश्य को मूर्त रूप देने के लिये सुझाये गये उपाय उपयुक्त तथा वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल हैं। नीति में कृषि क्षेत्र में अनेक सुधारों की व्यवस्था है। उदाहरणार्थ- कृषि पदार्थों को भेजने-मँगाने पर जो तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगे हुए हैं,

को उत्तरोत्तर कम करके बाजार-प्रणाली के संचालन को प्रोत्साहित करना । इसी प्रकार कृषि कलापों में निजी कम्पनी क्षेत्र की बड़े पैमाने पर सहभागिता भी कृषि के तीव्र विकास हेतु महत्वपूर्ण है। निवेश और अनुसंधान के अतिरिक्त, पट्टे पर प्राप्त जमीन पर खेती करने, डेरी-उद्योग एवं कृषि से जुड़े अन्य उद्योग-धन्धों के संचालन में निजी क्षेत्र की कम्पनियों के सहयोग का प्रावधान नीति में किया गया है। भूमि सुधार की दिशा में आगे बढ़ने पर विशेष ध्यान दिया गया है जो हर दृष्टि से आवश्यक है। इस सम्बन्ध में जोतों की चकबन्दी और कृषकों एवं भूमिहीन श्रमिकों की दशा सुधारने के प्रावधान महत्वपूर्ण हैं।

संक्षेप में, राष्ट्रीय कृषि नीति-2000 अत्यधिक व्यापक एवं बहुआयामी है। इसमें कृषि क्षेत्र के लगभग हर पहलु को शामिल किया गया है। इसके साथ ही कृषि क्षेत्र की मुख्य समस्याओं के समाधान के लिये आवश्यक उपायों का उल्लेख किया गया है।

आलोचनाएँ - कृषि नीति आलोचना रहित नहीं है। इस नीति की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न प्रकार हैं –

1. वर्तमान में कृषि में सार्वजनिक निवेश में गिरावट देखी जा रही है। इसमें वृद्धि हेतु कोई प्रतिबद्धता नहीं है, जबकि कृषि निवेश में बढ़ोतरी के लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है।

2. विश्व व्यापार संगठन (WTO) की सदस्यता ग्रहण करने के बाद आयात पर लगे मात्रात्मक प्रतिबन्धों को हटाया जाना है, किन्तु क्या भारतीय कृषि उत्पाद विदेशी प्रतियोगिता का सामना कर सकेगी? यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है नीमकार

3. निजी कम्पनियों की बड़े पैमाने पर कृषि क्षेत्र में सहभागिता की नीति में जो व्यवस्था है, वह व्यावहारिक नहीं है। कारण यह है कि बड़े पैमाने पर पूँजी निवेश सम्भव प्रतीत नहीं होता। इसके साथ ही निजी कम्पनियों को काफी लम्बे समय के लिये जमीन पट्टे पर देने का कृषकों एवं राजनीति की ओर से विरोध होना सम्भव है।

पिछले कुछ वर्षों से कृषि में वृद्धि दर बहुत कम है। नौवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास का लक्ष्य 4.5 प्रतिशत रखा गया था, जबकि वास्तविक वृद्धि पर लगभग 2.00

प्रतिशत रहने का अनुमान है। अतः कृषि नीति में विकास लक्ष्य 4 प्रतिशत से अधिक रखा गया है, उसे प्राप्त करना अत्यधिक कठिन कार्य है।

विश्व बजार में कृषि उत्पादनों के निर्यात में जटिल एवं तीव्र प्रतियोगिता विद्यमान है। ऐसी स्थिति में निर्यात व्यापार में वृद्धि करना बहुत कठिन कार्य है। कृषि उत्पादन में होने वाले उच्चावचनों से निर्यात व्यापार और अधिक कठिन एवं जटिल हो जाता है। इन नीति में इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय कृषि नीति में कुछ कमियों के बावजूद विकास से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण तत्वों को सम्मिलित किया गया है। संक्षेप में, यह एक सराहनीय कदम है और इसके माध्यम से कृषि विकास को गति देना सम्भव है। भारत सरकार ने कृषि विकास हेतु वर्ष 2007 में एक नयी राष्ट्रीय कृषक नीति को अपनाया है।

राष्ट्रीय कृषक नीति, 2007

किसानों और कृषि क्षेत्र के लिए कार्य योजना का सुझाव देने के लिए वर्ष 2004 में भारत सरकार ने वर्ष 2004 में डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में 'राष्ट्रीय कृषक आयोग' का गठन किया था। आयोग ने दिसम्बर, 2004 से अक्टूबर, 2006 के दौरान अपनी पाँच अंतरिम रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। राष्ट्रीय कृषक आयोग की सिफारिशों के आधार पर भारत सरकार ने राष्ट्रीय कृषक नीति, 2007 को अपनाया है।

राष्ट्रीय कृषक नीति, 2007 की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं-

राष्ट्रीय कृषक नीति के मुख्य नीतिगत प्रावधानों में परिसम्पत्ति सुधार, जल उपयोग क्षमता, प्रौद्योगिकी उपयोग, मुद्रा स्थिति, अच्छे गुणवत्ता बीजों, रोग मुक्त पौधरोपण सामग्री जैसे निविष्टियाँ एवं सेवाएँ, महिलाओं को सबल बनाने संबंधी सेवाएँ तथा ऋण, बीमा शामिल है।

2. इस नीति में राष्ट्रीय कृषि-जैव सुरक्षा प्रणाली, उत्कृष्ट किसानों के क्षेत्र में किसानों के पारस्परिक शिक्षण को प्रोत्साहन देने हेतु कृषि स्कूलों की स्थापना, शुष्क क्षेत्रों में उगायी जाने वाले फसलों (बाजरा, ज्वार, रागी तथा कोदों जैसे पोषक फसलें) को शामिल कर खाद्य सुरक्षा का विस्तार करने की भी व्यवस्था है।

3. कृषकों के लिए एक व्यापक राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा योजना उनकी बीमारी, वृद्धावस्था को ध्यान में रखते हुए बीमा आवश्यकताओं सहित आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु की गयी है।

4. सम्पूर्ण देश में न्यूनतम समर्थन मूल्य कार्यप्रणाली प्रभावी रूप से क्रियान्वित होगी ताकि कृषि उत्पादों के लाभकारी मूल्य प्रदान किये जा सकें।

5. किसानों को उचित ब्याज दरों पर वित्तीय सेवाएँ समय पर, पर्याप्त मात्रा में और आसानी से उपलब्ध करायी जायेंगी।

6. राष्ट्रीय कृषि जैव-सुरक्षा प्रणाली को समन्वित कृषि जैव सुरक्षा कार्यक्रम को आयोजित करने के लिए स्थापित किया जायेगा

7. महिलाओं को कृषि कार्य के दौरान सहायता सेवाएँ जैसे शिशु सदन, बाल सेवा केन्द्र तथा पर्याप्त पोषण आदि आवश्यकताओं की पूर्ति की आवश्यकता होती है।

8. कृषक नीति के कार्यान्वयन को सुचारू रूप से जारी रखने के लिए एक अन्तर-मंत्रालय समिति का गठन किया गया है।

13.7 मुख्य शब्द

कृषि उत्पादन और उत्पादकता के संदर्भ में कई विशिष्ट शब्द और अवधारणाएँ हैं, जो कृषि क्षेत्र में विकास और सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण हैं। निम्नलिखित मुख्य शब्द कृषि उत्पादन और उत्पादकता से संबंधित प्रमुख शब्दों और उनके अर्थों को स्पष्ट करती है:

1. **कृषि उत्पादन (Agricultural Production)**:
   कृषि उत्पादन से तात्पर्य उस मात्रा से है जो किसी विशेष समयावधि में भूमि पर उगाई जाती है, जैसे फसलों, फल, सब्जियाँ आदि की कुल मात्रा।
2. **कृषि उत्पादकता (Agricultural Productivity)**:
   कृषि उत्पादकता का मतलब किसी विशेष कृषि भूमि या संसाधन (जैसे श्रम, भूमि, पूंजी) के आधार पर कृषि उत्पादन की मात्रा है। इसे आमतौर पर प्रति हेक्टेयर उत्पादन के रूप में मापा जाता है।
3. **हरित क्रांति (Green Revolution)**:
   यह एक कृषि आंदोलन था, जिसमें उच्च उत्पादकता वाली फसलों (जैसे उच्च यील्डिंग किस्में - HYVs), उन्नत सिंचाई और रासायनिक उर्वरकों का उपयोग किया गया था, जिससे कृषि उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई।
4. **सतत कृषि (Sustainable Agriculture)**:
   सतत कृषि वह कृषि प्रणाली है जो पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण करते हुए, उत्पादन को निरंतर बनाए रखती है और अगली पीढ़ियों के लिए भूमि की गुणवत्ता को सुरक्षित रखती है।
5. **कृषि नवाचार (Agricultural Innovation)**:
   कृषि क्षेत्र में नए तरीके, तकनीकी सुधार और नई पद्धतियाँ जो उत्पादकता और उत्पादन को बढ़ाने में मदद करती हैं। जैसे ड्रोन, जीपीएस तकनीक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, आदि।
6. **भूमि सुधार (Land Reform)**:
   भूमि के स्वामित्व और उसके उपयोग में सुधार करना, ताकि कृषि उत्पादन में वृद्धि हो सके और छोटे किसानों को उचित संसाधन मिल सकें।
7. **उर्वरक (Fertilizer)**:
   उर्वरक उन रासायनिक या जैविक पदार्थों को कहा जाता है जो मिट्टी की उर्वरा

शक्ति को बढ़ाते हैं और फसलों के विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करते हैं।

8. **सिंचाई (Irrigation)**:
   सिंचाई वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्राकृतिक वर्षा की कमी को पूरा करने के लिए फसलों को जल प्रदान किया जाता है। यह उत्पादकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

9. **जलवायु परिवर्तन (Climate Change)**:
   जलवायु में होने वाले परिवर्तन, जैसे तापमान में वृद्धि, वर्षा में अस्थिरता, और बर्फबारी की कमी, जो कृषि उत्पादन को प्रभावित करते हैं और उत्पादकता में कमी कर सकते हैं।

10. **उच्च उत्पादकता वाली किस्में (High-Yielding Varieties, HYVs)**:
    यह उन फसलों की किस्मों को कहा जाता है, जो अधिक उत्पादन देने के लिए विकसित की गई हैं। इनमें आमतौर पर बेहतर गुणवत्ता, रोग प्रतिरोधक क्षमता, और उच्च उपज देने की क्षमता होती है।

11. **कृषि परिरक्षण (Agro-ecology)**:
    यह एक कृषि पद्धति है जो पर्यावरणीय प्रणालियों को ध्यान में रखते हुए उत्पादन बढ़ाने की कोशिश करती है, ताकि पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण भी हो सके।

12. **कृषि मजदूर (Agricultural Labor)**:
    कृषि मजदूर वे व्यक्ति होते हैं जो खेतों में काम करते हैं और फसल उत्पादन के विभिन्न चरणों में श्रम प्रदान करते हैं।

13. **कृषि-प्रौद्योगिकी (Agri-Tech)**:
    यह कृषि के क्षेत्र में उपयोग होने वाली नवीनतम तकनीकों को दर्शाता है, जैसे मशीनरी, बायोटेक्नोलॉजी, डाटा एनालिटिक्स, और अन्य डिजिटल उपकरण जो उत्पादकता बढ़ाने में मदद करते हैं।

14.**उत्पादन लागत (Production Cost)**:

उत्पादन लागत वह खर्च होती है जो किसी विशेष कृषि उत्पाद के उत्पादन में लगती है, जैसे बीज, उर्वरक, श्रम, पानी, और मशीनरी की लागत।

15.**कृषि मूल्य श्रृंखला (Agricultural Value Chain)**:

यह कृषि उत्पाद के उत्पादन से लेकर उसकी खपत तक के सभी चरणों को कवर करती है, जिसमें उत्पादन, प्रसंस्करण, विपणन और उपभोग शामिल हैं।

16.**निर्यात (Export)**:

कृषि उत्पादों का अन्य देशों में बिक्री के लिए भेजना। यह कृषि उत्पादन का एक महत्वपूर्ण भाग है, जो देश की आर्थिक स्थिति को मजबूत करता है।

17.**अधिशेष उत्पादन (Surplus Production)**:

यह तब होता है जब किसी कृषि उत्पाद की मात्रा मांग से अधिक होती है, और उसे बाजार में बेचा या निर्यात किया जाता है।

18.**सिंचित क्षेत्र (Irrigated Area)**:

वह भूमि क्षेत्र जो सिंचाई प्रणाली से जल प्राप्त करता है, जिससे फसलों के उत्पादन में वृद्धि होती है।

19.**संवर्धन (Improvement)**:

फसलों या कृषि विधियों में सुधार करने की प्रक्रिया, जैसे अधिक उपज देने वाली किस्मों का विकास, बेहतर खेती की तकनीकें, आदि।

20.**कृषि सुरक्षा (Agricultural Security)**:

यह कृषि क्षेत्र के स्थिरता और खाद्य सुरक्षा से संबंधित है, जिसमें किसानों के लिए लाभकारी मूल्य और खाद्य संकट के दौरान उत्पादकता बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित किया जाता है।

13.8 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

यहाँ कुछ सामान्य प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं, जो कृषि उत्पादन और उत्पादकता की प्रवृत्तियों से संबंधित हो सकते हैं। ये उत्तर स्व-प्रगति के उद्देश्य से हैं, ताकि आप अपनी समझ को बेहतर बना सकें।

1. कृषि उत्पादन और कृषि उत्पादकता में अंतर स्पष्ट करें।

उत्तर:

- **कृषि उत्पादन** से तात्पर्य किसी विशेष समय अवधि में भूमि पर उगाई जाने वाली फसलों की कुल मात्रा से है। यह मात्रा आमतौर पर क्विंटल या टन में मापी जाती है।
- **कृषि उत्पादकता** उस भूमि या संसाधन (जैसे श्रम, उर्वरक, पानी) के आधार पर कृषि उत्पादन की दक्षता को दर्शाती है। इसे आमतौर पर प्रति हेक्टेयर के हिसाब से मापा जाता है, और यह दर्शाता है कि प्रत्येक इकाई भूमि से कितना उत्पादन प्राप्त किया जा रहा है।

2. हरित क्रांति के मुख्य तत्व क्या थे?

उत्तर:

हरित क्रांति (Green Revolution) के मुख्य तत्व थे:

- **उच्च उत्पादकता वाली किस्में (HYVs)**: जैसे कि धान और गेहूं की नई किस्में, जो अधिक उत्पादन देती हैं।
- **रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग**: फसलों की वृद्धि को बढ़ाने के लिए रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक पदार्थों का उपयोग।
- **सिंचाई सुविधाओं का विस्तार**: जल आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए सिंचाई प्रणालियों का सुधार और विस्तार।
- **यांत्रिकीकरण**: खेती के कामों को अधिक प्रभावी और समय बचाने के लिए मशीनों का उपयोग।

इन उपायों ने कृषि उत्पादन को तेज़ी से बढ़ाया और खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भरता की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए।

3. कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के उपाय क्या हो सकते हैं?

उत्तर:

कृषि उत्पादकता बढ़ाने के कुछ प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं:

- **उन्नत कृषि तकनीकों का अपनाना**: जैसे ड्रोन, जीपीएस तकनीक, और स्मार्ट सिंचाई प्रणालियाँ।
- **सिंचाई प्रणालियों का सुधार**: जलवायु के आधार पर स्मार्ट और प्रभावी सिंचाई तकनीकों का इस्तेमाल करना।
- **जैविक और रासायनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग**: उर्वरकों का सही मात्रा में और सही समय पर प्रयोग।
- **भूमि का समुचित उपयोग**: कृषि भूमि की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए स्थायी कृषि पद्धतियाँ अपनाना।
- **नई किस्मों का विकास**: उच्च उपज देने वाली और जलवायु के अनुकूल फसलों की किस्मों का उत्पादन।
- **कृषि प्रशिक्षण और शिक्षा**: किसानों को नई तकनीकों और कृषि प्रथाओं के बारे में प्रशिक्षित करना।

4. कृषि उत्पादकता में वृद्धि के लिए जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कैसे नियंत्रित किया जा सकता है?

उत्तर:

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को नियंत्रित करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं:

- **जलवायु-समायोजित कृषि पद्धतियाँ**: जैसे कि कम पानी की आवश्यकता वाली फसलों की खेती, मौसम के अनुकूल उन्नत किस्मों का उपयोग।
- **सिंचाई तकनीकों का सुधार**: सूखा या बाढ़ जैसे जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए स्मार्ट सिंचाई तकनीकों का उपयोग।
- **जैविक खेती**: पर्यावरण के अनुकूल कृषि पद्धतियाँ अपनाना, ताकि रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के पर्यावरणीय प्रभावों को कम किया जा सके।
- **कृषि विविधता**: विभिन्न प्रकार की फसलों की खेती करना ताकि एक फसल की असफलता के कारण पूरी उपज न घटे।

5. कृषि उत्पादन की वृद्धि के लिए उर्वरकों का प्रभाव क्या है?

उत्तर:

उर्वरकों का कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान होता है। वे मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं और फसलों के विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति करते हैं। उर्वरकों के प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं:

- **फसल वृद्धि में तेजी**: उर्वरकों के उचित उपयोग से फसलों की वृद्धि और उत्पादन में वृद्धि होती है।
- **किस्मों का बेहतर विकास**: उर्वरक फसलों को बेहतर तरीके से बढ़ने और फलने-फूलने में मदद करते हैं।
- **मिट्टी की उर्वरा शक्ति में सुधार**: नियमित रूप से उर्वरकों का उपयोग मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बनाए रखता है, जिससे उत्पादन क्षमता बढ़ती है।

हालांकि, उर्वरकों का अत्यधिक और असंतुलित उपयोग पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न कर सकता है, जैसे कि जल स्रोतों में प्रदूषण। इसलिए उर्वरकों का संतुलित और वैज्ञानिक उपयोग जरूरी है।

6. कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए तकनीकी नवाचारों का क्या महत्व है?

उत्तर:

कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए तकनीकी नवाचारों का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। कुछ प्रमुख तकनीकी नवाचारों के फायदे हैं:

- **स्मार्ट सिंचाई और ड्रिप सिंचाई**: जल की बर्बादी को कम करने और फसलों को सही मात्रा में पानी देने के लिए ड्रिप सिंचाई प्रणाली।
- **जैविक खेती और बायोटेक्नोलॉजी**: नई किस्मों के बीज और कीट-रोगों से बचाव के लिए बायोटेक्नोलॉजी का इस्तेमाल।
- **ड्रोन और जीपीएस तकनीक**: फसलों की निगरानी, सिंचाई और पोषक तत्वों के संतुलन के लिए ड्रोन और जीपीएस तकनीकों का उपयोग।
- **उन्नत कृषि मशीनरी**: कृषि कार्यों को तेज़, सटीक और कम लागत में पूरा करने के लिए आधुनिक कृषि मशीनों का उपयोग।

13.9 संदर्भ सूची

- गुप्ता, एस. (2019). भारतीय कृषि की संरचना और विकास (2nd ed.). दिल्ली: राउटलेज।
- शर्मा, आर. (2021). भारत में कृषि उत्पादकता की प्रवृत्तियाँ: एक समालोचनात्मक अध्ययन. मुंबई: हर्ष पब्लिकेशन्स।
- यादव, वी. (2020). कृषि अर्थशास्त्र: सिद्धांत और अभ्यास. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- मिश्रा, ए. (2022). भारत में कृषि उत्पादकता और विकास की चुनौतियाँ. नई दिल्ली: विथाल पब्लिकेशन।

- सिंह, एम. (2018). भारतीय कृषि क्षेत्र: संरचना और विकास के दृष्टिकोण. जयपुर: माउंटेन पब्लिशिंग।

13.10 अभ्यास प्रश्न

(अ) निबन्धात्मक प्रश्न

1. कृषि उत्पादकता से आप क्या समझते हैं? भारत में कृषि उत्पादकता कम होने के क्या कारण हैं?

2. क्या भारत में कृषि उत्पादकता अन्य देशों की तुलना में कम है? सतर्क उत्तर दीजिए ।

3. भारत में कृषि उत्पादकता में वृद्धि करने के उपायों को समझाइये ।

4. भारत में कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए सरकार ने क्या प्रयास किए हैं?

5. भारत में निम्न कृषि उत्पादकता के क्या कारण हैं? कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए अपने सुझाव दीजिए ।

6. फसल प्रतिरूप से क्या आशय है? भारत में खाद्य फसलों तथा गैर-खाद्य फसलों में हुए सापेक्षिक परिवर्तनों को स्पष्ट कीजिए। पर के

(ब) लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. कृषि उत्पादकता क्या है ?

2. भारत में कृषि उत्पादकता के न्यून होने के कारण बताइए ।

3. कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए सरकार ने क्या प्रयास किये ?

4. फसल प्रतिरूप से क्या अभिप्राय है ?

5. भारत में फसल प्रतिरूप या पद्धतियाँ को संक्षेप में लिखिए।

6. भारत में फसल प्रतिरूप में परिवर्तन के लिए कौन से कारण उत्तरदायी हैं?

7. भारत की राष्ट्रीय कृषि नीति को संक्षेप में लिखिए।

8. भारत की राष्ट्रीय कृषि नीति, 2007 को संक्षेप में लिखिए ।

(i) कृषिगत उत्पादकता का सम्बन्ध किससे है ?

(अ) कुल उत्पादन

(ब) तुलनात्मक उत्पादन

(स) व्यावसायिक फसलों का उत्पादन

(द) उपरोक्त सभी

(ii) कृषिगत उत्पादकता बढ़ाने के लिए -

(अ) कीमतें बढ़ाई जायें

(ब) कीमतें कम की जायें

(स) कीमतें स्थिर रखी जायें

(द) कीमतें स्वतंत्र छोड़ दी जायें

(iii) भारत में प्रति व्यक्ति प्रति दिन खाद्यान्न की उपलब्धता वर्ष 1997 में रही

(अ) लगभग 300 ग्राम

(ब) लगभग 500 ग्राम

(स) लगभग 700 ग्राम

(द) लगभग 900 ग्राम

उत्तर (i) ब, (ii) स, (iii) ब ।

इकाई- 14
भूमि सुधार

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 भारत में भूमि सुधारों की आवश्यकता एवं महत्व
14.4 चकबन्दी
14.5 भूदान आन्दोलन
14.6 मुख्य शब्द
14.7 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
14.8 संदर्भ सूची
14.9 अभ्यास प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

भूमि सुधार का उद्देश्य किसानों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करना और ग्रामीण विकास को बढ़ावा देना है। भारत में भूमि सुधार आंदोलन की शुरुआत स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुई, ताकि कृषि क्षेत्र में सुधार लाकर देश की सामाजिक और आर्थिक संरचना को बेहतर बनाया जा सके। भूमि सुधार के अंतर्गत कई प्रकार के उपायों की योजना बनाई गई, जैसे ज़मीन की पुनर्वितरण, जमींदारी व्यवस्था का अंत, बटाई और मजदूरी पर नियंत्रण, और किसानों के अधिकारों की सुरक्षा।

भूमि सुधार के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. **जमींदारी व्यवस्था का उन्मूलन**: जमींदारी व्यवस्था, जिसमें जमींदारों के पास भूमि का मालिकाना अधिकार था और वे किसानों से अत्यधिक कर वसूलते थे, को समाप्त करना। इस व्यवस्था के अंत से किसानों को उनकी भूमि पर अधिकार प्राप्त हुआ।

2. **भूमि का वितरण**: भूमिहीन और छोटे किसानों को भूमि का वितरण करना ताकि वे अपने जीवन को बेहतर बना सकें। यह कदम गरीबी और भुखमरी को कम करने में सहायक था।
3. **कृषक अधिकारों की सुरक्षा**: किसानों को ज़मीन पर अधिकार, बेहतर बटाई व्यवस्था और उधारी के बोझ से मुक्त करने के लिए कदम उठाए गए।
4. **सामाजिक और आर्थिक समानता की दिशा में कदम**: भूमि सुधार से समाज में भूमि के मालिकाना अधिकारों का पुनर्वितरण हुआ, जिससे समाज में आर्थिक और सामाजिक असमानता को कम करने में मदद मिली।

भारत में भूमि सुधार से संबंधित कई कानून बने, जैसे *ऑल इंडिया टेनेंसी एक्ट (1955)*, *फ्री होल्ड एक्ट (1952)* और *लैंड सीलिंग एक्ट*, जो किसानों को उनकी जमीन का मालिकाना हक और उनके अधिकारों को सुनिश्चित करने का प्रयास करते थे।

भूमि सुधार का अर्थ

भूमि सुधार संकुचित अर्थों में छोटे किसान व खेतिहर मजदूरों के हितों में अनुकूल भूमि स्वामित्व का निर्धारण है। व्यापक अर्थों में भूमि सुधारों के अन्तर्गत वे सभी परिवर्तन शामिल किये जाते हैं जो भू-धारण प्रणाली के अन्तर्गत भूमि का अधिकतम उपयोग करने के लिए किये जाते हैं। कृषि प्रणाली के सभी संस्थागत परिवर्तन भी भूमि सुधार के अन्तर्गत आते हैं। प्रो. गुन्नार मिर्डल के अनुसार, "भूमि सुधारों का अर्थ व्यक्ति और भूमि के सम्बन्ध तथा संस्थागत परिवर्तनों से है।"

संक्षेप में, भूमि सुधार के अन्तर्गत वे सभी कार्य शामिल किये जाते हैं जिनके द्वारा भूमि का अधिकतम उपयोग करके उत्पादन बढ़ाने में सहायता मिलती है। फलतः लगान सम्बन्धी कानून, मध्यस्थों का उन्मूलन, जोतों की सुरक्षा, उचित लगान निर्धारण व उसकी वसूली, भू-सीमा निर्धारण, सहकारी कृषि, चकबन्दी, भूदान, कृषि का पुनर्गठन आदि सभी कार्य भूमि सुधार के अन्तर्गत आते हैं।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
- विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।

14.3 भारत में भूमि सुधारों की आवश्यकता एवं महत्व

भारत में कृषि के विकास एवं सामाजिक न्याय के लिये भूमि सुधारों की बहुत अधिक आवश्यकता है। इन सुधारों की आवश्यकता एवं महत्व को निम्नप्रकार समझा जा सकता है:-

(i) कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि :- कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि के लिये भूमि सुधार अत्यावश्यक है। छोटी एवं बिखरी हुई जोतों की समस्या को हल करने में चकबन्दी अत्यावश्यक है। इसी प्रकार भू-धारण प्रणाली में सुधार भी जरूरी है। स्वतंत्रता के बाद भूमि सुधारों के महत्व को स्वीकार किया गया और इन्हें लागू करने के प्रयास किए गए।

(ii) सामाजिक न्याय एवं समानता :- भूमिहीन श्रमिकों को अतिरिक्त भूमि का आवंटन करके उनके जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना सम्भव होता है। जोतों की अधिकतम सीमा का निर्धारण एवं काश्तकारी व्यवस्था में सुधारों के द्वारा सामाजिक न्याय एवं समानता के लिये महत्वपूर्ण हैं।

(ii) नियोजित विकास :- नियोजित विकास के लिये कृषि में सुधार आवश्यक है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का विशेष महत्व है। कुल कार्यशील जनसंख्या का लगभग 66% भाग कृषि पर निर्भर है अतः भूमि सुधारों के माध्यम से नियोजित आर्थिक विकास को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करना सम्भव होता है।

(iv) कृषि एवं गैर-कृषि उद्योगों का विकास :- कृषि से जहाँ अनेक उद्योगों को कच्चा माल प्राप्त होता है, वहीं गैर-कृषि उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की माँग कृषि-आय पर निर्भर करती है। स्पष्ट है कि औद्योगिक विकास के लिये भी भूमि सुधार आवश्यक है।

संक्षेप में, भारत जैसे कृषि प्रधान देश में भूमि सुधारों का विशेष महत्व है। प्रो. सैम्युलसन (Samuelson) ने ठीक ही लिखा है, "सफल भूमि सुधार के कार्यक्रमों ने अनेक देशों में मिट्टी को सोने में बदल दिया है।"

भारत में स्वतंत्रता के पूर्व भू-धारण प्रणालियाँ

स्वतंत्रता के पूर्व तक भारत में भू-धारण प्रणाली का मूल लक्ष्य अधिकतम लगान वसूल करना था। कृषि की उन्नति एवं कृषकों के कल्याण से सरकार को कोई विशेष मतलब नहीं था। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भू-धारण की तीन प्रणालियाँ प्रचलित थीं, यथा :

(a) जमींदारी प्रथा (Jamindari System): सरकार लगान वसूल करने के लिए जिस व्यक्ति को नियुक्त करती थी वह जमींदार होता था। जमींदार को लगान वसूल करने एवं कृषक को भूमि से बेदखल करने के व्यापक अधिकार थे। जमींदार अनेक प्रकार से कृषकों का शोषण करते थे। फलतः स्वतंत्रता के बाद सरकार ने यह प्रथा समाप्त कर दी।

(b) महलवाड़ी प्रथा (Mahalwari System): यह प्रथा 1883 में लार्ड विलियम बेंटिंक ने आगरा व अवध जिलों में प्रारंभ की। इस प्रथा में भूमि पर सम्पूर्ण गाँव का अधिकार होता था। सभी ग्रामवासी मुखिया के माध्यम से लगान चुकाते थे। मालगुजारी (लगान) का निर्धारण भूमि की उपज, किस्म आदि के आधार पर किया जाता था।

(c) रैयतवाड़ी प्रथा (Rayatwari System) : रैयतवाड़ी प्रथा में सम्पूर्ण भूमि पर राज्य का एकाधिकार होता था, लेकिन वास्तव में रजिस्टर्ड कृषक (रैयत) भूमि-स्वामी होता था। यह प्रणाली 1792 में सर्वप्रथम टामस मुनरो ने बम्बई प्रान्त सहित अन्य प्रान्तों में प्रारम्भ की।

स्वतंत्रता के पश्चात् भूमि-सुधारीत

स्वतंत्रता के बाद भूमि सुधार के जो कार्यक्रम लागू किये गए उनका मुख्य लक्ष्य कृषि के विकास के साथ-साथ कृषकों एवं भूमिहीन श्रमिकों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना है।

इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु भारत सरकार ने भूमि सुधार से सम्बन्धित जो कार्यक्रम प्रारम्भ किए हैं, वे हैं :- (a) मध्यस्थों की समाप्ति, (b) काश्तकारी सुधार, (c) कृषि का पुनर्गठन एवं (d) भू-जोतों का सीमा निर्धारण। इन कार्यक्रमों का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है

(1) मध्यस्थों की समाप्ति (Abolition of Intermediary Tenures)

स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने जमींदार, जागीरदार, इनामदार आदि सहित सभी मध्यस्थों को समाप्त कर भूमि पर कृषक को भूमि-स्वामी सम्बन्धी अधिकार प्रदान कर दिए हैं। ये मध्यस्थ देश की 40 प्रतिशत भूमि पर फैले थे। इस उन्मूलन से लगभग 2 करोड़ कृषकों का सरकार से सीधा सम्बन्ध हो गया। उन्हें 67.9 लाख हैक्टेयर भूमि का स्वामित्व दिया गया। अब तक देश के सभी राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में मध्यस्थों को समाप्त किया जा चुका है। मध्यप्रदेश में मध्यस्थों की समाप्ति सन् 1951 में की गई। मध्यस्थों को क्षतिपूर्ति के अतिरिक्त पुनर्वास अनुदान भी दिये गए ताकि वे सरलता से अपना जीवन-यापन कर सकें ।

जमींदारी उन्मूलन के अधिनियमों की विशेषताएँ :-

विभिन्न राज्यों में सन् 1948 से 1955 के मध्य जमींदारी उन्मूलन के लिए जो अधिनियम बनाए गए थे, उनकी प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार थीं :-

1. अधिकारों का उन्मूलन :- भारत के सभी राज्यों में जमींदारी उन्मूलन अधिनियमों के द्वारा मध्यस्थों के अधिकारों को समाप्त कर दिया गया है और उसके बदले में उनको मुआवजा या क्षतिपूर्ति दी गयी थी।

2. क्षतिपूर्ति का आधार:- मध्यस्थों एवं जमींदारों का अलग-अलग राज्यों में क्षतिपूर्ति के आधारों को अलग-अलग रखा गया था। उदाहरणार्थ जहाँ मध्यप्रदेश, राजस्थान एवं असम में क्षतिपूर्ति का आधार शुद्ध आय को रखा गया था, वहीं उत्तरप्रदेश में यह शुद्ध सम्पत्ति रखा गया था। कुछ राज्यों में छोटे जमींदारों को पुनर्वास हेतु अतिरिक्त अनुदान भी दिया गया था।

3. क्षतिपूर्ति का भुगतान :- विभिन्न राज्यों में मध्यस्थों को किये गये क्षतिपूर्ति भुगतान का स्वरूप भी अलग-अलग रहा। कुछ राज्यों में यह भुगतान जहाँ नकद धन राशि के द्वारा किया गया वहीं कुछ राज्यों में नकदी एवं बॉण्डों के द्वारा यह भुगतान हुआ ।

4. वैयक्तिक कृषि के लिये भूमि रखने की छूट:- सामान्यतः सभी अधिनियमों में यह व्यवस्था थी कि जो जमींदार या मध्यस्थ जितनी भूमि को स्वयं जोतते थे, उसे वे अपने पास रख सकते थे। यह छूट सभी राज्यों में दी गई थी।

5. शेष भूमि पर राज्य सरकारों का अधिकार :- जमींदार जिस भूमि को स्वयं जोतते थे, उसे छोड़कर शेष भूमि, यथा बंजर भूमि, वन भूमि, चारागाह की भूमि आदि पर राज्य सरकारों का अधिकार हो गया।

6. लगान के भुगतान का दायित्व :- सभी राज्यों के अधिनियमों में यह व्यवस्था की गयी थी कि जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् काश्तकार या कृषक अपनी भूमि पर निर्धारित लगान सीधा सरकार को देगा और लगान देने की जिम्मेदारी स्वयं उसकी होगी।

7. मध्यस्थों एवं जमींदारी के पुनः- पनपने पर रोक : प्रायः सभी अधिनियमों में यह व्यवस्था की गयी कि प्रत्येक काश्तकार के लिये भूमि को स्वयं ही जोतना अनिवार्य होगा, किन्तु विधवा, फौज में कार्य करने वालों, बन्दी तथा रोग से पीड़ित व्यक्ति अपनी भूमि को लगान पर दूसरों को दे सकते हैं।

सम्पूर्ण देश में मध्यस्थों एवं जमींदारों की समाप्ति से कृषि व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन हुआ । इस व्यवस्था से अनेक लाभ हुए, जैसे काश्तकारों के शोषण का अन्त, कृषि उत्पादन में वृद्धि सरकारी आय में बढ़ोतरी, कृषकों का सरकार से प्रत्यक्ष सम्बन्ध, सामन्तवादी प्रथा का अन्तु, भूमिहीन श्रमिकों को अतिरिक्त भूमि का आवंटन आदि। संक्षेप में, मध्यस्थों के उन्मूलन से भूमि व्यवस्था में सुधार हुआ और जमींदारों का वर्ग जो कि पूर्व में काफी प्रबल था, वह अब पूर्णतः समाप्त हो चुका है। इसे समाजवादी समाज की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम माना जाता है। आजू

(2) काश्तकारी सुधार (Tenancy Reforms)

काश्तकारी सुधार के अंतर्गत निम्नलिखित कार्य किये गये -

1. लगान का नियमन (Fixation of Rent):- लगान के नियमन सम्बन्धी कानून के पहले काश्तकारों एवं बटाईदारों (Share Croppers) को उपज का आधे से भी अधिक भाग लगान के रूप में देना पड़ता था। पंचवर्षीय योजना में इसे घटाकर 1/3 या 1/4 भाग कर दिया गया। वर्तमान में विभिन्न राज्यों में लगान कुल उपज का 1/3, 1/4 एवं 1/6 भाग है। छठीं योजना (1980-85) से लगान की दर 1/4 कर दी गई। यह लगान कुछ राज्यों में उपज के आधार पर तथा कुछ में नकदी राशि में निश्चित की गई है। कई राज्यों में छोटी जोतों पर लगान समाप्त कर दी गई। लगान नियमन का उद्देश्य कृषकों को भूमि-स्वामी सम्बन्धी अधिकार देना एवं भूमि की सुरक्षा प्रदान करना है।

2. भू-धारण सुरक्षा (Security of Tenures) :- भू-धारण सुरक्षा में कृषकों की बेदखली रोकने तथा स्वेच्छा से अपनी भूमि अन्य के मालिकाना हक में देने का अधिकार दिया गया। इसमें खुद काश्तकार को महत्व दिया गया। खुदकाश्त में यह विशेषता थी कि (i) कृषक का निजी श्रम हो, (ii) वह उसी गाँव या निकट के गाँव का निवासी हो, (iii) निजी देखरेख हो और (iv) कृषि व्यवसाय की जोखिम उठाता हो।

3. काश्तकारों को भूमि-स्वामी अधिकार दिलाना (Rights of Ownership for Tenants) :- देश के अनेक राज्यों में काश्तकारों को भूमि-स्वामी सम्बन्धी अधिकार देने के लिए कानूनी व्यवस्था की गई। राजस्व प्रशासन एवं न्याय व्यवस्था को इस क्षेत्र में काम करने के व्यापक अधिकार दिए गए। (3

कृषि का पुनर्गठन (Reorganisation of Land)

सरकार ने कृषि के पुनर्गठन हेतु अनेक संस्थागत परिवर्तन किये हैं ताकि देश में समाजवादी समाज की स्थापना हो तथा कृषिगत उत्पादन भी बढ़े। कृषिगत पुनर्गठन के अन्तर्गत मुख्यतः चकबन्दी, सहकारी खेती, भूमिहीनों को बसाना एवं भू-दान आन्दोलन प्रमुख हैं। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है :

14.4 चकबन्दी

कृषिजोत के छोटे आकार को कम करने के लिए तथा विभिन्न क्षेत्रों में फैले खेतों के बदले भूमि एक चक बनाने की प्रणाली को चकबन्दी कहते हैं। यह तीन प्रकार से की जाती है, यथा

(i) ऐच्छिक चकबन्दी (Voluntary Consolidation) :- जब एक गाँव के कुछ अथवा सभी कृषक स्वेच्छा से अपने छोटे-छोटे खेतों का आदान-प्रदान करके अपनी भूमि का एक चक बना लेते हैं तो इसे स्वैच्छिक चकबन्दी कहते हैं। भारत में ऐच्छिक चकबन्दी सफल नहीं हुई है।

(ii) सहकारी चकबन्दी (Cooperative Consolidation) :- इस रीति में चकबन्दी के इच्छुक कृषक सहकारी समिति बनाकर उसके माध्यम से चकबन्दी अपनाते हैं। यदि चकबन्दी की योजना सहकारी समिति की साधारण सभा के दो-तिहाई सदस्य अपना लेते हैं तो शेष एक-तिहाई सदस्यों को इसे स्वीकार करना ही पड़ता है। भारत में सहकारी समितियों की चकबन्दी प्रणाली भी अधिक लोकप्रिय नहीं हुई है।

(iii) कानून द्वारा चकबन्दी (Statutory Consolidation) :- जब चकबन्दी सरकार द्वारा कानून बनाकर अनिवार्य कर दी जाती है तब इसे कानून द्वारा चकबन्दी कहते हैं। भारत के अनेक राज्यों में चकबन्दी से सम्बन्धित कानून पास किए गए हैं; किन्तु इस दिशा में भी अधिक सफलता नहीं मिली है।

चकबन्दी के लाभ

चकबन्दी होने से कृषकों को निम्नलिखित लाभ होते हैं :-

(i) उत्पादन, आय एवं जीवन स्तर में सुधार (Improvement in Production, Income & Standard of Living) :- चकबन्दी से कृषकों का उत्पादन बढ़ता है जिससे उनकी आय एवं जीवन-स्तर में सुधार होता है। उत्पादन लागत में भी कमी आती है।

(ii) संसाधनों का पूर्ण उपयोग (Full Utilisation of Resources):- कृषक के पास उपलब्ध पूँजीगत साधन, जैसे- हल-बैल, कृषि यंत्र आदि का समुचित उपयोग होता है, जिससे उत्पादन बढ़ता है।

(iii) कृषि का विकास (Agricultural Development):- चकबन्दी से जोत का आकार बढ़ जाता है। इससे कृषकों को उन्नत कृषि पद्धति अपनाने की प्रेरणा मिलती है और वह ट्रेक्टर, सिंचाई की सुविधा, उर्वरक, उन्नत बीज आदि का प्रयोग करने लगता है। इससे कृषि का विकास होता है।

(iv) भूमि के अपव्यय में बचत (Saving in Wastage of Land):- अपखण्डन में बहुत सी भूमि बाउण्ड्री, रास्ता आदि में निकल जाता है। फलतः चकबन्दी से भूमि के अपव्यय में बचत होती है।

(v) जोतों का उचित निरीक्षण (Proper Supervision of Land):- छोटे-छोटे खेतों में उचित निरीक्षण सम्भव नहीं हो पाता इससे उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत, जोत के एक चक में होने से उसकी उचित देख-भाल सम्भव होती है।

(vi) विवादों में कमी (Reduction in Disputes):- चकबन्दी से पारस्परिक खेतों के मध्य मेड़ एवं अन्य खेती से सम्बन्धित कानूनी सम्बन्धी विवाद कम हो जाते हैं। इससे कृषकों को कृषि विकास में प्रेरणा मिलती है।

भारत में जोतों की चकबन्दी (Consolidation of Holdings in India) भारत में छोटी-छोटी कृषि जोतों की समस्या को हल करने के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही चकबन्दी का कार्य हाथ में लिया गया, किन्तु अभी तक केवल 15.10 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र में ही यह कार्य पूर्ण किया जा सका है। देश में 9 राज्यों को छोड़कर शेष सभी राज्यों में चकबन्दी से सम्बन्धित कानून बनाए गए हैं। ये राज्य हैं आन्ध्रप्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, मणिपुर, मेघालय, नागालैण्ड, त्रिपुरा, तमिलनाडु एवं केरल। इसके साथ ही गुजरात, मध्यप्रदेश एवं प. बंगाल में यह कार्य ऐच्छिक आधार पर किया जा रहा है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पंजाब एवं हरियाणा में चकबन्दी का कार्य पूर्ण हो चुका है।

उत्तरप्रदेश में लगभग 90 प्रतिशत कार्य पूर्ण हो चुका है, किन्तु शेष राज्यों में प्रगति अधिक धीमी है। भारत जैसे विकासशील देशों में चकबन्दी के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ हैं। ये कठिनाइयाँ निम्न प्रकार हैं :-

(i) भूमि के प्रति लगाव (Attachment with the Land):- भारतीय कृषक अपनी पैतृक एवं स्वयं की सम्पत्ति के प्रति अधिक लगाव रखता है। अतः भूमि चाहे अच्छी हो या खराब वह उसे अन्य को देना पसन्द नहीं करता है।

(ii) भूमि के मूल्यों में अन्तर (Difference in Land Values): - चूँकि सभी भूमियों की उत्पादन क्षमता और उनका मूल्य भी समान नहीं होता है। फलतः गाँव के निकट की उपजाऊ भूमि अधिक महँगी और दूर की तथा अनउपजाऊ भूमि आनुपातिक रूप में कम मूल्य की होती है। इन दोनों के मूल्यों में अन्तर होने से कृषक चकबन्दी के लिए राजी नहीं होते। इस समस्या के हल करने के लिए योग्य, अनुभवी, कुशल एवं सक्षम अधिकारियों को भूमि के मूल्यांकन का काम देना चाहिए।

(iii) प्रशिक्षित अधिकारियों की कमी (Lack of Trained Personnel) :- विभिन्न भू-खण्डों का सर्वेक्षण, वर्गीकरण, मूल्यांकन करने के लिए प्रशिक्षित अधिकारियों की नितान्त कमी है। इससे चकबन्दी का काम धीमी गति से हो रहा है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए प्रशिक्षित अधिकारी नियुक्त किये जाने चाहिए ।

(iv) एक चक भूमि न मिलना या समान भूमि न मिलना (Non-availability of Single Piece of Uniform Land):- चकबन्दी से समान उर्वरा शक्ति एवं गुणों वाली भूमि नहीं मिलती है। इससे कृषकों को दो या तीन चक देने पड़ते हैं।

(v) पक्षपात (Favouritism) :- चकबन्दी अधिकारी ईमानदारी से काम नहीं करते हैं। उनमें पक्षपात की नीयत रहती है जिससे भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है।

सहकारी खेती

यह सर्वविदित है कि भूमि के टुकड़ों को मिलाकर खेती करना भारत जैसे देश के लिए लाभदायक है। इसीलिए सरकार ने सहकारी खेती को प्रोत्साहन देने के लिए वित्तीय सहायता, लगान एवं आय-कर आदि में रियायतें प्रदान की हैं। सन् 1959 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में, 'कृषि सहकारी समितियाँ' एवं 'सहकारी सेवा समितियाँ' स्थापित करने पर जोर दिया गया था ताकि कृषकों को खाद, बीज व औजार क्रय करने में मदद मिल सके ।

भारत में वर्ष 1950-51 में कुल सहकारी समितियों की संख्या 1.82 लाख थी जिनकी सदस्य संख्या 154.8 लाख थी। मार्च, 2007 को प्राथमिक कृषि साख समितियों की संख्या 97,224 लाख हो गई थी जिनकी सदस्य संख्या 12.58 करोड़ थी। इस समयावधि में इन समितियों की जमाराशियाँ 23,484 करोड़ रुपए एवं लिये गये ऋण 49,613 करोड़ रुपए हो गये थे। अभी तक सहकारी कृषि का विकास कम हुआ है। भूमि सुधार के प्रारंभिक वर्षों में अनार्थिक कृषि जोतों को समाप्त करने के लिए सहकारी संयुक्त खेती को काफी बढ़ावा दिया गया था किन्तु अब इस सम्बन्ध में बहुत कम चर्चा सुनने को मिल रही है। स्पष्ट है कि सहकारी कृषि के अनेक लाभों के बावजूद भारत में सहकारिता आन्दोलन सफल नहीं हो सका है।

14.5 भूदान आन्दोलन

आचार्य विनोबा भावे ने 1951 में भूदान आन्दोलन प्रारंभ किया। इसमें भूमि-स्वामी स्वेच्छा से अपनी भूमि का 1/6 भाग दान करता था। बाद में वह ग्रामदान आन्दोलन में परिवर्तित हो गया। भूदान में लगभग 16.8 लाख हैक्टेयर भूमि प्राप्त हुई। इसमें से 5.2 लाख हैक्टेयर भूमि भूमिहीन कृषकों में बाँटी गई।

(4) भू-जोतों की सीमा निर्धारण (Ceiling of Land Holdings)

पिछले वर्षों में भूमि सुधार कार्यक्रम में जोतों की सीमा निर्धारण का प्रश्न अधिक विवाद का विषय रहा है। जोत की सीमा निर्धारण के दो उद्देश्य हैं (1) भूमि के अनावश्यक केन्द्रीकरण को रोककर भूमि का आदर्शतम उपयोग करना। (2) सीमा निर्धारण के बाद

शेष भूमि खेतिहर मजदूरों को देकर उनकी आर्थिक दशा सुधारना। जोत की सीमा निर्धारण के अन्तर्गत अधिकतम एवं न्यूनतम सीमा का निर्धारण किया जाता है।.

जोत की सीमा निर्धारण के लाभ

जोत की सीमा निर्धारण के पक्ष में तर्क या लाभ निम्न प्रकार हैं-

(1) साधनों का कुशलतम उपयोग (Optimum Utilisation of Resources) :- 1990-91 की कृषि संगणना के अनुसार भारत में 2 हैक्टेयर तक की 75 प्रतिशत जोतें एवं 10 हैक्टेयर से ऊपर की 2.4 प्रतिशत जोतें हैं। इस प्रकार भूमि का बड़ा भाग कुछ लोगों के अधिकार में है। चूँकि छोटे खेतों की तरह बड़े खेतों पर भी साधनों का कुशलतम प्रयोग नहीं होता है। इससे कृषि अलाभप्रद व्यवसाय हो गई है। जोतों की सीमा निर्धारण द्वारा साधनों का कुशलतम उपयोग संभव होता है।

(2) रोजगार में वृद्धि (Increase in Employment):- बड़े खेतों पर न्यून रोजगार एवं छोटे खेतों पर अद्दश्य बेरोजगारों की समस्या है। जोत की सीमा निर्धारित करके रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध कराये जा सकते हैं।

(3) धन और आय का समान वितरण (Equal Distribution of Wealth & Income) :- ग्रामीण क्षेत्रों में जोतों के अत्यधिक असमान वितरण के कारण धन का वितरण भी असमान हो गया है। जोत की सीमा निर्धारित करने पर भूमि का समान वितरण होने से ग्रामीण क्षेत्रों में धन एवं आय का समान वितरण संभव होता है।

(4) उत्पादन वृद्धि (Increase in Production) :- जोत की सीमा निर्धारित करने से उन बड़ी जोतों पर भी उत्पादन होने लगता है जो खाली पड़ी रहती हैं। इससे उत्पादन में वृद्धि होती है।

(5) कृषि साख में वृद्धि (Expansion in Agricultural Credit) :- सीमा निर्धारण से अतिरिक्त भूमि खेतिहर मजदूरों में बाँटी जायेगी जिससे उनकी कर्ज एवं साख की क्षमता में भी वृद्धि होगी।

(6) उत्पादकता में वृद्धि (Increase in Productivity) :- जोत की सीमा निर्धारण से भूमि एक निश्चित सीमा के बाद नहीं बँटेगी। इसके परिणामस्वरूप छोटे खेतों पर गहन खेती होगी और उनकी उत्पादकता बढ़ेगी। छोटे खेतों पर व्यापारिक फसलें बोना अधिक लाभदायक होता है।

(7) सहकारी कृषि को प्रोत्साहन (Incentive to Cooperative Farming) :- जोत की सीमा निर्धारण से प्राप्त अतिरिक्त भूमि पर सहकारी खेती को निश्चित रूप से प्रोत्साहन मिलता है।

(8) उप-विभाजन पर रोक (Control on Sub-division of Holdings) :- जोत की सीमा निर्धारण से भूमि को एक सीमा के बाद विभाजित करना संभव नहीं होता है जिसके परिणामस्वरूप भूमि का उप-विभाजन रुकता है।

जोत की सीमा निर्धारण से हानियाँ

अधिकतम जोत की सीमा निर्धारण के विपक्ष में अनेक तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं। इन्हें अधिकतम जोत की सीमा निर्धारण से हानियाँ भी कहा जाता है। ये निम्न प्रकार हैं :-

(i) बड़े पैमाने के लाभों से वंचित (Deprived from the Advantages of Large Scale Farming):- अधिकतम जोत की सीमा के निर्धारण से बड़े आकार के खेत छोटे-छोटे खेतों में बदल जाते हैं। परिणामस्वरूप बड़े पैमाने की खेती से प्राप्त होने वाले लाभ समाप्त हो जाते हैं।

(ii) कृषि एवं गैर-कृषि आय में विषमताएँ (Disparities among Agricultural & Non- Agricultural Income) :-जोतों की सीमा के निर्धारण से बड़े कृषकों की आय कम हो जाती है, जबकि उद्योग-धन्धों में ऐसी कोई सीमा नहीं है। फलतः कृषि एवं गैर-कृषि आय में विषमताएँ पैदा होती हैं।

(iii) एक समान सीमा निर्धारण में कठिनाई (Difficulty in Fixing Uniform Ceiling) :- कृषि भूमि अनेक प्रकार की होती है और उनकी उर्वराशक्ति भी अलग-

अलग होती है। सिंचाई सुविधाओं से भी उर्वराशक्ति में परिवर्तन होता है। अतः एक समान सीमा निर्धारण सम्भव नहीं होता है।

(iv) भूमिहीन कृषकों की समस्या का समाधान न होना (No Solution of the Problem of Landless formers) :- सन् 1991 की जनगणना के अनुसार देश में 7.5 करोड़ भूमिहीन कृषक हैं। देश में यदि अधिकतम जोत कानून को लागू करने से केवल 98.5 लाख एकड़ भूमि प्राप्त होगी। अतः इतनी कम भूमि से भूमिहीन श्रमिकों की समस्या हल नहीं होगी।

(v) विपणन योग्य अधिशेष में कमी (Less Marketable Surplus) - अधिकतम जोत की सीमा लागू होने से खेत छोटे-छोटे हो जावेंगे जिससे कृषकों के पास विपणन योग्य अधिशेष कम हो जावेगा । कृषक उत्पादन का एक बड़ा भाग उपभोग एवं बीज आदि के लिए अपने पास ही रख लेंगे।

(vi) बड़े कृषकों में असन्तोष (Dis-satisfaction among Big Cultivators) :- अधिकतम जोत की सीमा निर्धारण अधिनियम के लागू होने से बड़े कृषकों को अपनी भूमि देना होगी। इससे बड़े कृषकों में असन्तोष पैदा होगा, जो कि प्रजातांत्रिक व्यवस्था में उचित नहीं है।

(vii) क्षतिपूर्ति का भुगतान (Payment of Compensation) :- अधिकतम जोत की सीमा के निर्धारण से बड़े कृषकों को अतिरिक्त भूमि प्राप्त करनी होगी और बदले में उन्हें क्षतिपूर्ति देनी होगी । यह इतनी बड़ी राशि होगी कि सरकार को उसका भुगतान करना एक समस्या बन जावेगी।

भारत में भूमि सीमा निर्धारण की प्रगति

सन् 1955 में योजना आयोग के भूमि सुधार पेनल ने जोत की सीमा निर्धारित करने का सुझाव दिया था। सन् 1957 में राष्ट्रीय विकास परिषद ने निर्णय लिया कि सन् 1958-59 तक सभी राज्यों को इस सम्बन्ध में कानून बना लेना चाहिए। जनवरी 1959 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में यह निर्णय लिया गया कि सहकारी कृषि को प्रोत्साहन देने के लिए

सीमा निर्धारण पर रोक लगा देनी चाहिए। सन् 1970 में इस विषय पर पुनः विचार करने का काम केन्द्रीय भूमि सुधार समिति को सौंपा गया, जिसने 1971 में भूमि की सीमा निर्धारण की सिफारिश की। 23 जुलाई 1972 में दिल्ली में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में भूमि की सीमा निर्धारण का निर्णय लिया गया जिसके अनुसार जोत की सीमा निर्धारित कर दी गई ।

जोत की सीमा मध्यप्रदेश में 10 से 55 एकड़ (4.0 से 21.85 हैक्टेयर) उत्तरप्रदेश में 18 से 45 एकड़, बिहार में 15 से 45 एकड़, महाराष्ट्र में 18 से 54 एकड़ निर्धारित की गई है, किन्तु अतिरिक्त भूमि के अधिग्रहण एवं उसके वितरण का काम काफी धीमा रहा है। छठीं योजना के अन्त तक विभिन्न राज्यों में 29.7 लाख हैक्टेयर भूमि अतिरिक्त घोषित की गई। इसमें से 23.6 लाख हैक्टेयर भूमि राज्यों ने अपने अधिकार में लेकर 18.2 लाख हैक्टेयर भूमि वितरित की। अभी भी अनेक भूमियों के लिए न्यायालयों में मुकदमे चल रहे हैं।

भूमि सुधारों की धीमी प्रगति के कारण

भारत में भूमि सुधारों की धीमी गति के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं -

(1) कानूनी रुकावटें (Legal Consequences) :- भारत में भूमि सुधारों के लिए अनेक प्रकार के कानून बनाये गये हैं, किन्तु जब उन्हें क्रियान्वित करने का प्रयास किया गया तो न्यायालयों में उन्हें चुनौतियाँ दी गईं और उन्हें गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। इससे भूमि सुधार कानून प्रभावी ढंग से क्रियान्वित नहीं किये जा सके।

(2) राजनैतिक इच्छा शक्ति की कमी (Lack of Political Will-Power) :- भारत में राजनेताओं ने भी भूमि सुधारों को लागू नहीं होने दिया क्योंकि भूमि सुधारों से बड़े किसानों को हानि है जो राजनैतिक नेताओं के 'वोट बैंक' हैं। (3) प्रशासनिक दोष (Administrative Defects) - प्रशासकों का रुख भी सदैव बड़े भूमिपतियों के पक्ष में रहा है जिसके कारण वे भूमि कानूनों को लागू करने के प्रति उदासीन रहे हैं।

(4) श्रम संगठनों की कमी (Lack of Labour Organisation) :- खेतिहर मजदूर, छोटे एवं सीमान्त कृषकों में संगठन का नितान्त अभाव पाया जाता है जिससे वे सरकार पर भूमि सुधार कानून लागू करवाने के लिए दबाव डालने में असमर्थ रहते हैं।

(5) भूमि से सम्बन्धित जानकारी का अधूरा होना (Incomplete Land Records) :- भारत में भूमि से सम्बन्धित नवीनतम रिकार्ड आज भी उपलब्ध नहीं है। यही कारण है कि भूमि सुधार कानून के क्रियान्वयन में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो रही हैं।

(6) एकीकृत कार्यक्रमों का अभाव (Lack of Integrated Programmes) :- भारत में भूमि सुधारों के लिए अलग-अलग कार्यक्रम, जैसे चकबन्दी, सहकारी कृषि सीमा-निर्धारण आदि के बीच उचित तालमेल का नितान्त अभाव पाया जाता है। अतः भूमि सुधारों को कई टुकड़ों में विभाजित किया गया है जिससे उनके एकीकृत प्रभाव प्राप्त नहीं हो रहे हैं।

(7) भूमि सुधार कार्यक्रमों में भिन्नता :- भूमि सुधार कार्यक्रमों की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि विभिन्न राज्यों में सुधार सम्बन्धी अधिनियम भिन्न-भिन्न है जिससे राष्ट्रीय स्तर पर उनको एक साथ क्रियान्वित नहीं किया जा सकता है।

(8) जाली सहकारी कृषि समितियाँ :- बड़े भूमि स्वामियों ने भूमि सुधार कार्यक्रम लागू होने से अपना बचाव करने के उद्देश्य से सहकारी कृषि समितियाँ बना ली हैं। इस प्रकार अधिकांश कृषि सहकारी समितियाँ जाली हैं। डॉ. के.एन. राज के शब्दों में, "सामान्यतः सहकारी समितियाँ सम्पन्न व्यक्तियों के द्वारा सस्ती दरों पर विकास कार्यक्रमों के लिये प्रदान की जाने वाली सुविधाओं को हथियाने का साधन बनी हुई हैं।"

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि देश में भूमि सुधार कार्यक्रमों को प्रभावशाली ढंग से क्रियान्वित नहीं किया गया है। इस सन्दर्भ में प्रो. गुन्नार मिर्डल ने अपनी पुस्तक "Asian Drama" में लिखा है, "भूमि सम्बन्धी कानूनों के पास हो जाने से काश्तकारों में बेदखली की एक लहर सी दौड़ गयी है और तथाकथित 'खुदकाश्त' के लिए भूमि का पुनर्ग्रहण किया गया है। खुदकाश्त की भूमि पर बँटाईदार व कृषि श्रमिक कार्य करते हैं। इसके

साथ ही सीमा निर्धारण से बचने हेतु अनियमित व अवैधानिक हस्तान्तरण किए गए हैं जिससे सरकार को अतिरिक्त भूमि बहुत कम मिल पायी है।"

भूमि सुधारों को लागू करने के उपाय

देश में कृषि में सुधार लाने तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिये भूमि सुधारों का क्रियान्वयन अत्यावश्यक है। पिछले कुछ वर्षों से इन सुधारों के क्रियान्वयन की प्रक्रिया बहुत धीमी हो गई है। अतः इन सुधारों को गति प्रदान करने के लिये निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :-

(1) भू-राजस्व विभाग में सुधार (Improvement in Land Revenue Department) :- भूमि सुधार सम्बन्धी कानूनों के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व राजस्व विभाग के अधिकारियों पर निर्भर करता है। अतः आवश्यक है कि इस विभाग की प्रशासनिक मशीनरी को कुशल बनाया जाये । भ्रष्ट कर्मचारी को भूमि सुधारों से दूर रखकर जिला एवं संभाग स्तर पर उच्च अधिकारी नियुक्त किये जायें और उन्हें इस क्षेत्र में व्यापक कानूनी अधिकार दिये जायें ।

(2) भूमि सुधार अदालतें (Land Reform Courts) :- भूमि सुधार सम्बन्धी अदालतें विभिन्न स्तरों पर प्रथक से स्थापित की जानी चाहिए, ताकि गरीबों को समुचित न्याय मिल सके। ये अदालतें प्रशासनिक हों तथा इनकी प्रक्रिया सरल हो। बँटाईदारों सहित भूमिहीन कृषकों को निःशुल्क कानूनी सहायता भी प्रदान की जानी चाहिए ।

(3) भूमि से सम्बन्धित नवीनतम रिकार्ड (Preparation of New Land Records) :- राज्य सरकारों को चाहिए कि वे भूमि से सम्बन्धित नवीनतम रिकार्ड तुरन्त तैयार करायें ताकि भूमि सुधार के साथ-साथ उनसे कृषिगत साख उपलब्ध कराने में भी सहायता मिल सके। इसमें भूमि-स्वामी एवं बँटाईदारों के सम्बन्ध में भी उचित सूचनाएँ होनी चाहिए ।

(4) वित्तीय सहायता नई भूमि जिन खेतिहर श्रमिकों को दी जाये उन्हें वित्तीय सहायता भी अवश्य दी जाये अन्यथा वे भविष्य में अपनी भूमि पुनः महाजन या बड़े कृषक को बेच देंगे। भूमि स्वामित्व सम्बन्धी कागजात भी तुरन्त नये भूमि-स्वामी को सौंपे जाने चाहिए।

(5) समयबद्ध कार्यक्रमानुसार क्रियान्वयन (Implementation of Time-bound Programme) :- भूमि सुधारों को ठीक ढंग से लागू करने के लिए एक समयबद्ध कार्यक्रम अवश्य अपनाया जाये ताकि भूमि सुधारों को एक निश्चित अवधि में ठीक ढंग से लागू किया जा सके। भूमि सुधारों की प्रगति का सही-सही लेखा-जोखा भी अवश्य तैयार किया जाये।

(6) खेतिहर श्रमिकों के संघ की स्थापना (Establishment of Organisations of Landless Labourers) :-खेतिहर श्रमिकों, काश्तकारों एवं बँटाईदारों का भी एक सुदृढ़ संगठन बनाया जाये ताकि वे इनके लाभों से परिचित हो सकें। इन समितियों में जन-प्रतिनिधियों को भी शामिल किया जाये। ग्राम समितियों को पुनर्गठित किया जाये ताकि वे चकबन्दी करवाने व जमीन सम्बन्धी मुकदमों को सुलझाने आदि में लोगों को उचित एवं कारगर सलाह दे सकें ।

(7) अन्य उपाय (Other Measures) :- (i) प्रत्येक राज्य में भूमि सुधार सम्बन्धी गतिविधियों एवं प्रगति की समीक्षा की जाये। (ii) भूमि सुधार में आने वाली कानूनी रुकावटों को तुरन्त दूर किया जाये ।

इस सम्बन्ध में संविधान में आवश्यक परिवर्तन किये जायें। (iii) जोत की सीमा निर्धारण से सम्बन्धित अधिनियमों को केन्द्रीय भूमि सुधार समिति की सिफारिशों के अनुसार पुनः संशोधित किया जाये। (iv) भूमि सुधार कार्यक्रम में आने वाले निहित स्वार्थी तत्वों को इससे दूर किया जाये ।

14.6 मुख्य शब्द

भूमि सुधार मुख्य शब्द में कुछ महत्वपूर्ण शब्द और उनके अर्थ दिए गए हैं, जो भूमि सुधार से संबंधित हैं:

1. **जमींदारी (Zamindari)**: यह एक पुरानी व्यवस्था थी जिसमें जमींदारों के पास भूमि का स्वामित्व था और वे किसानों से अत्यधिक कर वसूलते थे। भूमि सुधार के अंतर्गत जमींदारी व्यवस्था को समाप्त किया गया।
2. **कृषक (Krisak)**: किसान या वह व्यक्ति जो भूमि पर काम करता है और खेती करता है। भूमि सुधार के प्रयासों में किसानों को भूमि पर अधिकार और सुरक्षा देने की बात की गई।
3. **कृषि पट्टा (Agricultural Lease)**: यह वह अनुबंध है जिसके तहत भूमि का मालिक किसी अन्य व्यक्ति को खेती करने के लिए भूमि किराए पर देता है। भूमि सुधार में इसका उद्देश्य किसानों को न्यायपूर्ण पट्टों का वितरण करना था।
4. **संपत्ति वितरण (Land Redistribution)**: भूमि सुधार के अंतर्गत भूमि का पुनर्वितरण किया गया, ताकि भूमिहीन और गरीब किसानों को ज़मीन मिल सके। इसका उद्देश्य भूमि पर समान अधिकार सुनिश्चित करना था।
5. **बटाई (Sharecropping)**: यह एक प्रकार की कृषि व्यवस्था है जिसमें भूमिहीन किसान या छोटे किसान जमीन के मालिक के साथ साझेदारी में कृषि कार्य करते हैं, और उत्पाद का एक हिस्सा मालिक को दिया जाता है। भूमि सुधार ने बटाई व्यवस्था को नियंत्रित करने की कोशिश की।
6. **भूमि सीमा (Land Ceiling)**: भूमि सीमा वह अधिकतम भूमि है जिसे एक व्यक्ति या परिवार के पास रखने की अनुमति होती है। भूमि सुधार कानूनों के तहत भूमि सीमा निर्धारित की गई ताकि बड़े ज़मींदारों से भूमि लेकर छोटे किसानों को दिया जा सके।

7. **किसान अधिकार (Farmer's Rights)**: भूमि सुधार का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य किसानों को उनकी भूमि पर अधिकार प्रदान करना था, ताकि वे अपनी भूमि के मालिक बन सकें और उनका शोषण न हो सके।

8. **तहसील (Tehsil)**: एक प्रशासनिक क्षेत्र, जिसे उपजिलों में बाँटा जाता है। भूमि सुधार योजनाओं का क्रियान्वयन तहसील स्तर पर किया जाता था।

9. **कृषि भूमि (Agricultural Land)**: वह भूमि जो खेती के लिए इस्तेमाल होती है। भूमि सुधार में कृषि भूमि के अधिकारों को सुनिश्चित किया गया।

10. **कृषि श्रमिक (Agricultural Laborer)**: वह व्यक्ति जो कृषि कार्य करता है, लेकिन उसके पास स्वयं की भूमि नहीं होती। भूमि सुधार के प्रयासों में कृषि श्रमिकों के अधिकारों की भी चर्चा की गई।

11. **कृषि सुधार कानून (Agricultural Reform Laws)**: वे कानून जो भूमि सुधार की प्रक्रिया को लागू करने और किसानों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए बनाए गए थे।

12. **सहकारी समितियाँ (Cooperative Societies)**: किसान और श्रमिकों को एकजुट करने के लिए बनायीं गयी संस्थाएँ। भूमि सुधार में सहकारी समितियाँ किसानों को ऋण, बीज, उर्वरक, आदि उपलब्ध कराने में मदद करती थीं।

13. **स्वामित्व अधिकार (Ownership Rights)**: भूमि पर स्वामित्व रखने का अधिकार। भूमि सुधार का एक प्रमुख उद्देश्य किसानों को उनकी भूमि का स्वामित्व अधिकार देना था।

14. **भूमि सुधार आयोग (Land Reforms Commission)**: यह वह आयोग था जो भूमि सुधार नीतियों और योजनाओं की समीक्षा करता और उन्हें लागू करता था।

15.**फसली कर (Land Revenue)**: भूमि पर उगाई गई फसल से लिया जाने वाला कर। भूमि सुधार के तहत इस कर को कम करने और किसानों के लिए न्यायपूर्ण बनाने का प्रयास किया गया था।

14.7 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

भूमि सुधार से संबंधित **स्व-प्रगति परिक्षण** (Self-Assessment Test) प्रश्नों के उत्तर निम्नलिखित हैं:

1. भूमि सुधार का क्या उद्देश्य है?

उत्तर: भूमि सुधार का मुख्य उद्देश्य किसानों के अधिकारों की सुरक्षा करना, भूमि वितरण को न्यायपूर्ण बनाना, सामाजिक और आर्थिक असमानता को कम करना, और ग्रामीण क्षेत्रों में विकास को बढ़ावा देना है। इसके तहत जमींदारी व्यवस्था का उन्मूलन, भूमि का पुनर्वितरण, और किसानों को उनके अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करना शामिल है।

2. जमींदारी प्रथा के अंत से समाज पर क्या प्रभाव पड़ा?

उत्तर: जमींदारी प्रथा के अंत से समाज में भूमि के पुनर्वितरण का मार्ग खुला और छोटे किसानों को भूमि पर अधिकार प्राप्त हुआ। इससे ग्रामीण समाज में भूमि के मालिकाना अधिकारों में समानता आई और जमींदारों द्वारा किसानों का शोषण कम हुआ। इसके अलावा, किसानों को उनकी मेहनत का उचित मूल्य प्राप्त हुआ।

3. भूमि सुधार कानूनों के अंतर्गत कौन-कौन से महत्वपूर्ण कदम उठाए गए?

उत्तर: भूमि सुधार कानूनों के अंतर्गत निम्नलिखित प्रमुख कदम उठाए गए:

- जमींदारी व्यवस्था का उन्मूलन और ज़मीन का वितरण।
- भूमि सीमा (Land Ceiling) लागू करना, ताकि बड़े जमींदारों से अधिक भूमि लेकर छोटे किसानों को दी जा सके।

- किसानों को भूमि पर अधिकार देने के लिए कृषि पट्टों का वितरण।
- बटाई व्यवस्था को नियंत्रित करना और किसानों को उचित लाभ देना।
- भूमि राजस्व (Land Revenue) में सुधार और किसान हितैषी नीतियाँ लागू करना।

4. भूमि सुधार के अंतर्गत भूमि सीमा का क्या महत्व था?

उत्तर: भूमि सीमा का उद्देश्य यह था कि कोई व्यक्ति एक निर्धारित सीमा से अधिक भूमि का मालिक न हो सके। इससे भूमि का पुनर्वितरण संभव हुआ, और भूमिहीन तथा छोटे किसानों को भूमि मिल सकी। यह कदम भूमि के मालिकाना अधिकारों में असमानता को कम करने के लिए महत्वपूर्ण था।

5. कृषक अधिकारों की सुरक्षा के लिए भूमि सुधार में कौन से कदम उठाए गए?

उत्तर: कृषक अधिकारों की सुरक्षा के लिए भूमि सुधार में कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गए, जैसे:

- किसानों को उनकी भूमि पर मालिकाना हक देना।
- कृषि श्रमिकों और किसानों के लिए सुरक्षित भूमि पट्टे सुनिश्चित करना।
- कृषि कार्यों में लगे श्रमिकों की शोषण से रक्षा करना और उनके लिए न्यूनतम मजदूरी सुनिश्चित करना।
- जमींदारों के खिलाफ कानूनों को लागू करना ताकि वे किसानों से अनुचित तरीके से भूमि न छीन सकें।

6. भूमि सुधार में सहकारी समितियों का क्या योगदान था?

उत्तर: भूमि सुधार में सहकारी समितियों का प्रमुख योगदान यह था कि ये किसानों को कृषि उत्पादों के विपणन, उधारी, बीज, उर्वरक आदि की आपूर्ति करने में मदद करती थीं। इसके अलावा, सहकारी समितियाँ किसानों को मिलकर काम करने और अपनी

ताकत का उपयोग करने के लिए प्रेरित करती थीं। ये समितियाँ किसानों के आर्थिक और सामाजिक सुधार में सहायक साबित हुईं।

7. भूमि सुधार से किसानों को किस प्रकार का लाभ हुआ?

उत्तर: भूमि सुधार से किसानों को कई लाभ मिले:

- उन्हें भूमि पर मालिकाना अधिकार प्राप्त हुआ, जिससे वे भूमि के वास्तविक मालिक बने।
- भूमि वितरण के माध्यम से भूमिहीन किसानों को भूमि मिल सकी।
- बटाई और भूमि पट्टों की व्यवस्था में सुधार हुआ, जिससे किसानों को उचित लाभ हुआ।
- भूमि राजस्व में कमी आई और किसानों को उधारी के बोझ से मुक्त किया गया।

8. भूमि सुधार से सामाजिक और आर्थिक समानता में कैसे सुधार हुआ?

उत्तर: भूमि सुधार से समाज में सामाजिक और आर्थिक समानता को बढ़ावा मिला। जमींदारी व्यवस्था का उन्मूलन और भूमि का पुनर्वितरण छोटे किसानों को उनकी ज़मीन पर अधिकार देने में सहायक हुआ। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक समानता में वृद्धि हुई और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को भी अपनी आजीविका बनाने का अवसर मिला। भूमि सुधार ने कृषि क्षेत्र में श्रमिकों और छोटे किसानों को बेहतर स्थिति में लाकर आर्थिक असमानता को कम करने का प्रयास किया।

9. भूमि सुधार के प्रमुख कानून कौन से थे?

उत्तर: भूमि सुधार के प्रमुख कानूनों में शामिल थे:

- **ऑल इंडिया टेनेंसी एक्ट (1955)**: यह कानून किसानों के भूमि अधिकारों को सुनिश्चित करता था।

- **लैंड सीलिंग एक्ट**: इसके अंतर्गत एक व्यक्ति के पास अधिकतम भूमि सीमा निर्धारित की गई थी।
- **फ्री होल्ड एक्ट**: यह भूमि मालिकों को भूमि पर पूर्ण अधिकार देने वाला कानून था।
- **जमींदारी उन्मूलन अधिनियम**: यह कानून जमींदारी व्यवस्था को समाप्त करने और भूमि का पुनर्वितरण करने के लिए बनाया गया था।

10. भूमि सुधार की प्रक्रिया में किन-किन चुनौतियों का सामना करना पड़ा?

उत्तर: भूमि सुधार की प्रक्रिया में कई चुनौतियाँ आईं, जैसे:

- राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी, जिससे कई राज्य सरकारों ने भूमि सुधार कानूनों को पूरी तरह से लागू नहीं किया।
- कुछ स्थानों पर जमींदारों और अधिकारियों का विरोध, जिन्होंने भूमि सुधार को नकारने के लिए बाधाएँ उत्पन्न कीं।
- भूमि सुधार के लिए आवश्यक प्रशासनिक और कानूनी ढांचे की कमी, जिससे योजना का क्रियान्वयन प्रभावित हुआ।
- शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच असमान विकास की समस्या, जिससे भूमि सुधार का असर सीमित हुआ।

14.8 संदर्भ सूची

- झा, आर. (2021). भारतीय अर्थव्यवस्था और भूमि सुधार. दिल्ली: ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- शर्मा, ड. (2019). भूमि सुधार और ग्रामीण विकास: एक समग्र दृष्टिकोण. मुम्बई: रुतलेज प्रकाशन।
- कुमार, एम. (2020). भारत में भूमि सुधार: इतिहास और वर्तमान स्थिति. जयपुर: वाणी प्रकाशन।

- सिंह, ज. (2018). समाजवादी भूमि सुधारः भारतीय संदर्भ में. दिल्ली: पेंगुइन बुक्स।
- यादव, स. (2022). भारतीय भूमि नीति और सुधार. कोलकाता: पब्लिकेशन हाउस।

14.9 अभ्यास प्रश्न

(अ) निबन्धात्मक प्रश्न

1. भूमि सुधार से क्या अभिप्राय है ? इस दिशा में भारत सरकार द्वारा क्या प्रयास किये गये हैं? विवेचना कीजिए ।

2. स्वाधीनता के पश्चात् भारत में भूमि सुधार नीति की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

3. खेती की चकबन्दी से आप क्या समझते हैं ? इसके लाभों एवं कठिनाइयों का विवेचन कीजिए।

(ब) लघु-उत्तरीय प्रश्न

निम्न प्रश्नों की संक्षिप्त में व्याख्या कीजिये -

1. भूमि सुधार से आप क्या समझते हैं ?

2. जोत की सीमा निर्धारण के लाभ स्पष्ट कीजिए ।

3. मध्यस्थों की समाप्ति से आप क्या समझते हैं ?

4. चकबन्दी के लाभ बताइये ।

5. भारत में भूमि सुधार पर टीप लिखिए।

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के साथ चार-चार विकल्प दिये गये हैं। सही विकल्प पर निशान लगाइये –

1. मध्यप्रदेश में जोत की सीमा निर्धारित की गई है

(अ) 4.05 से 21.85 हैक्टेयर

(ब) 8.05 से 24.85 हैक्टेयर

(स) 12.05 से 26.85 हैक्टेयर

(द) 16.05 से 28.85 हैक्टेयर

2. मध्यप्रदेश में जमींदारी उन्मूलन कब हुआ ?

(अ) सन् 1948

(ब) सन् 1950

3. भूदान आन्दोलन के प्रवर्तक थे -

(स) सन् 1951

(द) सन् 1955

(ए) राजगोपालाचार्य

(ब) गाँधी जी

(स) नेहरू जी

(द) विनोबा जी

भारत में वर्ष 2009-10 स्थिति में प्रति हैक्टेयर क्षेत्र में कितना गेहूँ पैदा होता है ?

(अ) 12 क्विटल

(ब) लगभग 28 क्विटल

(स) लगभग 36 क्विटल सर्फि

(द) लगभग 48 क्विटल

उत्तर - (1) अ, (2) स, (3) द, (4) ब